श्रीभागवत—दर्शन

# भागवती कथा

( अड़तालीसवाँ खण्ड )

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

—:※:—

लेखक:—
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
सङ्कीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर, झूसी ( प्रयाग )

संशोधित मूल्य २-०० रुपया

द्वितीय संस्करण ] चैत्र, सं० २०२४ वि० [ मूल्य १) ६५

मुद्रक—संकीर्तन प्रेस, वंशीवट वृन्दावन।

# विषय—सूची

॥ श्रीहरिः ॥

# धर्म और राजनीति

( भूमिका )

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्,
सेवस्य साधु पुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा,
सेवा कथा रसमहो नितरां पिब त्वम् ॥
( श्री भा० मा० ४, अ० ७६ श्लोक )

छप्पय

जे जगके ब्योहार कपट, छल, दम्भ सिखावें।
पद अधिकार निमित्त मनुज नित पाप कमावें ॥
राज हेतु बव द्रोह करें राजा बनि जावें।
जेग विषयनि कूँ पाइ शान्ति नर कबहुँ न पावें॥
क्यों भूल्यो रे बावरे, हरि-पद सत मिथ्या जगत्।
कृष्ण ध्यान करि, कृष्ण रटि, कृष्णकथा सुनि खल सतत ॥

---

❀ धर्म का आचरण करो, लोक धर्मों को छोड़ दो, साधु पुरुषों की सदा सेवा करो, काम तृष्णा को त्याग दो। अविलम्ब अन्यों के दोष गुणों की चिन्तना छोड़कर एक मात्र भगवत् सेवा और कथा का रसपान किया करो।

राजनीति को चाहे जैसे धर्मपूर्वक वरता जाय, उसमें कटुता आ ही जाती है। यह पद, प्रतिष्ठा और पैसा की कामना कितनी भी निस्पृहता के साथ की जाय, तो भी कुछ न कुछ दोष उसमें आ ही जाते हैं। हमारे यहाँ सदा से धर्म और राजनीति का समन्वय करने की चेष्टा की गयी है, बहुत अंशों में समन्वय हुआ भी है, फिर भी राजनीति राजनीति ही है। इसे वारांगना की उपमा दी गयी है। राजा की शोभा तथा प्रशंसा तभी तक है, जब तक वह अपने को राजा न समझकर धर्म रक्षक समझे। अपने को स्वतन्त्र न समझकर प्रजा के अधीन समझे। जहाँ उसे राजापने का अभिमान हुआ तहाँ वह धर्म से च्युत हो जाता है, जो स्वयं धर्म च्युत है वह धर्मकी रक्षा क्या करेगा। वह प्रजा में आतंक फैलायेगा। पहिले प्रजा उसे धर्म रक्षक समझकर हृदय से मानती और पूजती थी। अब जब वह प्रभुता के मद में अपने को श्रेष्ठ समझने लगा, तो जनता भयवश भले ही उसका आदर करे, हृदय में उसके प्रति सम्मान नहीं रहता।

प्रभुता की आकांक्षा प्राणी मात्र में स्वाभाविक है, क्योंकि आत्मा तो विभु प्रभु सब ही है। कौन चाहेगा हम छोटे बने रहें। बड़ा बनना सभी चाहते हैं। मैंने छोटे छोटे बालकों को अपने छोटे भाई बहिनोंपर शासन करते देखा है। बड़े बननेकी कामना सबमें होती है। जो कुछ लोगों को अपनी इच्छा के ऊपर नचाता है वही राजा है, वही गुरू है। उसे प्रधान, शासक, नेता, नरपति, संघपति कुछ भी कहलो। जब एक पदकी इच्छा अनेक व्यक्ति करते हैं। तो उनमें संघर्ष होता ही है। संघर्ष में राग, द्वेष, झूठ सच, ईर्ष्या, निन्दा, मिथ्या प्रचार सभी होता है। इसीलिये राज्य के लिये लोग माता, पिता, भाई तथा सगे सम्बन्धियों की हत्या तक कर देते हैं। इसीलिये धर्म प्रधान ब्राह्मणगण राजपाट तथा शासन से सदा दूर ही रहते थे। वनमें

तपस्या करके धर्ममय जीवन बिताने वाले ऋषिमुनि कभी राज-
नीति के चक्कर में नहीं पड़ते थे। वे त्यागमय जीवन बिता कर
कंद मूल फल खाकर भगवान् के भजन में ही लीन रहते थे।
किन्तु उन्हें रहना तो संसार में ही है। संसार में अशांतिमय वायु
मण्डल हो जाय तो वे शांतिलाभ कैसे कर सकते हैं, भजन कैसे
हो सकता है। यदि शासन की बागडोर स्वार्थियों के हाथ मे आ
जाय, तो प्रजा का कल्याण कैसे हो सकता है, अतः ऋषिमुनि
अपने त्याग, तप तथा धर्मके बल पर राजाओंके ऊपर भी अंकुश
रखते थे, वे अन्यायी राजा को राज्यसे पृथक् भी कर सकते थे।
उन्होंने एक नियम बना लिया। प्रजा के लिये विधान तो संसारी
भोगों से विरत त्यागी विरागी मुनि बनावें और उन्हें कार्यरूपमें
परिणत शासक राजा करें। यही राजनीति और धर्मका समन्वय
था, किन्तु यह बहुत दिन चलता नहीं। क्योंकि जिसके हाथ में
शासन रहता है वह किसी का अंकुश अपने ऊपर चाहता नहीं।
निरंकुश होना चाहता है। इसलिये विचारकोंमें जहाँ धर्म भावना
न्यून हो जाती है, उनका तप तेज घट जाता है, तहाँ शासक
निरंकुश हो जाता है। अनर्थ होता है लड़ाई झगड़े होते हैं। स्वर्ग
का राजा इन्द्र जब अपने ऊपर बृहस्पति जी का अंकुश मानने को
तैयार न हुआ तो उसे ब्रह्महत्या लगी। विद्वान् विचारक धर्मात्मा
ब्राह्मण का अपमान करना उसे कष्ट पहुँचाना उसे मार देना यही
ब्रह्महत्या है। इन्द्र अपने पद से च्युत हो गया। बड़े बड़े ज्ञानी
ऋषि थे फिर भी इन्द्रासन की बागडोर स्वयं उन्होंने लेनी नहीं
चाही धर्मात्मा नहुष को-जो पृथिवी का राजा था—इन्द्र बना
दिया। अकस्मात् बहुत बड़ा पद पाकर वह भी निरंकुश होगया।
ऋषियों से पालकी उठवाने लगा वह भी व्यभिचार के लिये।
ऋषियोंने मिलकर उसे भी पदच्युत किया। इतने दिनमें इन्द्रका
गर्व भी खर्व हो गया। उसे अपनी यथार्थ स्थिति विदित होगयी,

फिर उसे देवराज के पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। सारांश यह है कि इस संसार का शासन ग्रह्मक्षत्र दो शक्तियों के समन्वय से चलता है–त्याग और भोग के बीच का मार्ग है। न केवल त्यागी का काम है न केवल भोगी का। दोनों अपनी शक्ति जुटावें एक दूसरेका आदर सत्कार करें तब धर्म राज्य चल सकता है। पहिले राजागण ऋषियों का कितना आदर करते थे, एक ऋषिके आने पर बड़े बड़े सम्राट् कांप जाते थे। साष्टांग प्रणाम करके उनके चरण धोते पूजा करते। ऋषि भी राजाओं का कितना आदर करते अष्टलोक पालोंका उन्हें अंश कहते। साक्षात् विष्णु मानकर सिंहासनासीन राजा की स्तुति करते। तब यह देश सब समृद्धि युक्त था यहाँ धर्म का राज्य था। शासक या राजा का धर्मात्मा होना अत्यावश्यक है, वह शासन सदुद्देश्य से प्रवृत्त हो। वह केवल स्वार्थ सिद्धि के ही लिये शासक न बनें।

एक बात और है राजनीतिमें मान सम्मान या नामकी इच्छा रहती है। जो सम्मानित न होगा वह देश की सेवा कर ही नय सकता है। जिसका दूर दूर तक नाम न होगा उसके प्रभाव को कौन मानेगा। दो भांति के कार्य होते है एक तो इहलौकिक व्यवहार कार्य दूसरे पारलौकिक आध्यात्मिक कार्य, आध्यात्मिक कार्योंमें तो मान सम्माककी इच्छा रखना दोष है, किन्तु लौकिक कार्योंमें तो ये गुण हैं। सज्जनोंके जहाँ गुण बताये हैं उनमें सम्मान की रक्षा करना दशों दिशाओं में अपनी कीर्ति का प्रकाश करना इन पर बल दिया गया। उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकारके मनुष्य बताये हैं। अधम पुरुष तो वे हैं जो धन को ही आगे रख कर शासनमें प्रवेश करते हैं, कि वहाँ जायेंगे तो इतना पैसा पैदा करलेंगे। उनकी दृष्टि धर्म पर न रहकर पैसा पर रहती है। आज कल शासक पैसे लेकर कैसे कैसे घृणित कार्य करते है यह बड़ी नीचता है। मध्यम पुरुष वे होते हैं जो धन भी चाहते हैं

किन्तु सम्मान पूर्वक। जो सदाचार हीन है उसका सम्मान तो समाजमें होगा ही नहीं ऐसे लोगों का जो सम्मान करते हैं वे या तो लोभवश या भय वश। इसलिये मान सहित धनकी कामना भी बहुत अच्छी नहीं। उत्तम पुरुष उनको बताया है जो केवल अपनी कीर्ति को विमल करने को-मान सम्मान की वृद्धि के लिये-धर्म पूर्वक कार्य करते है। क्योंकि बड़े लोगों का सम्मान ही धन है। कविका, शासक का, विद्वान का, धर्मपत्नी का तथा अतिथि आदि का सम्मान न हो तो इनका मन मर जायेगा। ये सम्मान के पात्र हैं। किन्तु झूठ बोलकर सदाचार को छोड़कर जो मान चाहता है वह चाहे साक्षात् ब्रह्मा भी क्यों न हो अपूज्य बन जाता है। पुराणों में इस सम्बन्ध में एक बड़ी रोचक कथा आती है। एक बार विष्णु भगवान् और ब्रह्माजी में झगड़ा हो गया। वे कहें हम बड़े वे कहें हम बड़े। उसी समय दोनों के बीच में एक ज्योतिर्मय शिवलिंग प्रकट हो गये जिनका न आदि था न अन्त था। बात तय यह हुई कि जो इस ज्योति का पता लगाले वही सब से बड़ा माना जाय। भगवान विष्णु सूकरका रूप बनाकर नीचे गये। हंस बनकर ब्रह्माजी ऊपर गये। किन्तु जो अनादि अनंत है उसका कोई पता क्या लगा सकता है। विष्णु भगवान् पता न लगा सके लौट आये। अब ब्रह्माजी ऊपर उड़ते उड़ते थक गये। ऊपर एक केतकी का फूल मिला उससे पूछा—"भैया, इस ज्योति का अंत खोजने मैं चला हूं, मैं तो उड़ते उड़ते थक गया। तुम्हें पता है इसका अंत कहाँ तक है?" हँसकर केतकी पुष्पने कहा—"महाराज! अभीसे आप थक गये। इसके अंत की कोई सीमा नहीं।'

यह सुनकर ब्रह्माजी घबड़ा गये। अरे, इसका पता न चला तो मेरा सम्मान चला जायगा। अतः उनके मनमें छल आया केतकी को मिथ्यासाक्षी बनाकर लौट आये और कह दिया मैं

पता लगा आया। पीछे बात खुल गयी ब्रह्माजी को शाप हुआ कि तुम संसार में अपूज्य हो जाओ। इसीलिये आप देखते हैं। सर्वत्र भगवान् शकर के विष्णु के, मंदिर है। अपने घर पुष्कर को छोड़कर ब्रह्माजी का कही मंदिर नही।

कहने का सारांश इतना ही है कि आदमी कितना भी बड़ा क्यों न हो यदि वह अपने मान सम्मान की रक्षा के लिये छल कपट का आ-य लेता है, तो जनता की आस्था उससे हट जाती है। जिसे संसार मे रहना है वह संसारकी ओर से आंख तो मींच न लेगा संसार की स्थिति का उस पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य है, अतः उसे समाज की कुछ न कुछ सेवा करने को विवश होना पड़ता है। राजा की नीतिमें अपना सहयोग देना यही राजनीति है। ग्रन्थ लिखना,शिक्षा प्रचार करना, धर्म सदाचार का प्रसार, करना,शासकों की गति विधिपर दृष्टि रखना,शासनमें क्रियात्मक रूप से भाग लेना ये ही सब राजनैतिक कार्य है और इनसे कोई विरला ही बच सकता है। राजा की उत्पत्ति ही कलहके कारण हुई है अतः राजनीति में कलह स्वाभाविक है।

आदि सत्ययुगमे कोई राजा नही होता था,सब बिना घर बार के रहते। वे पूर्ण ज्ञानी थे, सब धर्म पूर्वक आचरण करते थे। सभी भगवान् के ध्यान में मग्न रहते। काल के प्रभाव से कुछ लोगों में स्वार्थ भावना आयी। पहिले न कोई वस्त्र पहिनता था, न घर बनाता था न कोई वस्तु रखता था। पेड़ों के नीचे रहते फल खाते, भगवान् का ध्यान करते। समय पाकर कुछ लोगों का ज्ञान कम हुआ उनमें अज्ञान आने लगा। अज्ञान अविश्वास हुआ। अविश्वास से आगे की चिंता उत्पन्न हुई। आगे की चिंता से संग्रह की इच्छा हुई। कुछ लोग सोचने लगे यदि हमें कल फल न मिले तो कैसे शरीर निर्वाह होगा। शरीर को बनाये रखने की चिंता ही अज्ञान है, भौतिकता है। कुछ

लोग कल के लिये फल रखने लगे । प्राणी तो भाव मय है जैसी भावना करता है वैसा हो जाता है । जिन लोगों ने कल के लिये संग्रह किया, उनको ऐसा हुआ कि यथार्थ में कल को भोजन नहीं मिला । उन्हें अपनी दूरदर्शिता पर गर्व हुआ । देखो हमने कितनी दूर की बात सोच ली । यदि हम संग्रह न करते तो आज भूखे ही रहना पड़ता । अपने इस अज्ञान का उन्होंने दूसरों में प्रचार किया । दूसरों का मन फिर गया । अब एक के स्थान में दो दिन को रखने लगे फिर सुखाकर रखने लगे । फिर बीज संग्रह करने लगे । घर बनाने लगे, जाडे को कपड़े बनाने लगे । पूरे अज्ञानी बन गये, लड़ने लगे उनमें जो संग्रह से बचे रहे त्यागी बने रहे उन्हें चिंता हुई कि ये संग्रही अज्ञानी तो इस देह की रक्षा के लिये आपस में कट मरेंगे । उन सब ज्ञानी ऋषियों ने मनुजी से प्रार्थना की कि आप इन सबके राजा बन जाओ । इनका न्याय किया करो । कुछ नियम बना दो । वे ही मनु आदि राजा हुये, उनके नियम ही "मनुस्मृति" हुई । वर्तमान मनुस्मृति उस बड़ी मनुस्मृति में से कुछ संग्रह मात्र है । फिर अन्य त्यागी मुनियों ने भी स्मृतियाँ बनायी ।

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि इस राजनीति की उत्पत्ति कलह के ही कारण हुई है । संग्रह ही इसकी उत्पत्ति में कारण है अतः राजनीति में कलह होगी ही । इससे जो डरे वह राज-नीति में पैर न रखे । कलह होना, मतभेद होना एक दूसरे के मत का खंडन करना राजनीति में दूषण नहीं [illegible] है । किन्तु जब स्वार्थ सिद्धि के लिये अधर्म अन्याय का आश्रय लिया जाता है तो कहते तो उसे राजनीति ही हैं, किन्तु वह कूटनीति बन जाती है और अधर्म प्रधान [illegible] का बोल बाला होता है । [illegible] राजनीति से दूर रहना [illegible] यहाँ राजा [illegible]

शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लेना यह जीवन का परम-लक्ष्य नहीं है। यह तो कर्तव्य पालन है। चरमलक्ष्य तो भगवान् को प्राप्त करना है। इसीलिये सभी धर्मात्मा राजागण अन्त में राजपाट छोड़कर वन में त्याग और तप मय जीवन बिताने चले जाते थे। वे राज की चिंता करते करते मरने को पाप समझते थे। अनन्य भगवत् भक्त तो जहाँ तक होता सेवा पूजा कथा कीर्तन को छोड़कर इन राजनैतिक पचड़ो से दूर रहना चाहते हैं। बड़े बड़े भगवत् भक्त राजा भी हुए हैं, किन्तु अपना सर्वस्व भगवान् को समर्पित करके वे अनन्य उपासना करने चले गये हैं या निरन्तर भगवत् चिंतन में ही लीन रहे हैं। अनन्य भगवत भक्तों का कहना है इस संपूर्ण विश्व के कर्ता धर्ता हर्ता भर्ता और संहर्ता श्रीहरि हैं। वे क्या करना चाहते है इसे बड़े बड़े योगेश्वर भी नहीं जान सकते। तो देखो तुम "इस संसार को स्वर्ग बनावेंगे यों लोगों का उद्धार करेंगे" इस चक्कर में ही मत पड़ो। करने कराने वाले वे हरि ही है। वे जिसे चाहें राजा बनावें जिसे चाहें शासक बनावें। वे जो करेंगे उचित ही करेंगे। कर्तापन उन्हीं को सौप दो। एक आदमी घर बनाता है वह भी उसकी देख रेख करता है, इस जगत् को तो भगवान् ने बनाया है, उनका नाम विश्वम्भर है। वे अपनी बनायी वस्तु की उपेक्षा नही कर सकते। उन्हें जो उचित जँचेगा वह करेंगे। तुम बीच में टाँग क्यों अड़ाते हो। तुम कर्त्तापने का अभिमान करके अपना पतन क्यों करते हो। तुम तो अपना सब कुछ उन पर छोड़ दो। सब चिंताओं से मुक्त होकर भगवान् की सेवा करो, उन्हीं की कथा सुनो, उन्ही के नामों का कीर्तन करो। दुख सुख में सदा सम रहो। जो हो रहा है भगवान् की प्रेरणा से हो रहा है उचित ही हो रहा है। माली स्वयं बीज बोता है पेड़ उगाता है। फिर आवश्यकता समझता है कुछ को काट देता है। कुछ को

उखाड़ कर फेंक देता है। कुछ पत्तों को एकत्रित करके जला देता है। तुम माली तो हो नहीं, दर्शक हो। तुम चिन्ता करो कि इतनी फूलीं लता मालीने क्यों काट दी। इतने आम के पौधे एक साथ उगे थे सबको उखाड़ कर माली ने क्यों फेंक दिया, तो यह तुम्हारी मूर्खता ही होगी तुम चिंता करोगे भी तो उसका परिणाम क्या होगा। माली तो अपना काम करेगा ही। इसलिये तुम माली के कामों को उसी को करने दो। तुम तो उसकी लगाई फुलवारी को देखो और आनंद करो। हँसो पेट भर कर हँसो, फूलो से प्यार करो। पेड़ों के जो रसीले फल मिलें उन्हें खाओ। माली कोई काम करने को बतावे तो उस की इच्छानुसार काम कर दो।"

इसी बात को ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा है।*

एक बात और भगवान् ने जैसी जिसकी प्रकृति बना दी है, जिसे जिस काम को करने को नियुक्त किया है वह करेगा' यदि अहंकार के वशीभूत होकर वह उससे भागना चाहे भी तो भाग नहीं सकता। प्रकृति उसे सर्वत्र से पकड़ कर ले आवेगी और उसे उस काम में नियुक्त करके छोड़ेगी। देखो यह प्राणी कितना परवश है, फिर भी यह जीव कितना अभिमान करता है, कि मैं यह करूँगा वह करूँगा। सब उन जगन्नियन्ता श्रीहरि के खिलौने है। यह इतनी तो मेरी भूमिका हुई अब मैं यथार्थ विषय पर आता हूँ।

---

*विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भव हेतुराद्यो।
योगेश्वरैरपि दुरत्यय योग मायः॥
क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीश—
स्तत्रास्मदीय विमृशेन कियानिहार्थः॥
(श्री भा० ३ स्क० १६ अ० ३७ श्लो०)

मेरी प्रवृत्ति पारमार्थिक कार्यों में लगे इसके लिये मैंने को
प्रयत्न नहीं किया। बाल्यकाल से ही मेरी प्रवृत्ति इधर भगवान
के कार्यों में लग गयी। बहुत ही छोटी अवस्था से पूर्व जन्मों के
संस्कार वश मैं अपने आप ठाकुर पूजा आदि करने लगा। देहात
से जब नगर में आया तब कुछ राजनैतिक कार्यों में भी भाग
लेने लगा कहावत है, "गुणः गुणज्ञेषु गुणाः भवन्ति ते निर्गुण
प्राप्य भवन्ति दोषाः गुणज्ञ पुरुषों में भले आदमियों, सत्पात्रों
में ही जब गुण रहें तो वे गुण भी दोष हो जाते हैं। इस विषय
में कविने बड़ा सुंदर दृष्टांत दिया जैसे वर्षा का जल है, बड़ा
सुंदर स्वच्छ और स्वास्थ वर्धक है। यदि वह समुद्र में गिरता
है, तो खारी अपेय बन जाता है, वही यदि गंगा जी में गिरता
है, तो सुंदर पेय परमपावन और पूज्य हो जाता है। एक ही
वस्तु सुपात्र तथा कुपात्र के समीप जाने से बुरी यथा भली हो
जाती हैं। राजनीति जब तक पृथु, पुरुरवा,गाधि,भरत,मान्धाता
सगर,रघु,राम, युधिष्ठिर तथा अन्यान्य धर्मात्माओं के आश्र
से रही तब तक वह अच्छी तथा सम्मानित मानी जाती थी, जब
यह कलियुगी क्रूर राजाओं के पल्ले पड़ गयी, तबसे तो इसकी
दुर्गति हो गई। त्याग तपस्या की शक्ति के बिना केवल शस्त्र के
बल पर शांति नहीं हो सकती वसुन्धरा को यद्यपि वीर भोग्या
कहा है। जिस राष्ट्र के समीप सैनिक शक्ति न होगी, इसके
रक्षको की बाहुओं में बल न होगा, वह राष्ट्र की रक्षा कर ही
कैसे सकता है, किन्तु बाहुबल के साथसाथ बुद्धिबल, धर्मबल,
तथा त्याग तप का भी बल अत्यावश्यक है।

आज की राजनीति बड़ी दूषित हो गयी है। इसमें न तो
बाहुबल को प्रधानता है न धर्मबल की। इसमें तो छल, कपट,
दम्भ तथा मिथ्या प्रचारका बोल बाला है। जो इन कामो में

जतना ही निपुण होगा विजयका खेत उसी के हाथ रहेगा। तदान पहिले हमारे यहाँ भी होता था, किन्तु वर्तमान मतदान ी प्रणाली सर्वथा अभारतीय और दूषित है। इसके द्वारा बहुमत ा निर्णय किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। जनता कुछ चाहती ह निर्णय कुछ हो जाता।

हमारे यहां अपने गुण का स्वयं बखान करना तथा दूसरों के ोषों को प्रकट करना सबसे बड़ा पाप है। अपने आप अपनी प्रशंसा करना मृत्यु के सदृश है और जो दूसरों के अवगुणों का बखान करता फिरता है उसे बड़ा पाप लगता है। आजकल के चुनाव मे यही होता है मैं ऐसा हूँ, मैंने यह किया वह किया। मेरा प्रति द्वंदी निर्गुण है उसमें ये ये दोष है। ये बाते प्रत्येक चुनाव लड़ने वाले को कहनी पडती है, चाहे सीधे कहे चाहे घुमा फिरा कर कहे चाहे दूसरोंसे कहलावें इसके बिना निस्तार नहीं।

अबके चुनावमे मै भी खड़ा हुआ था। खड़ा हुआ था भारत के प्रधान मंत्री तथा अखिल भारतवर्षीय राजनैतिक संघ (कांग्रेस) के अध्यक्ष के विरुद्ध। मै सदस्य बननेके लिये नहीं एक धार्मिक प्रश्नको लेकर खड़ा हुआ था। सोचा मैंने यह था, कि इस चुनावमें विशुद्ध धर्मका आचरण करूँगा, अपनी ओर से कोई अनैतिकता न बरतूँगा। पहिले तो मैंने सोचा था, कि मैं इसके लिये न किसी से पैसे माँगूँगा और न मत (वोट) माँगने कहीं जाऊँगा। किन्तु ये दोनों बातें चली नही। प्रत्यक्ष शब्दों द्वारा मुखसे तो न भी माँगे हों, किन्तु मनसे, संकेत से आचरणसे, दूसरों द्वारा इनकी याचना किसी न किसी रूप में करनी पड़ी मैं मुखसे भगवान् का नाम, भगवान् के चरित बोलता हूँ, व्योहार की बातें लिखकर ही करता हूँ। इस चुनावके लिये मैंने २४ पृष्ठकी एक छोटी सी पुस्तिका "हिन्दुकोडबिल और नेहरूजी" नामक लिखी। जिसकी एक लाखसे कुछ ही

कम प्रतियां निकलीं । जनता ने उस पुस्तिका की बहुत ही सराहनाकी। विपक्षसे उसके विरुद्धमें कई पुस्तकें बहुतसे विज्ञापन निकले। तीन पुस्तक विपक्षकी मुझे देखनेको मिलीं। एक तो "धर्मकी आड़में ब्रह्मचारीजीका मिथ्या प्रचार" दूसर "हिन्दुकोड और नेहरूजी" तीसरी हिन्दुओंकी रीति रिवाज" पहिले पुस्तक में कोई तत्व नहीं था। वह तो अथसे इति तक गालियों से ही भरी थी। उसमें मुझे ही नहीं राम, कृष्ण, पांडव, श्रीमद्भागवत सभीको कोसा गया था। उस पुस्तक का तो उल्लेख करना ही पाप है। दूसरी पुस्तकमें कुछ विवेचन था और तीसरी तो उत्तर प्रदेशीय कांग्रेसने ही निकाली गंभीर थी और उसमें अपने पक्षका सभ्य शब्दोंमें समर्थन था। और भी बहुत सी निकली होंगी किन्तु वे मेरी दृष्टिगोचर नही। सबका सारांश यही था कि ब्रह्मचारीजी हिन्दु कोडके सम्बन्धमें मिथ्या प्रचार कर रहे है लोगोंको असत्य बातें कह कर भड़का रहे हैं।"

जनताको भड़काना तो मैं चाहता ही था, किन्तु मैंने अपनी पुस्तिकामें मिथ्या बात कौनसी लिखी यह मैं नही समझ सका, मैंने वक्तव्य निकाल कर पत्रोंमें लिखित भाषण छपा कर सबको इस बातकी चुनौती दी, कि यदि मेरी पुस्तक में एक भी बात असत्य अथवा अतिरंजित हो तो मैं सार्वजनिक रूप से क्षमा मांगने को उद्यत हूँ। किन्तु उस प्रचार के प्रवाह में गंभीरता पूर्वक सोचकर उत्तर देने की प्रवृत्ति भला किसमें थी, किसी ने भी मेरी भलों को नही बताया।

अमेरिका से एक साप्ताहिक पत्र निकलता है, उसका नाम है "टाइम" वह बड़ा व्यापक पत्र है सुनते हैं उसके तीस लाख ग्राहक हैं। वह अन्तर्राष्ट्रीय पत्र माना जाता है उसके एक प्रतिनिधि मेरे यहां आये। उन्हें मेरे चुनाव के सम्बन्ध में अपने

पत्रमें एक लेख लिखना था। उसी के अध्ययनके निमित्त वे आये थे। ये विदेशी पत्रकार एक एक लेख पर कितना द्रव्य व्यय करते हैं, कैसी लगन से कार्य करते हैं यह कितने आश्चर्य की बात है। वे सज्जन टावन कोर मदरास की ओर के थे। हिन्दी वे बहुत ही कम--नही के बराबर--जानते थे। तीन दिन वे मेरे संपर्क में रहे। उन्होने हिन्दी अंगरेजी कोप की सहायता से वह २३-२४ पृष्ठकी मेरी पुस्तक १२-१४घंटेमें स्वयं ही पढी। किसी से उसका अंगरेजी अनुवाद नहीं कराया। पूरा एक दिन उन्हें उस पुस्तकके पढनेमे लगा। दूसरे दिन वे मेरे साथ मछली शहर बादशाहपुरीकी ओर भी यह देखने गये कि मै प्रचार कैसे करता हूँ। मार्गमें मैंने पूछा-"क्या आपने मेरी पुस्तिका आदिसे अन्त तक पढी?"

उन्होने कहा--"हां पढी।"

मुझे बडी उत्सुकता हुई। यह व्यक्ति तो चुनाव चख चखमें नही है। इसे किसीका पक्ष भी नही लेना है। यह जो आलोचना करेगा तटस्थ व्यक्तिकी भांति करेगा। उससे अपनी भूलों का ज्ञान हो सकेगा। इसी लिये मैंने --"क्या मैंने उसमें कुछ मिथ्या बातें लिखी हैं?"

उन्होंने कहा--"हां लिखी है।"

मेरी उत्सुकता और बढी। मैंने पूछा-"कौन कौनसी मिथ्या बातें मैंने उसमे लिखी हैं?"

उन्होने कहा--"आपने एक स्थान पर लिखा है एक दृष्टान्त दिया है किसीके पांच लड़के पांच लड़कियां है, ५ बीघा खेत है पांच कोठरी का मकान है तो लड़के लड़कियोंके भागमें आधी आधी कोठरी और आधा आधा बीघा खेत आवेगा। इस पर लडाई होगी आदि आदि।"

मकानकी बात तो उचित ही है, किन्तु कृपियोग्य खेती में लड़की को भाग मिले यह तो हिन्दु कोडमें नहीं है। खेती की

भूमि पर तो प्रान्तीय सरकारों का शासन है, केन्द्रीय सरकार उसके सम्बन्ध में नियम बना ही नही सकती। फिर आपने ऐसी बात क्यों लिखी ?"

मैंने कहा—"भाई! उसमें स्पष्ट लिख दिया है कि यह एक दृष्टान्त मात्र है। दृष्टान्त सदा एक देशीय होता है। फिर लड़कियों को भाग देने का सिद्धान्त यदि स्वीकार कर लिया गया, तो प्रान्तीय सरकारें खेती की भूमि में भाग देने के नियम बनाने को विवश होंगी।' केन्द्रीय सरकार के अधिकार के बाहर की बात है इसीलिये उसने खेती की भूमि को नही रखा।"

उन्होने कहा—"हां यह तो यथार्थ है, किन्तु फिर भी जब तक प्रान्तीय सरकारें इसे स्वीकार न करलें तब तक आपको ऐसा दृष्टान्त न देना चाहिये।"

मैंने कहा—"दृष्टान्त सदा एक देशीय होता है और सभावना में भी दिया जाता है। अच्छा और बताओ और उसमें क्या भूल है ?"

उन्होने कहा—"आपने लिखा है इगलैड अमेरिकादि देशोंमें एक एक दिनमें स्त्रियां तीन तीन विवाह कर लेती हैं, यह झूठ बात है ऐसा तो कभी सभव ही नही।"

मैंने कहा—"अरे भाई! तुम हिन्दी तो जानते नही। यह तो कहनेका ढंग है। जैसे कहते है कि वहां तो सहस्रों मनुष्य थे, चाहे पचास ही रहे हों। सहस्रों कहनेसे अभिप्राय इतना ही है कि बहुत लोग थे। इसी प्रकार एक स्त्री एक दिनमें तीन विवाह करलेती है इसका अर्थ इतना ही हुआ कि वहां की स्त्रियां पति-त्यागको बुरा नही मानती। जीवनमें एक न कर के अनेक पति करती है।"

उन्होने कहा—"आप के लिये ऐसा उचित नहीं। आपकी

मोटर घटेमें तीस मील जारही है, आप कह दें तीन सौ मील जारही है, यह तो असत्य ही है।"

मैंने कहा—"नहीं भैया ! यह तो दूसरी बात रही। दृष्टान्त में ऐसे ही कहा जाता है। मैं तो विलायत गया नहीं। मैंने सुना है वहाँ छोटी छोटी बातों पर पत्नी अपने पति छोड़कर चली जाती है और एक स्त्री अपने जीवन में बहुत पतियों से विवाह करती है।"

उन्होंने कहा—"किन्तु एक दिन में तीन तो नहीं करती। आप नहीं जानते तो आपको लोक सभा की सदस्यता के लिये उठना ही नहीं चाहिये था।"

मैंने कहा—"तुम समझते तो हो नहीं भैया ! यह एक भाषा लिखने की प्रणाली है। मैंने यह कब कहा कि सब कर ही लेती है। यह अतिशयोक्ति अलंकार है। अच्छा और बताओ मैंने और कौनसी मिथ्या बात लिखी ?"

उन्होंने कहा—"आपने नेहरूजी पर व्यक्तिगत आक्षेप किया है कि उन्होंने अपनी भतीजी तथा पुत्री का विधर्मियों के साथ विवाह होने दिया। यह उचित नहीं।"

मैंने कहा—"तो भाई ? इसमें कोई झूठ बात तो है नहीं यह तो सत्य है इसे सभी जानते हैं सभी कहते है।"

उन्होंने कहा—"सत्य तो है ही, सब जानते हैं सब कहते भी हैं, किन्तु आपको ऐसा नहीं कहना चाहिये। हिन्दू कोड की आप बुराई दिखावें किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप क्यों करें ?

मैंने कहा—"भाई, देखो ? मेरे विरुद्ध लोग कैसी झूठी झूठी बातें कह रहे हैं। स्वयं नेहरूजी ही कहते है इन्हें राजा जमीदारों ने खड़ा किया है, यह तो सोलह आने झूठ है। मैं एक सत्य बात को बड़ी नम्रता से कहता हूँ तिस पर भी तुम मुझे दोषी ठहराते हो ?"

उन्होंने कहा—"कांग्रेसी तथा नेहरूजी जो भी कहें उनका सब क्षम्य है,वे लोग तो राजनैतिक व्यक्ति हैं। वे तो इससे सहस्र गुनी झूठी बातें कहें वे भी क्षम्य हैं, क्योंकि राजनीति में तो चलता है। वे लोग तो अपने स्वार्थ के लिये सब कुछ कर सकते है। किन्तु आप तो राजनैतिक पुरुष नहीं हैं। महात्मा हैं धर्मात्मा हैं, आपका मैं बहुत अधिक आदर करता हूँ। मैं महात्मा की दृष्टि से ही पूछ रहा हूँ, यदि आप अन्य साधारण लोगों की भांति नेहरूजी का विरोध करते तो सहस्रों झूठी बात भी कहते तो मैं उनको अच्छा ही कहता, किन्तु आपको ऐसा नही कहना चाहिये था।"

यह सुनकर मैं लज्जित हो गया। अपनी झेंप मिटाने को मैंने कहा—"हाँ, भैया तुम ठीक कहते हो वर्तमान राजनीति का क्षेत्र बड़ा दूषित हो गया है, वास्तव में मुझे इस प्रकार व्यक्तिगत आक्षेप नही करना चाहिये, किन्तु लोगों पर यह प्रभाव पड़े कि नेहरूजी यह चाहते है, कि हमारी बहिन बेटी विधर्मियो के साथ विवाह करें जिसे ग्रामीण लोग बहुत बुरा मानते हैं—इसलिये मैंने यह छोटी बात कह दी। मुझे ऐसी बात कहनी नही चाहिये थी ऐसा कहना मेरे स्वरूपानुरूप नही है। फिर भी अच्छे कामके लिये कुछ न कुछ नीचे उतरना ही पड़ता है—कुछ न कुछ कालिख लगानी ही पड़ती है। कहो तो एक दृष्टांत सुनाऊँ?"

उन्होने कहा—"हाँ सुनाइये।"

मैंने कहा—"देखो, एक बटलोही है, भोजन बनाने से उसमें कालिख लग गयी। अब उसकी कालिख को धोना है। हम एक कूँचा लेकर उसे रगड़ते हैं। रगड़ने पर बटलोही की कालिख तो छूट जाती है, किन्तु उस कूँचेमें लग जाती है। जब बटलोही स्वच्छ हो गयी, तो फिर सुन्दर जल से उस कूँचे को भी स्वच्छ कर लेते है। इसी प्रकार इस हिन्दुकोडबिल रूपी कालिख को

स्वच्छ करने के लिये कुछ कालिख तो हमें लगनी ही है।"

यह सुनकर वे खिलखिला कर हंस पड़े और बोले—"यह दृष्टान्त आपने बहुत सुन्दर सुनाया।"

सुन्दर क्या सुनाया, वास्तवमें मैंने अपनी झेंप मिटायी, मुझे अनुभव हुआ कि वर्तमान राजनैतिक निम्न वातावरण में भी लोगों के हृदयों में धर्म के प्रति कितनी उच्च भावनायें हैं। उन टाइम के प्रति निधि ने यहां से जाकर २८ जनवरी के 'टाइम' में जो लेख लिखा उसमें से कुछ भाग का सारांश यह है,

## टाइम जनवरी २८, १९५२ से उद्धृत

वायुयान, जलयान, रेल मोटरों तथा बैलगाड़ियों द्वारा भारत के प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू भारत के ४ मास लम्बे प्रथम सर्व साधारण चुनाव के लिए निर्वाचको में उत्साह की लहरें उत्पन्न करते हुए सम्पूर्ण देशमें दौरा करते रहे। उन्होंने २३००० मीलों की यात्रा की–१० भाषण प्रतिदिन के हिसाबसे दिये और २५ करोड़ जनता को संबोधित किया। वास्तवमें वे अपने चुनाव क्षेत्र के अतिरिक्त प्रायः सभी स्थलों पर गये। पर उन्होंने कहा कि इलाहाबाद में प्रचार की आवश्यकता नही थी।

गतसप्ताह उनको एक कष्टदायक समाचार मिला। उनके एक मात्र विरोधी ५२ वर्षीय प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, सुन्दर भूरी दाढ़ी, नारंगी एवं लाल ढांचे के ऐनक, गेरुआ वस्त्र और एक लम्बा श्वेत अधोवस्त्र धारण किये हुए शांतिपूर्वक मतदाताओं को आकर्षित कर रहे थे। उन्होने यह कार्य सिवा बीच-बीच में जोर जोर से हंस देने के, बिना एक शब्द मुंह से निकाले किया।

**एक आधार**—गत १९२१ ई० में ब्रह्मचारी नेहरू की भांति महात्मागांधी के मोहन मंत्र में पड़ गये। पर वे एक साधु या पवित्र पुरुष हो गये। मौन रहने तथा ब्रह्मचर्य पालन करने की

प्रतिज्ञा की। कई बार अंग्रेजों द्वारा कारावास भेजे गये (एक बार पडित नेहरू के साथ भी) जेल में थे। उन्होंने गंगा नदी के तट पर वेदाध्ययन करने के लिये कुटी बनाई और हिन्दू देवता कृष्ण के जीवन चरित्र के १०८ खंडों में से प्रथम ६० खंडों की रचना की। एक दिन पिछले अक्तूबर में उन्होंने उच्च स्वर में "हे नाथ नारायण" जिसके अर्थ "ऐ प्रभु" होते हैं, कहा और केवल उस समय उस पवित्र पुरुप का मौन-व्रत टूटा। उन्होंने लिखा "यदि मैं चुनाव में भाग लेता हूँ तो केवल इसलिये कि मेरी अन्तरात्मा ऐसा करने को प्रेरित कर रही है।"

ब्रह्मचारी के चुनाव का आधार केवल एक था—नेहरू द्वारा प्रस्तुत किये गये हिन्दू कोड बिल–जिसमें अन्तर्जातीय विवाह की अनुमति है, जो सात पीढ़ियों दूर भतीजे भतीजियों के वैवाहिक निपेधको ढीला करता और जो प्रथमदार तलाक को हिन्दूस्त्रियों के लिये सम्भव बनाता है—यद्यपि तब भी यह बहुत कठिन है ब्रह्मचारीजी ने लिखा"हिन्दू कोडबिल, धर्मका विनाश कर देता है, जातियों में गड़बड़ी उत्पन्न करता है, धार्मिक ग्रन्थो के अधिकारो में धक्का पहुँचाता है, हिन्दू संस्कृति पर कुठाराघात करता है,प्रत्येक कुटुम्ब को अस्त व्यस्त कर देता है भाइयों और बहिनों में पारस्परिक कलह उत्पन्न करके केवल वकीलों को लाभ पहुँचात है।" उन्होने कहा "नेहरू काले अंग्रेज हैं जिन्होंने पश्चिम में अध्ययन किया है और वहां के रहन सहन के ढंगों से इतने ओत प्रोत हैं कि वे चाहते हैं कि हम सब ईसाई रीति रिवाजों के धारण करने वाले बन जायें।

पवित्रपुरुप ब्रह्मचारी नेहरू के चुनाव क्षेत्र में सन् १९५१ की एक डाज मोटर द्वारा कुछ गायको के साथ दौरा करते हैं। हिंदू धर्म गीतों को गाते गाते,मंजीरों की जोड़ी बजाते हुये सभा स्थल पर नाचने लगते हैं। एक लेख में ब्रह्मचारीजी ने अमेरिक के

तिलाक के सम्बन्ध में यह लिखा कि—"मैंने सुना है कि अमेरिका में स्त्रियां दिन में तीन पतियों का परित्याग करती हैं। और कुछ ऐसी स्त्रियां भी है जिनमें से प्रत्येक कई सौ पतियों का परित्याग कर चुकी हैं। अमेरिकन विवाह। लेखमें वे कहते हैं "एक भारतीय विद्यार्थीने एक अमेरिकन स्मशान को देखते समय देखा कि एक युवती पति समाधि के पास बैठी अपने हाथ पंखे डुला रही है। उसने उससे पूछा "क्या तुम भारतीय नारियों के प्रसिद्ध पतिव्रत धर्म का अनुसरण कर रही हो ? स्पष्ट करते हुये कहा कि भारतीय स्त्रियां सोचती हैं कि पति उनके देवता हैं।" युवती ने कहा "मेरे और मेरे पति के बीच अत्यधिक प्रेम था। पर मरते समय उसने मुझसे प्रतिज्ञा करवाई कि मैं तब तक पुनर्विवाह न करूँ जब तक मेरी समाधि सूख न जाय। मैं हवा कर रही हूँ जिससे यह शीघ्र सूख जाय और मैं नव प्रेमी के साथ विवाह-सम्बन्ध कर सकूं।"

जब ब्रह्मचारी की पुस्तिका की भी ७६००० प्रतियाँ बिक गई तब तो नेहरू भागे हुये गत सप्ताह मे इलाहाबाद आये और उन्होंने ललकारा "मैं हिन्दू कोड बिल के लिये अन्त तक लड़ूंगा, कोई देश उन्नति का स्वप्न, स्त्रियों के हितों को भुलाकर नही कर सकता नेहरू ने तब कहा "ब्रह्मचारी के पीछे देश के पूँजी पति हैं, बड़े बड़े ब्लैकमार्केट वालों, जमींदारों, महाजनों के अतिरिक्त जो यह भय खाते है कि कांग्रेस उनकी सामंतशाही प्रथा का शीघ्र उन्मूलन कर देगी और कोई नहीं हैं इत्यादि।"

इस लेखको पढ़कर अमेरिका से मेरे एक भारतीय मित्र ने मुझे एक पत्र लिखा और इस लेख की चीर (कटिङ्ग) मेरे पास भेजी। उन्होंने लिखा आपको पंखे वाली कहानी किसी ने भूठी सुनाई। यहां की स्त्रियां ताना देती हैं कि ब्रह्मचारीजी ने अमेरिकन स्त्रियों के विषय में ऐसी भूठी बातें क्यों लिखीं।

इस सम्वन्ध में मेरा नम्र निवेदन यह है कि दिन में तीन विवाह करने की बात मैंने अतिशयोक्ति अलंकारानुसार दृष्टान्त के रूप में लिखी। दूसरे वह केवल अमेरिका के ही सम्बन्ध में नही थी उसमें इंगलैंड अमेरिका ईरान आदि सभी उन देशों का दृष्टान्त था जिनमें पति परित्याग (तलाक) की प्रथा है। दूसरे पखावाली कहानी में तो अमेरिका का नाम तक नहीं। वह विलायत से लौटे एक विद्यार्थी की कथा है, फिर उसे मैंने स्वयं ही सत्य नही माना। "यह हँसी की बात होगी" ऐसा कहकर स्वयं उसे भूठ बताया है। फिर आप कह सकते हैं—"ऐसा भूठा दृष्टान्त लिखा ही क्यों?" सो यह तो साहित्य का विषय है, दृष्टान्त के भूठ सत्य की ओर कभी ध्यान नही दिया जाता, *उसका केवल भाव लिया जाता है।*

मेरा अभिप्राय किसी भी देश की माताओं के अपमान में नही था, मेरा भाव केवल एतावन्मात्र ही था, कि भारतीय द्विज महिलायें अपने पति के परित्याग को तथा पुनर्विवाह को अच्छा नहीं मानतीं। मैं समझता हूँ, हिन्दी का कम ज्ञान होने से ही लेखक ने ऐसी भ्रमात्मक बातें कह दीं हैं।

इस प्रसंग को लिखने का मेरा अभिप्राय यही था, कि आज-कल का राजनैतिक स्तर इतना निम्न हो गया है, कि उसमें चरित्र गठन सांस्कृतिक उन्नति तथा धार्मिक भावना का विकास अत्यत कठिन हो गया है इस चुनाव चख चख को देखकर मुझे बड़ी आन्तरिक वेदना हुई। स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य का कहाँ तक पतन हो सकता है इसका नग्नचित्र मुझे देखने को मिला। पहिले लोग धर्म से डरते थे, अब तो धर्म को राजनीति से निकाल कर फेंक दिया है। धर्म भावना विहीन राजनीति का ऐसा परिणाम होना ही चाहिये। इस धर्म प्रधान देश की सरकार ने अपने को धर्महीन या धर्म निरपेक्ष घोषित कर दिया

है। उसका जो भयंकर परिणाम होगा, उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

हमारे शासक धर्म के नाम से चिढ़ते है, वे हिन्दू धर्म को भी इस्लामी मजहब की भाँति समझे हैं, किन्तु हिन्दू धर्म तो परम सहिष्णु विशाल धर्म है, वह मुसलमानों की भाँति यह नहीं कहता कि जब तक तुम मुसलमानी पंथ में दीक्षित न होगे तब तक तुम्हारा निस्तार नही, किन्तु हमारे यहाँ तो यह कहा है।

कि तुम जहाँ हो वहीं रहकर स्वधर्म का सत्यता के साथ पालन करो। हिन्दू धर्म कोई मजहब नहीं, वह दूसरों से द्वेष करना नहीं सिखाता। वह कभी नही कहता बल पूर्वक किसी को अपने धर्म में मिला लो तुम्हें पुण्य मिलेगा। हमारे यहाँ मुट्ठी भर पारसी आये थे उन्हें आये सैकड़ों वर्ष हो गये वे अपने साथ पूजा की जो अग्नि लाये थे वह अब तक ज्यो की त्यों है, कभी किसी ने उनसे अपना धर्म छोड़ने को नही कहा।

राजनीति की जड़ धर्म है, जो शासन धर्महीन या धर्म निर-पेक्ष होगा, उसकी जड़ें जम नहीं सकती। वह स्थायी रह नहीं सकता। दूसरे भोगवादी देश भले ही धर्म विहीन बने रहें, किन्तु धर्म प्रधान भारतवर्ष का तो धर्म ही प्राण है उसकी धर्म विहीन राजनीति कै दिन चल सकती है।

केवल राजाज्ञा राज्यविधि–कानून–के सहारे कोई न तो सुधार हो सकता है न शासन और न सदाचार का पालन। राजाज्ञा को पालन कराने के लिये एक व्यक्ति के पीछे एक राज-चर (पुलिस) का आदमी तो आठ पहर लगा नही रहेगा, अच्छा मान भी लो एक व्यक्ति के पीछे एक चर लगा दिया, तो धर्म-हीन राजचर लोभ लालच के कारण उससे मिल जायगा। घूँस लेकर उसे मन मानी करने देगा। आज बाजारों में न्यायालयों

में प्रत्येक राजकीय विभागों में इसका नग्न चित्र देखने को मिल ही रहा है। लोगों में सहानुभूति नहीं रही, मनुष्यता नहीं। धर्मभावना नही रही। नीचे से ऊपर तक सब अर्थ लोलुप हो गये है। बिना पैसा के कोई बात नही करता। पैसा दे दो झूठ को सच और सच को झूठ सिद्ध करालो।

यद्यपि राजनीति एक प्रपंच का कार्य है, इसमें फंसने से मन चंचल होता है, बाह्य विषय पदार्थों का मन में महत्व बढ़ जाता है, राग द्वेष हो जाता है परमार्थ चिन्तन की प्रवृत्ति घट जाती है, इसीलिये परमार्थ पथ के पथिक साधकगण प्रायः राजनैतिक कार्यों से दूर रहकर निरंतर भगवत् चिंतन भगवन्नाम कीर्तन में लगे रहते है, तथापि वे राजनीति की सर्वथा उपेक्षा कभी नहीं करते। यदि वे उपेक्षा कर दें तो रक्षक ही भक्षक बन जायँ, समाज धर्म विहीन हो जाय, पापाचार कदाचार की वृद्धि हो, सब लोग स्वार्थ साधन को ही अपना परम ध्येय मानने लग जायँ, व्यभिचार को प्रोत्साहन मिले दाम्पत्य प्रेम नष्ट हो जाय, परिवार तथा सन्तानोके प्रति ममता नष्ट हो जाय। विशुद्ध धार्मिक राजा या शासक ही प्रजा की धार्मिक भावनाको जागृत करके उसे पापाचारसे निवृत्त कर सकता है। उपासनाकी पद्धति सदासे सबकी पृथक रही है रहेगी। आप संस्कृतमें प्रार्थना करो हिन्दीमें अरबी फारसीमें करो, सन्ध्या करो, भजन करो, नमाज पढ़ो, शंख चक्रांकित हो, बपतिस्मा लो। इसमें तो आपत्ति ही नही। श्रीमद्भागवतमें सभी वर्णों और आश्रमके पृथक् पृथक् धर्म बताकर अन्तमें एक सभी वर्ण सभी आश्रम तथा मानव मात्रके लिये समान धर्म बताते हुए कहा है—सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा युक्तायुक्त विचार, शम, दम, अहिंसा ब्रह्मचर्य त्याग स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी संतोंकी सेवा, शारीरिक भोगोंसे शनैः शनैः निवृत्त, प्रारब्ध, मौन, चिन्तन, आत्मचिंतन,

प्राणियोंमें अन्न जलादिका विभाग करके भोजन करना, हरिकथा श्रवण, हरिकीर्तन, हरिस्मरण, भगवत् सेवा, भगवत्पूजा, नमस्कार, भगवान्में दास भाव, सख्य भाव तथा आत्म समर्पण करना ये तीस मानव धर्म है। इन्हें गिनाकर अंत में कहा है—

नृणा मयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥
(श्री भा० ७ स्क. ११ अ. १२ श्लो.)

अर्थात् यह तीस प्रकार का आचरण ही मनुष्यमात्र का सर्वोत्तम धर्म कहा गया है, इसका पालन करने से सर्वात्मा श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं।

इन धर्मोंकी समाज की मान्यता के अनुसार बाल्यकाल से ही शिक्षा देना राज्य शासन का कर्तव्य है। राज्य की ओर से इनका पालन कराना चाहिये। लोगों को भगवान् की ओर लगाना चाहिये, हमरे जो पूर्वज हो गये हैं उनके चरित्र इतिहास पुराणों से सुनाना पढ़ाना चाहिये। मनुष्य का इतना ही लक्ष्य नही हैं कि किसो प्रकार पेट भरलें और दिन काटलें। मनुष्य का परम लक्ष्य है भगवत् प्राप्ती। राजनीति का लक्ष्य है इस लोकमें शान्ति रहे। धर्म का लक्ष्य है हमारा परलोक बने। इसलिये हमें जो भी करना चाहिये यह लोक तथा परलोक को दृष्टि में रखकर करना चाहिये। जो निरंतर भगवत् भजन में ही निरत रहे, उनकी रक्षा तथा योग क्षेमका भार राज्य पर होना चाहिये यही धर्म और राजनीतिका समन्वय है। धर्म विहीन राजनीति

थोथी है, सार हीन है। ऐसी नीतिका प्रत्येक धर्म प्रेमी को प्राण-पण से विरोध करना चाहिये। धर्म ही जीवन है, धर्म ही रक्षक है और धर्म से ही सुख शांति की प्राप्ति होती है। इसी लिये शास्त्रकारो ने कहा है—

**धर्मो रक्षि रक्षितः**

रक्षित धर्म धर्म करने वाले की सदा रक्षा करता है आज इतना ही। फिर कभी,

संकीर्तन भवन, झूसी
फाल्गुन शु. ११. २००८. वि
प्रभुदत्त

भगवान् का रुक्मिणी जी से विनोद

# भगवान्‌का सप्तम विवाह

( ११०६ )

वरं विलोक्याभिमतं समागतम्।
नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम्।
भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः
करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतः। *
( श्रीभा० १० स्क० ५८ अ० ३६ श्लोक )

**छप्पय**

भयो सातवों ब्याह श्यामको सत्या सँग महँ।
कोशलेशकी सुता सुन्दरी सुविदित जग महँ॥
नृप प्रन कीयो सात बैल जो नाथे भूपति।
ताकूँ कन्या देहुँ सुनत तहँ पहुँचे श्रीपति॥
प्रन सुनि उतरे फेंट कसि, सात रूप हरि धरि लयें।
हँसत हँसत नाथे वृषभ, निरखि मुदित सब जन भये॥

भगवान् भक्ति को देखते हैं, वे बाह्य वस्तुओं की ओर ध्यान नहीं देते। भक्तके मनमें शंका हो उसका समाधान करते हैं। विश्वास शिथिल पड़ रहा हो तो विश्वास जमाते हैं,असम्भव बात

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! राज कुमारी सत्याने अपने अनुरूप वर श्रीरमापति भगवान् वासुदेव को आये हुए, देख कर मन ही मन यह इच्छा की, कि यदि मैंने व्रतादि करके इन्हीं का सदा चिन्तन किया है तो ये ही मेरे पति हों और मेरी विशुद्ध मनोकामना को सत्य बनावें।

दिखाई देती हो, तो उसे सम्भव करके दिखाते हैं, किन्तु हो उनपर दृढ़ विश्वास । दृढ़ विश्वास होनेपर विश्वेश्वर प्रकट न हों पधारें नहीं यह असंभव है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! मैंने भगवान् के छँ विवाह का वर्णन आपसे किया । अब आप सातवें विवाह की कथा श्रवण करें।

जिन दिनों भगवान् द्वारकापुरीमें निवास करके प्रकट लीला कर रहे थे । उन दिनों कोशल देशमें नग्नजित् नामके राजा राज्य करते थे । वे बड़े ही भगवद् भक्त और धार्मिक प्रकृतिके भूपति थे । उनकी धार्मिकता सर्वत्र विदित थी। उनके नाग्नजित नामकी एक कन्या थी । नग्नजितके कन्या होनेसे उसको नग्नाजिती कहते हैं । *वास्तविकमें उसका नाम सत्या था । सत्या अत्यन्त ही* सुन्दरी सुशीला तथा सर्व गुण सम्पन्ना थी । जब वह विवाह योग्य हुई, तो वहुतसे राजाओं ने उस कन्याकी याचना की। राजा चाहते थे, मेरी पुत्री का विवाह भगवान् यादवेन्द्र के साथ हो, किन्तु वे सब राजाओं को प्रत्यक्ष मना भी नहीं करना चाहते थे । अतः उन्होंने एक पण रख दिया । राजाने बड़े बड़े पैने सींग वाले, बहुत हृष्ट पुष्ट, अत्यन्त मरखने सात सांड़ पाल रखे थे, वे इतने क्रोधी थे कि मनुष्य की गन्ध पाते ही वे उस पर टूट पड़ते । एक हो तो कोई जैसे तैसे पकड़ भी ले वे तो सात थे और सातों दुरधर्ष थे । कोशलेश महाराज नग्नजित् ने प्रतिज्ञा की जो मेरे इन सात बैलों को एक साथ नाथ कर वश में कर लेगा, उसी के साथ मैं अपनी सर्व लक्षण सम्पन्ना सुशीला सत्या कन्या का विवाह कर दूँगा ।

इस समाचार को सुनकर अपने को अत्यन्त बली समझने वाले बहुत से राजा और राजकुमार आये। अब कोई अस्त्र शस्त्र का काम हो,लड़ना भिड़ना हो, धनुर्वेद की कला दिखानी हो

तो कोई उस कन्या को जीत भी ले। बैलों से लड़ना सो भी, एक से नहीं सातों से एक साथ भिड़ना कोई सामान्य कार्य नहीं था। जो भी आते, वे क्षत विक्षत शरीर होकर लौटते। बैल किसी के पेट में ही सींग भोंक देते, किसी की आँखों को ही फोड़ देते। किसी की हड्डी पसली चकना चूर कर देते। किसी को लँगड़ा लूला बना देते। इस प्रकार सहस्रों बड़े-बड़े क्षत्रिय आये और अंग हीन होकर अपना सा मुँह लेकर लौट गये।

जब भगवान् ने यह समाचार सुना, कि सात बैल नाथने से सुन्दरी बहू मिलती है तो फिर उन्होंने देरी नहीं की तुरन्त सेना सजा कर अयोध्यापुरी को चल दिये। भगवान् सोचे—"पहिले अवतार में तो हम अयोध्या-पुरी में उत्पन्न ही हुए थे, अबके चलो वहाँ अपनी ससुराल ही बना लें। आधा सम्बन्ध तो बना ही रहेगा। बैल नाथना कौनसी बड़ी बात है। बालकपन से हम यही तो करते रहे। व्रज में रह कर सहस्रों बछड़ों को हमने नाथा है।" यही सब सोच कर वे अवधपुरी में सेना सहित पहुँच गये।

जब महाराज नग्नजित्‌ने यादवेंद्रके आगमन का समाचार सुना तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। बड़ी श्रद्धा भक्तिसे उनका स्वागत सत्कार किया। अभ्युत्थान तथा आसनादि देकर पूजा की विविध वस्तुओंसे वासुदेव की विधिवत पूजाकी फिर हाथ जोड़ कर बोले—"यदुनन्दन! आपने अपने देव दुर्लभ दर्शन देकर इस दीन हीन साधन विहीन दास को कृत कृत्य कर दिया। हे वृष्णिवंशावतंस! हम आपकी क्या सेवा करें। आपकी किस आज्ञाका पालन करें। आपको मार्गमें किसी प्रकारका श्रम तो नहीं हुआ? आप यहाँ तक सकुशल तो आये न? आपकी यात्रा सुखपूर्वक तो हुई?"

भगवान् ने कहा—"राजन्! आप परम धार्मिक हैं, आपको

प्रशंसा सुनकर हम आपके दर्शनों के निमित्त आये हैं। आपने आसन, पाद्य अर्घ्यादि से हमारा जो स्वागत सत्कार किया,उसे हमने सहर्ष स्वीकार कर लिया। अब हम आपसे एक छोटीसी वस्तुकी याचना करते हैं?"

अत्यंत उल्लासके साथ राजाने कहा—"माधव! याचनातो अन्यसे की जाती है। यह राज्यपाट तथा मैं और मेरा परिवार सब आपकाही है। आप आज्ञा करें; किस वस्तु के द्वारा आपकी सेवा करूँ?" यह सुनकर भगवान् कुछ लज्जित से हुए वे कुछ कहना चाहते थे, किन्तु कहते कहते रुक गये तब राजाने कहा—"यदुनन्दन! आप संकोच छोड़ कर आज्ञा करें।"

यह सुनकर भगवान् बोले—"राजन्! देखिये, संसारमें याचना बड़ी बुरी वस्तु है। याचक को देखकर सभी घृणा करते हैं। ब्राह्मण हो, और वह याचना करले, तो कोई बात ही नहीं। ब्राह्मणोंकी विधाता ने यही वृत्ति बनाई है, किन्तु धर्ममें स्थित क्षत्रियके लिये विद्वानों ने याचना निन्दित बताई है। अनापत कालमें जो क्षत्रिय याचना करता है, वह क्षत्रियत्वसे पतित हो जाताहै फिर भी मैं जिसवस्तुकी याचनाकरना चाहता हूँ वह गर्ह्य नहीं है। उस वस्तुके कारण हममें आपमें प्रेम बढ़ेगा सम्बन्ध स्थापित होगा। दोनों ओर से आनन्दोल्लास होगा।"

महाराज नग्नजित्ने कहा—"हाँ, हाँ, वासुदेव आप आज्ञा करें।"

भगवान् ने कहा "सुना है; आपकी एक कन्या है, वह बड़ी ही सुशीला सर्वगुण सम्पन्ना तथा विवाह योग्य है। मैं उसे ही माँगने के लिये आया हूँ।"

यह सुनकर अत्यंत ही हर्ष प्रकट करतेहुये कोशलेन्द्र महाराज नग्नजित्ने कहा—"द्वारकानाथ! मेरे लिये इससे अधिक सौभाग्यकी और कौनसी बात होसकती है। जिनके अङ्गमें निरन्तर

लक्ष्मीजी निवास करती रहती हैं, ऐसे सर्वेश्वर सर्व गुण सम्पन्न आप मेरी कन्याको ग्रहण करलें तोमेरी इक्कीस पीढ़ियाँ तरजायँ मैं धन्य बनजाऊँ। ऐसा वर संसारमें खोजने पर भी मुझे दूसरा नहीं मिल सकता। किन्तु हे सात्वतर्षभ! मेरा एक प्रण है, उसे पूरा करके ही आप कन्या प्राप्त कर सकते हैं।"

भगवान् ने कहा—"उस प्रण को भी आप बतावें। किन्तु एक बात स्मरण रखें। बहुतसे कुलोंमें ऐसी निन्दनीय प्रथा है कि वर पक्षसे कन्या का कुछ मूल्य लेकर तब कन्या को देते हैं। ऐसे कन्याकी संतानें श्राद्ध तर्पण करने योग्य नहीं मानी जातीं। ऐसी प्रथा हमारे यहाँ नहीं है, न तो हम कन्याका शुल्क लेते ही हैं, न किसीको देते ही हैं।"

शीघ्रता के साथ महाराज नग्नजित्ने कहा—"नहीं, नहीं, यदुनन्दन! यह प्रथा हमारे भी कुलमें नहीं है। भला कन्या के धान्यको कौन कुलीन पिता खा सकता है? मैंने तो वरके बलकी परीक्षा के लिये एक प्रण कर रखा है, जो भी क्षत्रिय उस प्रणको पूरा कर देगा, उसीके साथ मैं अपनी कन्याका विवाह कर दूँगा

भगवान्ने कहा—"उस प्रणको हम भी तो सुनें? हो सकेगा, तो हम भी उसे पूरा करनेका प्रयत्न करेंगे।"

महाराज नग्नजित् बोले—"देखिये, माधव! हमारे पास अत्यंत तीक्ष्ण श्रृंगों वाले मरखने दुर्दान्त सात साँड़ हैं। उन सातों साड़ोंको जो नाथ कर अपने वशमें करले, उसके साथ मैं अपनी सुताका सहर्ष विवाह कर सकता हूँ। हे यादवेन्द्र! उन साड़ोंने बहुतसे राजकुमारोंको अंग भंग कर दिया है बहुतसे राजा बड़े उत्साहसे आयेथे, किन्तु हतोत्साह होकर लौट गये। यदि आपने उन बैलोंको अपने बल वीर्य से वशमें कर लिया तो सत्याके साथ आपका विवाह निश्चय ही हो जायगा।"

यह सुन कर भगवान्ने कहा—"अच्छी बात है कल मैं

परीक्षा करूँगा । मैं आपकी प्रतिज्ञा को भंग करके कन्या लेना नहीं चाहता ।"

यह सुनकर कोशलेन्द्र महाराज नग्नजित् को बड़ा हर्ष हुआ। यह समाचार क्षण भरमें पूरे देशमें फैल गया। लक्षों नर नारी भगवान् के दर्शनों के लिये तथा इस खेल को देखने के लिये कोशलपुरी में आने लगे।

राजकन्या सत्याने जब खिड़की में से झाँक कर श्यामसुन्दर के दर्शन किये तब तो उसके सब अङ्ग शिथिल पड़ गये। उसे अपने पिताकी प्रतिज्ञा पर क्षोभ हो रहा था। उसने मनसे अपना सर्वस्व श्यामसुन्दर के चरणारविन्दोंमें समर्पित कर दिया। वह मन ही मन देवी देवताओंकी मनौती मनाने लगी। कभी दुर्गाका स्मरण करती, कभी गणेशजीसे प्रार्थना करती। वह नेत्रोंमें जल भर भर कर बार बार मन ही मन कामना करती।"हे देवी देवताओ! यदि मैंने शुद्ध अन्तःकरण से व्रत नियमादिकों के द्वारा इन्हीं सर्वेश्वर श्यामसुन्दरका स्मरण चिन्तन किया हो तो उसी सत्यके प्रभावसे ये मेरे पति हों, मेरी यह विशुद्ध वासना पूर्ण हो। हाय! मैं तो एक अति साधारण अबला हूँ। मेरे में भक्ति नहीं, प्रेम नहीं, प्रभुके प्रति अनुराग नहीं। ये सर्वेश्वर हैं। लक्ष्मीजी इनके चरणोंकी रजके लिये सदा लालायित बनी रहती हैं। महादेवजी इनके नामको निरन्तर रटते रहते हैं। ब्रह्माजी इनके पाद पद्मोंकी पावन परागको प्रेमपूर्वक मस्तक पर धारण करते हैं। जो कर्म फल भोगने के निमित्त नहीं अपनी बाँधी हुई धर्म मर्यादा की रक्षा के निमित्त ही समय समयपर इस धरा धाम

पर अवतीर्ण होते हैं वे भगवान् मुझपर कैसे प्रसन्न होंगे, कैसे मुझे अपनी चरण दासी मानकर स्वीकार करेंगे ?" कैसे मेरे मनोरथको पूर्ण करेंगे।" इसप्रकार सोचतीहुई राजकन्या भगवान् के ही भुवन मोहन रूपका चिन्तन करती हुई प्रेमाश्रु बहाने लगी प्रेममें निरन्तर शङ्का बनी रहती है, कभी डर जाती कि ये दुष्ट साँड़ कहीं श्यामसुन्दरके सुन्दर शरीर में सींग न मार दें। इनका कोई अनिष्ट न हो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इसी प्रकार सोचते सोचते राजकन्या को प्रातः काल हो गया। इधर दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ एकत्रित हो गई। भगवान् ने कहा—"कहाँ हैं वेसात साँड़। उन सबको बाहर निकालो।"

सेवकोंने डरतेडरते कहा—"प्रभो ! उन्हें बाहर निकालनेका किसी में साहस नहीं। आप घेरेके भीतर ही चले जायँ।

भगवान्ने कहा—"अरे ऐसीतैसीउन साड़ोंकी। देखें कैसेनहीं निकलते। यह कहकर भगवान् फेंट बांधकर ताल ठोंकते हुए भीतर घुस गये। और अपनी योगमायासे सात रूप रख कर एक साथ सातों को नाथ दिया। सातोंकी नाकोंमें रस्सी डालकर वे एक साथ उन सबको उसी प्रकार खींच लाये जैसे बच्चे कुत्ते के छोटे पिल्लोंको बाँधकर खींचते है। अथवा खेलतेसमय शिशु जैसे लकडी तथा मिट्टीके खिलौनों को खींचते हैं। यह देखकर सबके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। सभी एक स्वरसे साधु साधु कहने लगें। भगवान्के ऊपर पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे।"

महाराज नग्नजित्को बड़ा ही हर्ष और विस्मय हुआ। नग्न

जितीके रूपका ठिकाना नहीं रहा। राजाने शुभ मुहूर्त और शुभ नक्षत्र देखकर सत्या का विवाह श्यामसुन्दरके साथ करदिया भगवान्ने भी अयोध्यापुरी में उस कन्याको विधि विधान पूर्वक ग्रहण कर लिया।

महाराज नग्नजित्की रानियों ने जब देखा हमारीकन्याको उसके अनुरूप वर प्राप्त हो गया है, तो वे भी परम प्रसन्न हुईं। सम्पूर्ण नगर इस आनन्दोत्सव के उपलक्ष्यमें सजाया गया था। शङ्ख, भेरी, मृदंग, वीणा, पणवतथा ढोलआदि बाजेबज रहेथे। ब्राह्मणगण आशीर्वाद दे रहे थे, वेदके मंत्रोंका उच्चारणकररहे थे। नगर निवासी नरनारी नयनाभिराम नटनागर को निहार कर नयनोंसे नेह के नीर बहा रहे थे। सभी सुन्दर स्वच्छ सुगंधित वस्त्र और मालाओं को धारण किये इधरसे उधर घूम रहे थे। महाराज कोशलेन्द्र ने दशसहस्रगौएँ, दिव्य वस्त्राभूषणों से सजी सजाई तीन सहस्र सेविकाएँ, नौ सहस्र गज, सतगुणे रथ, घोड़े तथा सेवक दहेजमें दिये। श्यामसुन्दर सुन्दरी पत्नी और इतना भारी दहेज पाकर परम प्रसन्न हुए।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् ने सात बैलोंको नाथने के लिये सात रूप धारण क्यों किये, क्या भगवान् एक रूप से उन सातों बैलों को नहीं नाथ सकते थे?

सूतजीने कहा—"नाथ क्यों नहीं सकते थे, महाराज! सात रूप रखने में एक रहस्य था। जिस समय भगवान् बैलों को नाथने चले उस समय महलकी खिड़की से नाग्नजिती सत्या भी

देख रही थी। वह भगवान् के सौंदर्य माधुर्य को देखकर अपने आपे से बाहर हो रही थी उसे ऐसा लग रहा था मानों भगवान् मधुरिमा को नेत्रो द्वारा पीलूँ। एक क्षण भी यह माधुरी मूरति मेरे नयनों से दूर न हो। उसी समय उसे स्मरण आया कि इनके तो छँ रानी और भी हैं। छै दिन तो मुझे इनका वियोग ही सहना पड़ेगा, तब मैं कैसे जीवन धारण करूँगी मैं तो इनके बिना पल भर भी नहीं रह सकती। यह स्मरण आते ही उसका मुख मलीन पड़ गया। भगवान् उसके मन के भाव को ताड़ गये। इसलिये तुरन्त उन्होंने अपने ही जैसे सात रूप रख लिये और सातों बैलों को एक साथ नाथ दिया सात रूप रखकर भगवान्ने यह दर्शाया, कि जिस प्रकार मैं सात रूप रखकर इन सातों बैलों को एक ही क्षण में वस में कर सकता हूँ, उसी प्रकार तुम तों के लिये पृथक् पृथक् सात रूप रखकर तुम सबको सात ही सन्तुष्ट रख सकता हूँ। तुमको एक दिन भी मेरा वियोग सहन न करना पड़ेगा।"

भगवान् के सात रूप देखकर सत्या सन्तुष्ट हो गई और उसने शोक मोह का परित्याग कर दिया। विधिवत् विवाह होने पर वह भगवान् की सातवीं पत्नी हुई।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार भगवान् के सात विवाह हो गये। अब आप सब लोग उनके अष्टम् विवाह का वृत्तान्त श्रवण करें।"

छप्पय

ह्वै प्रसन्न नृप करचो ब्याह सत्याको हरि सँग।
पति परमेश्वर पाइ समाई नहिं फूली अँग॥
दीयो बहुत दहेज द्वारका चले भुवन पति।
पथ महँ नृप बहु मिले करी जिनि वृषभनि दुर्गति॥
भेडनि कूँ ज्यों भेड़िया, छिन महँ देइगाइकें।
नृपति भगाये पार्थ त्यों, दिव्य बान बरसाइकें॥

# भगवान् का अष्टम विवाह

( ११०७ )

सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ।
स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥*

( श्री भा० १० स्क० ५८ अ० ५७ श्लोक )

छप्पय

आये सात्या संग द्वारका यदुनन्दन पुनि ।
मद्रदेश महँ गये लक्ष्मणा नृप कन्या सुनि ॥
भयो स्वयम्वर भूप देश देशनि के आये ।
अनुपम कन्या निरखि नृपतिगन सब ललचाये ॥
रङ्गभूमि आई लली, जयमाला कर धारि जब ।
रथ महँ पकरि बिठाइ हरि, भगे निहारें भूप सब ॥

भाग्यशाली जहाँ जाता है, वहीं इष्ट वस्तु को प्राप्त कर लेता है, रिक्त हस्त कभी लौटता ही नहीं । एक वस्तु के लिये सहस्र जन उत्सुक हैं,उनमें से केवल एक को वह वस्तु प्राप्त होती है शेष सब देखते के देखते ही रह जाते हैं, यह भाग्य नहीं तो और क्या

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! मद्रदेश के राजाकी सर्व सुलक्षण सम्पन्ना एक लक्ष्मणा नाम की कन्या थी, उसे भगवान् स्वयम्वर से उसी प्रकार हरण कर लाये जिस प्रकार गरुड़जी स्वर्ग से अमृत छीन लाये थे।

है। भाग्यवान् के प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनुकूल बन जाती हैं इसके विपरीत भाग्यहीन पुरुष के समस्त उपयोगी साधन भी व्यर्थ बन जाते हैं। बहुत से राजा सेना सजाकर बड़े समारोह से एकत्रित होकर जाते हैं, वे देखते के देखते ही रह जाते हैं, एक बिना सेना के अकेला ही आता है और सबको परास्त करके-विजय लाभ करके-चला जाता है।

सूतजी कहते है—"मुनियो ! कालिन्दी के विवाह के अनंतर अर्जुन प्रायः भगवान् के ही समीप अधिक रहते थे। नाग्नजिती सत्या के विवाह मे भगवान् के साथ वे भी गये थे। सात बैलों को एक साथ नाथ कर जब उन्होने सत्या के साथ विवाह किया तो अर्जुन को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा नग्नजित ने बहुत सा दहेज दिया था। उन सबको लेकर भगवान् द्वारका की ओर चले। रक्षा का समस्त भार अर्जुन पर था। मार्ग में बहुत से द्वेषी राजा मिले। उनमे अधिकांश ऐसे थे जो सत्या के साथ विवाह करने गये थे किन्तु सांड़ों ने उनके अङ्ग भङ्ग कर दिये थे। अब जब उन्होंने सुना कि सात बैलों को नाथकर श्यामसुन्दर सत्या को विवाह करके लिये जा रहे है, तो उनके मन में ईर्ष्या हुई वे सोचने लगे—"यह तो श्रीकृष्ण ने हम सबका बड़ा अपमान किया। क्यों नही हम सब एकत्रित होकर दहेज को और राजकुमारी को छीन ले।" उनमें बहुत से ऐसे भी राजा थे, जिनको पहिले यादवों ने परास्त किया था और वे यादवों से द्वेष मानते थे। वे सबके सब श्रीकृष्णचन्द्र-भगवान् से द्वेष रखते थे, सबका एक सा ही उद्देश्य था। अतः उन सबने मिलकर एक साथ मार्ग में भगवान् को घेर लिया।

उन राजाओं के अभिप्राय को समझकर बन्धुप्रियकृत अर्जुन हँस पडे। उन्होने अपनी विकट बाण वर्षा से राजाओं के छक्के छुडा दिये। उनके गाण्डीव धनुष से एक साथ असंख्यों बाण

निकलते थे, जो शत्रुओं के मर्मस्थानो! को पीड़ित करते हुए आर पार निकल जाते थे। वे सबके सब राजागण गांडीव धनुषधारी अर्जुन के अस्त्रों से उसी प्रकार नष्ट होने लगे जिस प्रकार दीपक की ज्योति में पतंगे नष्ट होते हैं, अथव घृत में पड़ने से जैसे मक्खियाँ नष्ट होती है। जब वे सब पार्थ की बाण वर्षाके वेग को सहन करने मे समर्थ न हो सके तो उसी प्रकार भाग निकले जिस प्रकार सिंह के भय से क्षुद्र पशु भाग जाते हैं।

इस प्रकार उन मार्ग के कण्टक रूप राजाओ को कुचलते हुए भगवान् सकुशल द्वारकापुरी में आये नई बहू का सभी ने स्वागत सम्मान किया। सभी के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हुए यदुनन्दन सुख पूर्वक अपनी पुरी में रहने लगे।

*अब तो भगवान् इसी ताड़ में* रहते कि कही किसी राजपुत्री का स्वयम्वर हो और वहाँ से नई बहू मिले। कोई बुलाओ चाहे न बुलाओ, सुनते ही भगवान् वहाँ पहुँच जाते। असुर प्रकृति के बहुत से राजा भगवान् से मन ही मन द्वेप रखते, वे क्षत्रियों के समाज में भगवान् को आमन्त्रित नही करते, किन्तु भगवान् को तो किसी के आमन्त्रण निमन्त्रण की अपेक्षा नहीं। अतः बिना ही बुलाये अपने स्वजनो के निमित्त पहुँच जाते हैं।

जिन दिनों भगवान् सत्या का वियाह करके लौटे थे, उन्हीं दिनों उन्होंने सुना कि मद्रदेश के राजा की सर्व सुलक्षण सम्पन्ना लक्ष्मणा नाम की एक कन्या है। वह अत्यन्त ही सुन्दरी है। सुनते ही भगवान् के मुख में पानी भर आया। उन्होंने सोचा— "बड़े भाई से कहेंगे या सेनापति से कहेंगे तो वे सोचेंगे— "इन्हें विवाह करने का बड़ा व्यसन लग गया है।" इस लिये किसी से कहो ही मत, यही सोचकर भगवान् अकेले ही रथ पर बैठकर चुपके से चल दिये।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! ऐसे तो न जाने कितने

राजाओं की राजकुमारियों का विवाह होता होगा, भगवान् सबमें बिना बुलाये चले जाते होंगे ?"

सूतजी बोले—"नहीं, महाराज ! भगवान् तो प्रेम के भूखे हैं, जो उन्हें हृदय से चाहता है उस वे सब प्रकार से अपना लेते हैं जो उनके अनुगत हैं, प्रपन्न हैं, जो उनको हृदय से चाहते हैं, उनके लिये भगवान् दौड़े जाते हैं। यह लक्ष्मणा हृदय से भगवान् को चाहती थी।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! कहाँ मद्रदेश कहाँ द्वारका "लक्ष्मणा ने भगवान को कैसे देख लिया ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! प्रेम देखने से ही थोड़े होता है। किसी के गुण श्रवण करके बिना देखे भी प्रेम हो जाता है। ये हमारे नारद बाबा यही तो करते रहते है। इधर के कुलावे उधर भिड़ाते रहते हैं। नारदजी को जब भी अवकाश मिलता तभी मद्रदेश चले जाते वहाँ के महाराज बृहत्सेन बड़े भगवद्भक्त थे। उनकी सभा में जाकर नारदजी बार बार भगवान् के दिव्य जन्म कर्मों का ज्ञान करते। पिता के समीप बैठी-बैठी लक्ष्मणा सब सुनती रहती। निरन्तर गुण श्रवण करते-करते उसका भगवान् के प्रति सहज स्वाभाविक अनुराग हो गया। जब वह बड़ी हुई विवाह के योग्य हुई तो वहसोचने लगी—"समस्त देवताओं को परित्याग करके जिन्हें साक्षात् लक्ष्मी देवीजी ने वरण किया था, वे ही श्यामसुन्दर यदि मेरे पति हो जायँ, तब तो मेरा शरीर सार्थक है। नहीं तो इन काम क्रोध के वशीभूत तुच्छ राजाओं को मैं अपना अङ्ग स्पर्श करने न दूँगी।" इस प्रकार उस राजकुमारी ने दृढ निश्चय कर लिया था।

सखियों द्वारा कन्याके मनोगत भावोंका पता उसकी माताको लगा और माताने यह समाचार अपने पति बृहत्सेनसे कह दिया। अपनी प्यारी पुत्रीके शुभ संकल्पको पूर्ण करनेके निमित्त महाराज

ने एक उपाय रचा। वे द्रौपदी के स्वयम्वरमें गये थे। उन्होंने देखा था महाराज द्रुपद ने एक बड़ा भारी खम्भा गाड़ा था उस पर एक यन्त्र में मछली लगाई थी। वह यन्त्र निरन्तर घूमता रहता था। उस मत्स्य को वेधने वाला ही कन्या को प्राप्त कर सकता था। राजागण मत्स्य वेध करने को जहाँ वे लक्ष्य लगाते वाण छोड़ते समय वह घूम जाता। अर्जुनने उस लक्ष्यको वेध कर द्रौपदी को प्राप्त किया था। इन मद्राधिप महाराज बृहत्सेनने उसे और क्लिष्ट बना दिया। मछली तो वैसी ही बनाई, उसी प्रकार वह घूमती भी थी किन्तु उसे ढक दिया था, नीचे जलमें उसकी परछाईं दिखाई देती थी। परछाईं को नीचे देखता रहे ऊपर वाण मारकर लक्ष्य में वेध करना साधारण कार्य नहीं था। राजा ने यह सब इसीलिये किया कि भगवान्के अतिरिक्त इस लक्ष्य को कोई नहीं वेध सकता। उसने सभी राजाओं के लिये स्वम्वरका निमंत्रण भेजा, भगवान्को भी बुलाया था। अबके भगवान् बिना सेनाके अकेले ही मद्रदेश चले गये। स्वयम्वर के समाचारको सुनकर सब देशों से सहस्रों राजा और राजकुमार आने लगे। सभी अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित और अपने मंत्री पुरोहित तथा सैनिकों को संग लिये हुए आये थे। महाराज बृहत्सेनने आगत सभी राजाओंका स्वागत सत्कार उनकी प्रतिष्ठाके अनुरूप किया। बड़ी भारी रंगभूमि बनाई गई। उसके बीचमें वह लक्ष्य वेध का स्तम्भ गाड़ा गया था। सुसज्जित मंचो पर आगत राजा और राजकुमार बैठे हुए थे। अब क्रमशः सब लोग राजकुमारी को प्राप्त करनेकी इच्छासे उस स्तम्भके समीप आने लगे। नीचे बड़ा भारी विशाल धनुष रखा था। उस धनुष को उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ाना फिर वाण को उसपर रखना जलमें देखते हुए निरन्तर घूमते रहने वाले लक्ष्यको वेधना इतने काम थे। बहुत से राजाओं पर तो वह विशाल धनुप ही नहीं उठा। बहुतों ने धनुप

को तो उठा लिया किन्तु उस पर प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा सके। वहुत से धनुष की डोरी को एक सिरे से दूसरे सिरे सिरे तक खींच तो लाये किन्तु उसे दूसरे सिरेमें वाँध न सके बीच में डोरी छूटजाने से उसके आघात से दूर जा पड़े और लज्जित हो कर धूलि झाड़ते हुए अपने-अपने आसनों पर आकर बैठ गये; बहुत से परम पराक्रमी वीर राजा थे, जिनमें दश-दश सहस्र हाथियों का बल था। जैसे जरासन्ध, अम्बष्ठ, शिशुपाल, भीमसेन, दुर्योधन कर्ण आदि। इन सबने धनुष पर प्रुत्यञ्चा चढ़ाली किन्तु उन्हें जलमें लक्ष्य की स्थिति भली भाँति न जान पड़ी। उन्होंने बाण को छोड़ा किन्तु वह लक्ष्य वेध न कर सका। अर्जुन बड़े लक्ष्य वेधी थे। उन्होंने भगवान की ओर देखा, तब हँसते हुए माधव बोले— "भैया, तू भी इस लक्ष्य को वेध कर देख ले। अर्जुनने भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। धनुष उठाया, प्रत्यञ्चाको चढ़ाया, उस पर बाण रखा। जल मे मत्स्य की परछाईं देख कर उसकी स्थिति भली भाँति समझ मत्स्यको लक्ष्य करके बाण छोड़ा, किन्तु वह बाण मत्स्य को छूता हुआ चला गया। वेध न सका।

जब सबका मान मर्दन हो गया, किसी ने भी अब मत्स्य के समीप जानेका साहस नहीं किया, तो भगवान् वासुदेव उठे। उन्होंने खेल खेल में ही धनुष उठाया उस पर रौंदा चढ़ाया और बाण रखकर पुरोहित से बोले—"बताओ पुरोहितजी ग्रह नक्षत्र कैसे है ?"

पुरोहित ने विनय के साथ कहा—"वासुदेव ! आप ग्रह नक्षत्रों अनुसार चलेंगे या ग्रह नक्षत्र आपके सकेत पर नाचेगे ? इस समय सभी ग्रह नक्षत्र स्वतः ही अनुकूल हो गये है। सूर्य अभिजित् नक्षत्र पर हैं। राजकुमारी आपको ही वरण करेगी। आप लक्ष्य वेध करें।" यह सुनते ही भगवान् ने एक वार जलमें देख कर ऐसा बाण मारा कि मत्स्य टुकड़े टुकड़े हो कर

नीचे गिर पड़ा।

फिर क्या था पृथिवी पर तथा अन्तरिक्षमें आनंदका सागर उमड़ने लगा देव गण आकाशसे जय घोष करने लगे, सुमुधुर स्वरमें देवताओं की दुन्दुभियाँ बजने लगीं। सुरगण आनंदमें विभोर हो सुर द्रुमों के सुमनों की वृष्टि करने लगे।

राजकन्या लक्ष्मणा इस समाचार को सुनकर फूली नहीं समाई। उसके रोम रोम से प्रसन्नता फूट फूटकर निकल रही थी। सखियों ने उसका सुन्दरताके साथ श्रृंगार किया, सुन्दर स्वच्छ बहु मूल्य नवीन दो रेशमी वस्त्र पहिनाये। चोटीमें रंग विरंगे सुगन्धित सुमनों की माला गूँथ दी। उसके हाथों में सुवर्णसे दमकती हुई मणियोंकी मनोहर माला देदी। उस विजय मालाको लिये हुए मन ही मन मंद मंद मुसकाती, लजाती, सकुचाती, कड़े छड़े आदि पैरों के आभूषणों को बजाती शनैःशनैः रंगशाला में आई। उस समय उसकी उत्तम अलकावती तथा कमनीय कनक कुंडलों की कान्ति से देदीप्यमान और कलित कपोलों की शोभा से युक्त मनहर मुखारविन्द शरद कालीन पूर्ण चन्द्र की आभा को भी तिरस्कृत कर रहा था। उसकी शुभ्र दन्तावलियों में निकली किरणोंका शुभ्र प्रकाश उस रंगशालाको आलोकित कर रहा था। शरच्चन्द्रिकाके समान मंद मन्द मनहर मधुर हास्ययुक्त कटाक्ष भंगीसे चंचलता पूर्वक वह बीच बीच मे निहारती जाती थी। मानों अपने इष्ट की खोज में अत्यंत ही व्यग्र हो रही हो। वह अपने कुटिल कटाक्षों को जब अन्य कुत्सित विचार वाले

राजाओंकी ओर फेंकती तो ऐसा लगता मानों वह उनका तिरस्कार कर रही हो। उनकी कायरता पर उन्हें धिक्कार दे रहीहो इस प्रकार सबके हृदय में ईर्ष्या द्वेष की अग्निको अपने अनवद्य सौंदर्यकी फूँकसे प्रज्ज्वलित करती हुई वह शनैःशनैः श्यामसुन्दर के समीप आई और अपने कंपित कर कमलों से उसने वह मणिमयी विजयमाला श्रीहरि के कमनीय कंठ में पहिना दी।

मालाके पड़ते ही मधुर-मधुर मंगल वाद्य आदि बजने लगे। मृदङ्ग, पणव, शंख भेरी और आनक वाद्योंकी मधुर ध्वनि से दशों दिशायें गूंजित हो उठीं। नट नर्तक नृत्य करने लगे। गायक गण गोविन्द के गुण सम्बन्धी गीत गाने लगे। नर्तकियाँ हाव भाव कटाक्षों द्वारा भावोंको प्रदर्शित करती हुईं नृत्य करने लगीं।

कन्या के अनुपम रूपको निहार कर सबकी ईर्ष्या द्वेष की अग्नि और भी अधिक प्रज्ज्वलित हो उठी। वे सबके सब क्रोधमें भरकर अस्त्र शस्त्रोंको सम्हालकर अपने-अपने आसनोंसे उठपड़े। उन्होने चारों ओर से कन्या को घेर लिया। और चिल्लाने लगे यह हम लोगो का घोर अपमान है। इस कन्याने हम सबका तिरस्कार किया है। राजाओं के रहते गोपाल को वरण किया है। इस कन्याको बलपूर्वक पकड़ लो और हम सबमें जो भी बली हो उसीके साथ उसका विवाह कर दो।" यह कहते हुए वे कन्या को पकड़ने दौड़े। उनके ऐसे अभिप्राय को समझकर लक्ष्मणा अत्यन्त ही भयभीत हो गयी। वह मन ही मन भवभय हारी भगवान् से प्रार्थना करने लगी—"हे दीनवत्सल! हे अश-

रण शरण ! इन दुष्ट राजाओंमें से कोई मुझे स्पर्श न कर सके।"
भगवान्को उसकी दशा पर दया आई। उन्होंने तुरन्त ही सबको डाँट दिया। देखते-देखते भगवान् चतुर्भुज हो गये। दो हाथोंसे तो उन्होंने अपनी प्रिया लक्ष्मणा को पकड़ लिया और दो हाथों में धनुष वाण लेकर वे उन दुष्ट राजाओं के ऊपर वाण वर्षा करने लगे। इतने में ही दारुक सारथी सुन्दर चार घोड़ों वाले रथको जोत कर ले आया। भगवान् ने तुरन्त अपनी प्रिया को विठा लिया और सिंह जैसे अपने भाग को लेकर सब के देखते देखते निर्भय होकर चला जाता है उसी प्रकार वे सब के बीचसे कन्या को लेकर भाग गये।

इस पर वे सब राजागण परस्पर में एक दूसरे को धिकारने लगे। कोई कहता—"तुमने नहीं रोका" कोई कहता—"तुम खड़े ही रहे।" इस पर एक ने कहा—"अभी क्या बिगड़ा है, चलकर पकड़ क्यों नहीं लेते।" यह सुनकर बहुत से राजा जैसे सिंह के पीछे कुत्ते दौड़ते हैं वैसे दौड़े, किन्तु भगवान् के शार्ङ्ग-धनुष के सम्मुख ठहरने की सामर्थ्य किसमें थी। कुछ तो क्षतव-क्षित होकर गिर गये कुछ प्राणों को लेकर भाग गये। सब राजा हारकर अपने-अपने देशों को लौट गये।

सब राजाओं के चले जाने पर महाराज बृहत्सेन दहेज की नाना सामिग्रियों के सहित अपने बन्धु बान्धव और पुरोहितको लेकर द्वारकापुरी में आये और शुभ मुहूर्त में उन्होंने लक्ष्मणाका भगवान् के साथ शास्त्रोक्त विधिसे विवाह कर दिया। इस प्रकार भगवान् के रुक्मिणीजी, जाम्बवतीजी, सत्यभामाजी, कालिन्दी,

मित्रविन्दाजी, भद्राजी, नाग्नजिती सत्याजी और लक्ष्मणाजी ये आठ पटरानियाँ हुईं। इन के अतिरिक्त सौ ऊपर सोलह सौ रानी भगवान् की और थीं, जो भगवान् को एक साथ ही अकस्मात् मिल गईं।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! सोलह सहस्र कन्या एक साथ कैसे मिल गयीं। महाभाग! सोनेकी, चाँदीकी, तावेकी तथा अन्य धातुओं की खानें तो सुनी हैं देखी भी हैं; किन्तु ऐसी कोई खान नहीं देखी जिसमें से राजकन्याएं निकलती हों। बिना खान के एक साथ सोलह सहस्र कन्याओं का मिलना तो असम्भव सा ही है।"

यह सुनकर सूतजी हँस पड़े और वोले—"महाराज संभव असंभव तो हम साधारण लोगों के लिये है। भगवान् के लिये कुछ भी असंभव नहीं। भगवान् की इच्छा से सब कुछ हो जाता है। जिनके तनिक से संकल्प मात्र से असंख्यों ब्रह्माण्ड नित्य बनते बिगड़ते रहते हैं, उनके लिये सोलह सहस्र राजकन्याओं का प्राप्त कर लेना कोई कठिन बात नहीं है। भगवान् को कोई राज कन्याओं की खान नहीं मिली। वे सबकी सब भौमासुर के किले में बन्दी बनी रहती थीं। भगवान् ने उनका उद्धार किया और उनकी इच्छा समझ कर उनका सविधि पाणिग्रहण किया।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! यह भौमासुर कौन था? इसने इतनी कन्याओं को कहाँ से क्यों इकट्ठा किया था? भगवान् ने उसे क्यों मारा? कृपा करके हमारे इन प्रश्नों का

उत्तर दें।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज ! अब मैं इन्हीं प्रश्नों के उत्तरों को देकर विवाहाध्याय को समाप्त करूँगा।"

मद्राधिप नृप वृहत्सेन पुनि धन लै धाये।
करयो लक्ष्मणा ब्याह स्याम सँग मन हरषाये॥
यों पटरानीं आठ ब्याहको वृत्त कह्यो सब।
जैसे सोलह सहस बरीं जो कथा कहूँ अब॥
भौमासुर नृप अति प्रबल, डरपें सुर नर दैत्य सब।
स्वर्ग, भूमि, पाताल महँ, करत फिरत उत्पात नब॥

# भौमासुर के उत्पात

## ( ११०८ )

**यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः**
**निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्ग धन्वनः ॥**
**( श्रीभा० १० स्क० ५९ अ० १ श्लो० )**

### छप्पय

वरुन देवकूं जीति छत्र अरु चवर उड़ाये ।
स्वर्ग लोक महँ गयो अदिति कुंडल अपनाये ॥
मेरु शिखरतें मणि पर्वत अपने घर लायो ।
जहँ जहँ निरखे रत्न छीनिके खल लै आयो ॥
सुर सुरपति अति ह्वै दुखित, द्वार दयानिधिके गये ।
कहे सकल खलके चरित, सुनत श्याम सकुचित भये ॥

भगवान् धर्मसंस्थापनार्थ ही अवनिपर आते हैं। धर्मसंस्थापन में यदि उनके पुत्र भी बाधक होते हैं, तो वे उनका विनाश कर देते हैं। भगवान् के या तो सभी अपने हैं या इनका कोई अपना पराया है ही नहीं। असाधुओंका दमन हो साधुओंकी रक्षा हो

---

*महाराज परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे पूछ रहे हैं—"ब्रह्मन् ? जिस भौमासुरने उन सोलह सहस्र स्त्रियोंको बन्दीगृह मे डाल रखा था, उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने क्यों और किस प्रकार मारा ? शार्ङ्ग धन्वा भगवान् के उस विचित्र पराक्रमयुक्त चरित्रको हमें सुनाइये ।"

धर्मका अभ्युत्थान हो। अधर्म का बल क्षीण हो, अवतार लेकर वे यही कृत्य किया करते हैं। असुर भी उनके ही वीर्यसे उत्पन्न होते हैं, उनके बलसे बली होते हैं और उनकी ही इच्छा से युद्ध में भी प्रवृत्त होते हैं। सबको वे ही सर्वेश्वर नचा रहे हैं। सबके नचाने वाले को भी बालकपन में माता नचाती है और युवावस्था में रानियाँ अपने संकेत से नचाती हैं। यही उनकी अचिन्त्य माया शक्ति की क्रीड़ा है।

सूतजी कहतेहैं–"मुनियो! आठ विवाह करके भगवान् द्वारका में आकर आनन्द करने लगे। अब वे सदा महलों में ही विराजमान रहते। नारदजीको नतो स्वयं ही एक स्थानमें चुपचाप बैठे रहना प्रिय है, न वे दूसरोंको ही चुपचाप बैठे रहने देना चाहते हैं। भगवान् भी जब अवतार नहीं लेते, समुद्र में तान दुपट्टा सोते रहते हैं और लक्ष्मीजीसे चरणदबवाते रहतेहैं। तो वे उन्हें भीशाप आदि देकर अवतार लेनेको उत्साहित करते रहतेहैं। वे चाहते हैं कुछ खट पट होती रहे। भगवान् आठ विवाह करके जब चुप हो गये तो नारदजी को बड़ा बुरा लगा। उन्होंने सोचा—'बिना छेड़छाड़के भगवान् कुछ करेंगे नहीं
अवश्य होनी चाहिये इसी विषयपर नारदजी सोचते रहे सोचते सोचते नारदजी के विचारमें यह बात आई कि भगवान्के आठ पटरानीयाँ हैं, इनमें ही आपसमें कुछ खट पट करानी चहिये घरकी लड़ाईसे मनुष्य को अधिक उद्वेग होता है। भगवान को उद्वेग तो होगा ही क्या, किन्तु कुछ न कुछ लीला आरम्भ हो जायगी।' यही सोचकर वे स्वर्ग में गये। वहाँसे कल्पवृक्ष के सुन्दर सुन्दर सात पुष्प तोड़ लाये। उन पुष्पों को लेकर वीणा बजाते हरिगुण गाते द्वारकाजी में पहुँचे। सर्वप्रथम रुक्मिणीजी के ही महलों मे गये। उनकी तो कहीं रोक टोक थी ही नहीं। दनदनाते हुए भीतर घुस गये। नारदजी को देखकर भगवान्

अपने आसन से उठ पड़े और बोले—"आइये, नारदजी महाराज ! अबके तो बहुत दिनोंमें दर्शन दिये। कहिये कुशल मंगल तो है ?"

नारदजीने कहा—"आये, महाराज ! क्या कुशल है ! आप तो महलोंके भीतर बैठे रहते हैं और हमें चौदह भुवनोंमें घुमाते रहते हैं ?"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े और बोले—"नारदजी ! तुम्हारे पैरमें तो चक्कर है, तुम एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सकते। देखिये, स्थिरता होती है स्त्री से। जिसके स्त्री नहीं जो फक्कड़ है उसकी क्या स्थिति। वह तो सूखे पत्ते के समान, भूले ऊँटके समान, बहते जलके समान है। जहाँ भी प्रारब्धवश पहुँच गये। घर तो गृहिणीसे होता है। गृहिणी शब्दका अर्थ ही यह है, जो ग्रहण करले, पकड़ले। अब महाराज, मैं तो आपकी भाँति बाबाजी तो हूँ नहीं। मेरे आठ आठ पत्नी है। तुम्हारी भाँति घूमूँ तो मेरी गृहस्थी ही चौपट हो जाय। अच्छा, यह बताओ कहाँसे आरहे हो, इस समय ?"

नारदजीने कहा—"इस समय भगवन् मैं स्वर्गसे आरहा हूँ।"

भगवान्ने कहा—"कहो, स्वर्गमें सब कुशल मगल है न ? इन्द्रदेव अच्छे हैं न ? हमारे लिये स्वर्गसे क्या लाये ?"

नारदजीने कहा—"इन्द्रदेव अपने कुशल समाचार स्वयं ही आकर आपसे कहेंगे। रही लानेकी बात सो महाराज ! हम पर तो लानेको वे ही "पत्र, पुष्प और पानी है" देखिये ये पुष्प मैं आपके लिए लाया हूँ।" यह कहकर बड़े-बड़े सात कल्पवृक्षके फूल भगवानके सम्मुख रख दिये।" पुष्प अत्यन्त ही सुन्दर थे। उनकी सुगन्धिसे सम्पूर्ण भवन भर गया।

भगवानने कहा—"बड़े सुगन्धित पुष्प लाये नारदजी ! आप तो सब विद्याओंमें बड़े पारङ्गत हैं!"

भगवान् यह कह ही रहे थे, कि उसी समय सज वजकर रुक्मिणीजी आगईं। उन्होंने आते ही नारदजीके चरणोंमें प्रणाम किया और भगवानके सम्मुख खड़ी हो गईं। पुष्पोंके सुन्दर सुगन्धिसे उनका मन अत्यन्त ही प्रसन्न हो गया। वे बोलीं—"प्राणनाथ ! ये पुष्प तो देखनेमें भी बड़े सुन्दर हैं, फिर इनकी सुगन्धिका तो कहना ही क्या ? ऐसे सुन्दर सुमन आपके समीप कहांसे आये ?"

हँसते हुए भगवान बोले—"क्यों तुम्हारा मन ललचा उठा क्या ?" ये देवर्षि नारद स्वर्गसे इन्हें लाये हैं। ये पुष्प कभी म्लान नही होते। सदा ज्यों के त्यों बने रहते हैं। इनकी सुगन्धि भी कभी नष्ट नही होती। तुम इन्हें ले जाओ, सबके यहाँ एक एक भेज देना।"

भगवान् ने पुष्पों को गिना तो था नही, बड़े-बड़े पुष्प थे ढेर लगा रखा था। रुक्मिणीजी अत्यन्त ही उल्लास के साथ उन्हें अपने अञ्चल में भर कर ले गईं। अपने भवन में जाकर उन्हें गिना तो वे सात निकले। एक तो उन्होने स्वयं रख लिया और शेष छैं छऊ रानियों के यहाँ भेज दिये। सत्यभामाजी के यहाँ नही भेजा। फूल था भी नहीं और कुछ उनकी सत्यभामाजी से लाग डाट भी रहती थी, क्योंकि सत्राजित्‌की पुत्री होनेसे वह बड़ी अभिमानिनी थी। इस बातको नारदजी जानते थे, क्योंकि वे तो घरके भेदिया थे। यही उन्हें अभीष्ट भी था।

भगवान्‌से इधर उधरकी बातें करके अब वे सब रानियोंके घर जाने लगे। सबके यहाँ जाकर पूछते—"हम स्वर्गसे एक अद्भुत वस्तु लाये हैं तुम्हें मिली या नहीं ?"

सब कहती—"हाँ, महाराज ! नन्दन कानन का दिव्य पुष्प लाये थे, उसमें बड़ी सुगन्धि है ?"

इस प्रकार सबसे पूछते-पूछते सत्यभामाजीके महलों में गये

उनसे भी पूछा–"रुक्मिणीजीने तुम्हें कोई अद्भुत वस्तु भेजी ?"

सत्यभामाजी ने कहा–"कैसी अद्भुत वस्तु महाराज ! मुझे तो कुछ मिली नहीं।"

अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करते हुए नारदजी बोले–"अरे, तुम्हें नहीं मिली। हम स्वर्गसे कल्पवृक्षके बड़े सुन्दर सुन्दर पुष्प लाये थे। भगवान्‌ने उन सबको रुक्मिणीजी को दे दिया। उन्होंने सबके घर पहुँचा दिये। हम सबके घरों में अभी देखकर आ रहे है। यह सामने देखो, सत्या रानी के घर में कैसी दिव्य सुगन्धि आ रही है।" सत्यारानी का महल सत्यभामाजी के महलसे सटा ही हुआ था। कुतूहलवश वे उनके यहाँ गई। यथार्थ में पुष्प बड़ा सुन्दर था। उसकी सुगन्धि से समस्त भवन सुवासित हो रहा था। पुष्पको देखकर सत्यभामा जी के मनमे बड़ी ईर्ष्या हुई आकर नारदजीसे बोली–"महाराज ! बड़ी रानीजीने जिन्हें रानी समझा उनके यहाँ पुष्प भेज दिये। मैं न रानी हूँ न राजपुत्री हूँ। मैं तो दासी हूँ। जैसे और सहस्रों दासियाँ हैं वैसेही मै हूँ। इतना कहते कहते उनका मुख फूलकर कुप्पा हो गया। नारदजी मन ही मन प्रसन्न हुए। मेरा लक्ष्य उचित स्थान पर लगा। इस प्रकार कलह का बीज बो कर नारदजी यह गये वह गये।"

जब भगवान् बाहर से सत्यभामाजी के समीप आये, तो दासियों से पता चला, रानीजी तो कोप भवन में मलिन वसन धारण किये खटपाटी लेकर पड़ी है। भगवान् का माथा ठनका। वे समझ गये आज नारदजी आये थे, अवश्य ही कोई कलह का बीज बो गये होंगे। वे सीधे सत्यभामाजीके पास गये और बोले–"प्रिये ! क्या बात है, क्यों तुम क्रुद्ध हो गयी हो ? क्यों यहाँ कोप भवन में खटपाटी लिये पड़ी हो ?"

तुनककर सत्यभामाजी बोलीं–"नही महाराज ! हमसे आपके बोलने का कोई काम नही। जो आपकी प्यारी रानी हों

उनके पास जाइये। मुझे तो आप कहीं से मोल ले आये हैं मैं तो आपकी रखेली हूँ।"

भगवान् ने प्यार के साथ कहा—"बात भी तो सुनें, क्या बात हो गयी। इतनी अप्रसन्नता का तो कोई कारण नहीं। मुझ से कोई अपराध हो गया हो तो उसे क्षमा कर दो। क्षमा न करना चाहो, तो जो चाहो उचित दण्ड दे लो।"

यह सुनकर सत्यभामाजी का मान और बढ़ गया, वे मुँह फेर कर बोली—"मैं दण्ड देने वाली कौन होती हूँ। दण्ड तो वे ही दे सकती हैं। जिनके पास आप सब अच्छी अच्छी वस्तुएँ भेज देते है।"

भगवान् ने खीजकर कहा—"कौन-सी अच्छी वस्तु भेज दी सुनें तो सही। तुम तो पहेली-सी कह रही हो। मुझे तो स्मरण भी नहीं आता किसी को मैंने कोई भी वस्त्र आभूषण अधिक दिया हो, सबको एक-सी वस्तु भेजता हूँ।"

सत्यभामाजी बोलीं—"हाँ, महाराज! आपको काहे को स्मरण रहेगा। सब जो रानी है उनको सब वस्तुएँ भेजते हो। दासियों को भूल जाते हो।"

भगवान् ने अत्यन्त खीज के साथ कहा—"हाय रे! भगवान् इन स्त्रियों से बचावे। बात तो बतावेंगी नहीं। मुँह लटका लेंगी। बताओ कौन-सी वस्तु तुम्हें नहीं दी।"

सत्यभामाजी ने कहा—"स्वर्ग से जो कल्पवृक्ष के पुष्प आये थे, वे सबके महलों को सुवासित कर रहे हैं, एक मैं ही तो उनसे वञ्चित रह गई हूँ, क्यों कि मैं आपकी बड़ी रानीजी की दासीयों की दासी हूँ।"

भगवान् ने कहा-"छिः छिः स्त्रियोंका हृदय कैसा छोटा होता है। तनिक-सी बात पर तुनक जाती है। आकाश पाताल एक कर देती हैं। यह भी कोई बात है। फूल के लिये आग बबूला हो

रही हो ? राम राम ?"

सत्यभामाजी ने अधिकार के स्वर में कहा—"हाँ, महाराज ! स्त्रियो का हृदय तो छोटा होता ही है । पुरुषों का बड़ा विशाल हृदय होता है जो एक के कान में कहते है मैं तुमसे सबसे अधिक प्यार करता हूँ,यह बात दूसरे से कहते हैं । अपने स्वार्थकी सिद्धि के लिये प्रेम का ढोंग रचते हैं । पुरुषों के बराबर कपटी तो कोई हो ही नही सकता । मैं फूलों की भूखी नहीं, किन्तु महाराज मान का पान भी बहुत होता है । फूल क्या वस्तु है, किन्तु इससे आपके हृदय की संकीर्णता का तो पता लगता है,जब आप साधारण फूल के पीछे इतना भेद भाव रखते है, तो मणिमाणिक्यों के लिये तो न जाने कितना भेद रखते होगे । मेरी आँखों में धूलि झोंककर चुपके चुपके भेजते रहते होंगे । आज जब कलई खुल गई तो स्त्रियों का हृदय छोटा बता रहे हैं ।"

भगवान् ने अत्यन्त ही प्यार से उनके सिर पर हाथ रखते हुए कहा—"देखो, मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ, मुझे पता भी नहीं कितने फूल आये किस किस के यहाँ भेजे गये । नारद ने लाकर रखे । मैंने उन्हें एक साधारण-सी वस्तु समझा रुक्मिणि जी आई उठा ले गयी । तुम्हारे यहाँ नही भेजा, कोई बात नही, तुम चिन्ता मत करो । एक फूल की क्या बात है, हम कल्पवृक्ष का पेड़ ही लाकर तुम्हारे घर में लगा देंगे । तुम चाहें फूलों को बाँटती रहना ।"

प्रसन्नता प्रकट करते हुए सत्यभामाजी ने कहा—"सत्य कहते हो, मुझे भुलावा तो नही दे रहे हो, छल कपट तो नहीं कर रहे हो ।"

भगवान् ने कहा—"अब तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ, कहो पट्टा लिखदूँ ।"

सत्यभामाजी ने अत्यन्त ही स्नेह के साथ कहा—"नहीं, प्राण-

नाथ ! मुझे आपकी बात का विश्वास है। देखना भूल मत जाना। मेरे आंगन में कल्पवृक्ष अवश्य लगा देना।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, समय आने दो।" यह कहकर भगवान् सुधर्मा सभा में चले गये। कुछ दिनों में वात पुरानी होगयी।

एक दिन भगवान् सत्यभामाजी के भवन में विराजमान थे कि उसी समय द्वारपालने आकर सूचना दी—"प्रभो ! देवराज इन्द्र आपके दर्शनों को बाहर खड़े हैं।"

भगवान् ने आज्ञा दी—"उन्हें आदर पूर्वक भीतर ले आओ।"

भगवान् की आज्ञा पाकर द्वारपाल आदर पूर्वक देवेन्द्र को भीतर लाये। उन्होंने आते ही अपने मणियों के मुकुट युक्त सिर को भगवान् के चरणों में रखकर प्रणाम किया और फिर भगवान् के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। भगवान् ने कहा—"कहो, देवराज ! कैसे कष्ट किया ? आप आनन्द पूर्वक तो हैं न ? स्वर्ग में कोई उत्पात तो नहीं हो रहा है। आप उदास कैसे हो रहे हैं ?"

हाथ जोड़कर देवेन्द्र ने कहा—"प्रभो ! जब हम आपकी महिमा को भूलकर अपने को सर्व समर्थ ईश्वर मानने लगते हैं, तभी दुखी हो जाते हैं। आज कल प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भौमासुर ने पृथिवी पर तथा स्वर्ग में बड़ा उपद्रव मचा रखा है।"

भगवान् ने पूछा—"उसने क्या उपद्रव मचा रखा है ?"

इन्द्र ने कहा—"भगवान् आप सर्वज्ञ हैं, सब जानते हैं। आपको जताना नहीं है, किन्तु जब आप आज्ञा दे रहे हैं, तो मैं निवेदन करता हूँ। उसने बहुत से राजाओं की सुन्दरी सुन्दरी कन्याओं का अपहरण किया है। उन सबके साथ उसने अभी तक विवाह तो किया नहीं, किन्तु कुछ नियमित संख्याओं में होने पर सबके साथ एक संग विवाह करना चाहता है। अभी तक

उन सबको बन्दिनी बनाकर अपने किले में रोक रखा है। इस कारण से समस्त राजागण जिनकी कन्यायें हरी गई है वे उससे मन ही मन असन्तुष्ट है। पृथिवी पर ही नही स्वर्ग मे भी उसने बड़ा द्वंद मचा रखा है। एक बार वरुण के यहाँ वह गया। उनसे बोला—"वरुणदेव ! सुना है तुम बड़े बली हो आओ मुझ से युद्ध करो।"

वरुणजी तो जानते थे, यह आपके वरदान से अवध्य है, अतः वे लड़ने को सहमत नहीं हुए तब यह उनका दिव्य राजछत्र लेकर चला आया। एक दिन वह मेरे यहाँ भी गया, मुझे भी उसने युद्ध के लिये ललकारा। आपका पुत्र समझकर आपसे वर प्राप्त समझकर मैंने युद्ध करना स्वीकार नहीं किया, इस पर वह मेरी माताजी के दिव्य कुण्डलों को-जिनसे सदा अमृत चूता रहता है—लेकर चला आया। इसी प्रकार उसने सुमेरु पर्वत के मणि पर्वत को भी उखाड़कर अपने वश में कर लिया। जब तक आप उसे मारेंगे नहीं तब तक वह मानेगा नहीं।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, तुम जाओ। हम उसका कुछ प्रबन्ध करेंगे।" यह सुनकर देवेन्द्र भगवान् के पाद पद्मों में प्रणाम करके अपने लोक को चले गये।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! देवेन्द्र ने भौमासुर को भगवान् का पुत्र बताया। इस विषय में हमें सन्देह है कि यह भगवान् का पुत्र कैसे हुआ।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज ! भगवान् की चार मूर्ति हैं। एक मूर्तिसे तो वे घोर मृदु तप करते हैं,जैसे बदरीवनमें नरनारायणरूपसे। दूसरी मूर्ति से विश्व का परिपालन करते हैं, जैसे विष्णुमूर्ति से अथवा मन्वन्तरावतार मूर्ति से। एक मूर्ति से भोग भोगते हैं जैसे श्रीकृष्ण मूर्तिसे और एक मूर्ति से तान दुपट्टा सोते हैं जैसे क्षीरशायी नारायण मूर्ति से। ये सब एक ही हैं,

इनमें कोई भेद नहीं है। जैसे कुए में रहट चलता है। रहट तो एक ही है। उसके बहुतसे पात्र जल भरते हैं बहुतसे जल भरे हुए ऊपर आते हैं। बहुतसे जलको रिक्त करते हैं। बहुतसे रीते होकर नीचे जल भरने जाते हैं। लोग यही कहते हैं कुए में रहट चल रहा है चारों काम करनेवाला रहट एकही कहाता है। चतुर्मूर्ति भगवान् एक मूर्ति से जो काम करते करते उपरत हो जाते हैं तो दूसरा काम करने लगते हैं। जैसे जो तपस्या कर रहे हैं, तप करते करते थक गये वे जाकर विश्वपालन करने लगे। दूसरी मूर्ति से आकर तप करने लगे। फिर जो विश्वको पालन करते करते थक गये, वे आकर भोग भोगने लगे। भोग भोगते भोगते ऊब गये तो तान दुपट्टा सो गये। सोते सोते ऊब गये तो फिर तपस्या करने लगे। ऊबना थकना यह भगवान् में संभव नहीं। उपचार वश इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। भगवान् की तीन पत्नियाँ हैं। भू देवी,श्री देवी और लीलादेवी इनके ही साथ भगवान् क्रीड़ा करते हैं खेल खेलते हैं। भगवान् जब तप कर रहे थे, तो भू देवी भी सकामभाव से तपस्या करने में प्रवृत्त हो गयीं। तपस्या के अन्त में भगवान् सायंकाल में उठे, उठते ही तपस्या करती हुई पृथिवी से प्रसन्न होकर बोले—"तुमने बहुत तप किया है, तुम मुझ से कोई वर माँग लो।"

भू देवी ने कहा—"महाराज ! मुझे एक पुत्र की इच्छा है, आप मुझे अभी पुत्र प्रदान करें।"

सत्य संकल्प प्रभु के लिये कुछ असंभव तो है ही नहीं। वे बोले—"पुत्र तुम्हारे हो जायगा किन्तु वह असुर प्रकृति का होगा।"

भू देवी डर गयीं बोली—"महाराज ! असुर पुत्र किस काम का आप देवाधिपति हैं आपका पुत्र असुर हो यह उचित नहीं।

भगवान् ने कहा—"समयानुसार सुर, असुर, दैत्य, गंधर्व,

यक्ष, नाग, सरीसृप, मनुष्य, अडज, पिंडज, स्वेदज तथा उद्भिज सबकी उत्पत्ति मुझसे ही होती है। तुमने आसुरी वेला—संध्या के समय—पुत्रकी इच्छा की, इसलिये आसुरी वेला में तो असुर ही पुत्र होगा।"

भू देवी ने कहा—"अच्छी बात है, असुर ही हो, किन्तु आप मुझे वर दें। आप असुरों को अपने चक्रसुदर्शन से मारते हैं। मेरे पुत्र को न मारें।"

भगवान् ने उपेक्षा के स्वर में कहा—"मरना जीना यह तो शरीर धारियों के साथ लगा ही रहता है। इसके लिये अज्ञानी सोच करते हैं, ये दोनों साधारण स्थितियाँ है। फिर भी मैं तुम्हारे पुत्र को तब तक न मारूँगा, जब तक तुम स्वयं इसे मारने को न कहो।"

यह कहकर भगवान् अपने काममें लग गये। उसी समय भूमि के नरकासुर नामक पुत्र हुआ। भूमि से उत्पन्न होने के कारण उसे भौमासुर कहते है।

भौमासुर बड़ा बली था। भगवान् के वरदान से उसे कोई मार नहीं सकता था। वही नरकासुर हिमालयके प्राग्ज्योतिषपुर नामके नगर में राजधानी बनाकर क्षत्रिय रूप में अवतीर्ण होकर राज्य करता था। उससे सब लोकपाल थर थर काँपते थे। जब स्वर्ग में जाकर इन्द्र की माता के कुण्डलों को छीन लाया और उनका घोर अपमान किया, तब अन्यत्र कहीं शरण न देखकर देवेन्द्र भगवान् द्वारकानाथ की शरण आये। उनसे अपना दुखड़ा रोया। भगवान् ने आश्वासन दिया। "अच्छा हम सब प्रबन्ध करेंगे" इस आश्वासन को पाकर देवेन्द्र स्वर्ग को चले गये।"

शौनकजी ने पूछा—"हाँ, तो अच्छा सूतजी! फिर क्या हुआ?"

सूतजी बोले—"महाराज! हुआ क्या? अब तो भगवान्

वचनबद्ध हो चुके थे, उन्हें जाना ही था। भगवान्का काम तो है दुष्टों का दमन करना शिष्टों का पालन करना। फिर उन्हें उन बन्दिनी लड़कियों का भी लालच था ही। एक साथ हो बहुत-सी बहुएँ मिल जायँगी।" यही सब सोचकर उन्होंने गरुडजी का आवाहन किया। आवाहन करते ही तुरन्त अपने पङ्खों को फट-फटाते हुए गरुड़जी वहाँ आ पहुँचे।

गरुडजी के आनेपर भगवान् सत्यभामाजीसे बोले—"चलती हो, तुम्हें हिमालय में भ्रमण करा लावें।"

स्त्रियाँ तो घूमने फिरनेके लिये उधार खाये बैठी ही रहती हैं। तुरन्त सत्यभामाजी बोलीं—"चलिये, प्राणनाथ! आपके साथ घूमने फिरने में तो बड़ा आनन्द आता है।"यह कहकर वे काजर बेंदी लगाकर, लँहगा फरिया पहिन ओढ़कर तुरन्त तैयार हो गयी। भगवान्ने गरुड़के पीछे उन्हें बिठाया आगे स्वयं बैठ गये। आज्ञा पाते ही गरुड़जी उड़ने लगे।"

यह सुनकर शौनकजी ने कहा—"सूतजी! सत्यभामाजी तो भ्रमण का अवसर आने पर मना करती ही क्यों, किन्तु भगवान् को सोचना तो चाहिये वहाँ लड़ाई भिड़ाई होगी, दोनों ओर से अस्त्र शस्त्रों की वर्षा होगी, ऐसे समय सत्यभामाजी के ले जाने का क्या प्रयोजन था? भगवान् उन्हें क्यों साथ ले गये?"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज! यह तो मैं पीछे ही बता चुका हूँ, कि भगवान् ने पृथिवी को वर दिया था, कि "जब तक तुम न कहोगी, तब तक मैं तुम्हारे पुत्र नरकासुर को न मारूँगा।" अब नरकासुर के मारने का अवसर आ गया था। सत्यभामाजी पृथिवी का ही अंशावतार थी। अतः इनकी आज्ञा लेना अत्यावश्यक था, इसीलिये भगवान् उन्हें साथ ले गये।"

शौनकजी ने कहा—"अच्छा तो फिर क्या हुआ?"

सूतजी बोले—"फिर होना क्या था, जब कोई किसी पर

चढ़ाई करदे, तो वह अपने बचाव का शक्तिभर प्रयत्न करेगा। प्राणों का पण लगाकर युद्ध करेगा। भगवान् ने नरकासुर के पुर पर चढ़ाई की। इस पर लड़ाई भिड़ाई हुई। गुत्थम गुत्था हुई। मारपीट हुई। इन सब बातों का वर्णन मैं आगे करूँगा।"

### छप्पय

बोले सब सुनि श्याम—"बात सुरपति सब जानी।
भौमासुर ह्वै गयो दुष्ट अतिशय अभिमानी॥
अदिति मातु ढिग जाइ सुखद सन्देश सुनावें।
लकें कुण्डल शीघ्र स्वर्ग हमहू आवें॥
पाइ वचन घनश्याम तें, सुरपति निज पुर चलि दये।
सतभामा सँग गरुड़ चढ़ि, नरकासुर पुर हरि गये॥

# भौमासुर के पुर में प्रभु का प्रवेश और उसका वध

( ११०६ )

प्रायुञ्जतासाध शरानसीन्गदाः
शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ।
तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणै—
रमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥*
( श्री भा० १० स्क० ५६ अ० १३ श्लोक )

छप्पय

गिरि,शर,जल अरु अनिल,अनल परकोटा पुरके ।
दश सहस्र अति घोर पाश घेरे फिरि मुरके ॥
श्याम गदा, शर चक्र-सुदर्शन तें काटे सब ।
पुरपालक मुर असुर देखि लड़िवे आयो तब ॥
भये मुरारी मारि मुर, हरि सिर काटे चक्र तें ।
शोभित धड़ पर्वत सरिस, कटे शिखर जनु शक्र तें ॥

भगवान् अपने अस्त्रोंसे असुरोंको मार देते हैं,इसमें भगवान्की प्रशंसा नहीं है। जिनकी तनिकसी कुटिल भृकुटि होते ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी प्रलय हो जाती है, उनके लिये एक नगरको नष्टकर

* श्रीशुकदेवजी कहते है—राजन् ! भौमासुर के सैनिकों ने आकर भगवान् के ऊपर बाण, खड्ग, गदा, शक्ति, ऋष्टि और त्रिशूल आदि प्रचण्ड शस्त्रों की वर्षा करने लगे । इस पर अमोघ वीर्य भगवान् वासुदेव ने उन समस्त शस्त्रों को अपने बाणों से तिल तिल करके काट दिया ।"

देना अथवा एक दो असुरों को मार देना कोई बड़ी बात नहीं। किन्तु इन कामों में उनकी भक्तवत्सलता छिपी रहती है। जिन्हें मारते हैं उन्हें भी मुक्ति प्रदान करते हैं और जिनके लिये उन्हें मारते हैं उन्हें भी इष्टवस्तु प्राप्त कराके अपनी अहैतुकी भक्ति प्रदान करते हैं। मङ्गलमय भगवान् के सभी विग्रह सभी कार्य मङ्गलमय ही हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! देवराज इन्द्र के चले जाने पर भगवान् सत्यभामाजी के साथ गरुड़ पर चढ़कर भौमासुरके प्राग-ज्योतिषपुर नामक नगर में पहुँचे। वह नगर उस असुर ने ऐसा सुदृढ़ बना रखा था, कि किसी का भी उसमें प्रवेश होना सम्भव नहीं था। सर्वप्रथम तो उसके चारों ओर ऊँचे ऊँचे पहाड़ थे। मानों पहाड़ोंका ही उस नगरका परकोटा हो। उसमें से निकलने को चारों दिशाओमें चार द्वार थे, जिनमें वज्रके बड़े भारी किवाड़ लगे थे और जिन पर सहस्रों अनावृत अस्त्र लिये सैनिक घूमते रहते। पहाड़ों के भीतर चारों ओर अस्त्र- शस्त्रों का परकोटा था बड़ी बड़ी शतघ्नियाँ चारों ओर परकोटों पर रखी थीं जिससे कोई भी शत्रु प्रवेश करने की चेष्टा करे उसे तुरन्त मार दिया जाय। फिर उसके चारों ओर अगाध जलकी खाई थी। जिससे कोई पार न आ सके। जलके आवरणके अन्दर अग्निका आव-

वायु का भी उस पुरमें प्रवेश करना सम्भव नहीं था।

भगवान्ने सर्व प्रथम जो पहाड़ों का परकोटा था उसे अपनी कौमोदिकी गदा से तोड़ डाला। सब पर्वत गदाके आघातसे चूर्ण हो गये। जितने अस्त्र शस्त्र उसके चारों ओर थे, उन्हें बाणों से व्यर्थ बना दिया। अग्निको सुदर्शन चक्रने शांत कर दिया,उसीने जल को सोख लिया, वायुको भी छिन्न भिन्न कर दिया। अब जो मुर के दश सहस्र पाश थे उन्हें खड्ग से काट दिया। सबको काट छाँटकर उन्होंने अपने पाञ्चजन्य नामक शंख को बजाया। उसके भीषण नाद को श्रवण करके शत्रुओं के हृदय फटने लगे। यन्त्र अपने आप गिरने लगे। पृथिवी काँपने लगी। भीतरी परकोटे को भी भगवान् ने गदा मारकर गिरा दिया।

उस पुर का पालक मुर नामक दैत्य था। वह बड़ा बली था। पाँच उसके सिर थे। वह सदा सलिल में सुख से शयन करता रहता था। भगवान् ने शङ्ख की प्रलय कालीन वज्रपात के सदृश परम भयङ्कर ध्वनि सुनकर सहसा उसकी निद्रा भङ्ग हो गयी। वह चकित चकित दृष्टिसे विस्मय और संभ्रमके साथ इधर उधर देखने लगा। उसने देखा भगवान् गरुड़ध्वज गरुड़ पर चढ़े हुए उसके सिरके ही ऊपर अस्त्र शस्त्र लिये खड़े हैं। यह देखकर उसके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। वह सोचने लगा—"क्या मुझसे भी लड़ने की किसी में सामर्थ्य है? क्या मुझे भी कोई समर के लिये चुनौती दे सकता है?" इस प्रकार सोचकर वह क्रोध में भरकर त्रिशूल हाथ में लेकर गदाधर भगवान् वासुदेवसे युद्ध करने बाहर निकल आया। वह प्रलयकालीन अग्निके समान क्रोधसे जल रहा था। कल्पान्त सूर्यके समान दुष्प्रेक्ष्य असह्य और प्रचण्ड तेजोमय प्रतीत हो रहा था। वह अपने विकराल पाँचों मुखों को फाड़कर अन्तकके समान मूर्तिमान् पाँच शिरों वाले क्रोध के समान काल रूप कृष्ण की ओर दौड़ा। सर्प जिस प्रकार

गरुड़ की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार वह हरि वाहन तार्क्ष्यकी ओर दौड़ा। उसने सर्व प्रथम गरुड़जी का अन्त करने के निमित्त अपना जाज्वल्यमान त्रिशूल उन्हें ही लक्ष्य करके उनके ऊपर फेंका। और फिर पांचों मुख से भीषणनाद करते हुए कहने लगा—"मारा गया मारा गया।" उसका यह भयङ्कर शब्द दशों दिशाओं में गूँजकर अन्तरिक्षमें भर गया। तब भगवान्‌ने बीचमें ही वाण वर्षा करके उस विकराल शक्तिको छिन्न भिन्न कर दिया और उसके कूओं के समान फटे हुये मुख में बाण मारे। अब तो उसके रोम रोम में कोप व्याप्त हो गया। उसके हाथ में एक गदा थी, वह गदा गदाधर के ऊपर मारी। भगवान्‌ने अपनी कौमोदिकी गदा से उस असुर की गदा के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अपनी अव्यर्थ गदा और शक्ति को व्यर्थ होते देखकर असुर अत्यन्त ही कुपित हुआ। अपनेको निरस्त्र समझकर वह अपने भयङ्कर पाँचों मुखोंको फाड़कर भगवान्‌को निगलनेके लिये दौड़ा। तब भगवान्‌ने हँसते हँसते अपने चक्र सुदर्शन से उसके पाँचों सिरों को काट दिया। सिर कट जानेसे उसका धड़ शृङ्गहीन गेरू पर्वतके समान दिखाई देने लगा। उसका धड़ धड़ाम से जलमें गिर गया, इस प्रकार प्राग्ज्योतिषपुर का रक्षक भगवान् के चक्र द्वारा मारा गया। इस मुरको मारने के ही कारण भगवान् का नाम 'मुरारि' प्रसिद्ध हुआ। उस बलवान् असुरके ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नमस्वान् और अरुण ये सात पुत्र थे। पिता के वधको श्रवण करके वे सब क्रोधमें भरकर अस्त्र शस्त्र लेकर सेना सजाकर श्यामसुन्दर पर प्रहार करनेके लिये भौमासुरकी आज्ञासे आये। वे सब पितृवध के कारण अत्यन्त ही क्रोधित थे, वे अपने पितृहन्ता से प्रतिशोध लेना चाहते थे। उन सबका सेनानायक पीठ नामक पराक्रमी असुर था। आते ही उन्होने अखिलेश अच्युत के ऊपर बाण, खड्ग, गदा, शक्ति, ऋष्टि, त्रिशूल, भुसुन्डी,

परिघ निस्त्रिंश, तथा अन्यान्य अस्त्रोंकी एक साथ ही वर्षा की। भगान् वासुदेव के लिये तो ये सब अस्त्र शस्त्र, कुसुमों के सदृश थे। अतः उन पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। हंसते हंसते उन्होंने सभी अस्त्र शस्त्रों को सहज में ही व्यर्थ बना दिया उन्हें काट काटकर अवनि पर गिरा दिया। मुर के सातों सुतोंको तथा अन्यान्य सभी शत्रु सैनिकोंको शस्त्रों द्वारा श्यामसुन्दर ने समर-शाला मे सदा के लिये सुला दिया। उन सबके शिर, भुजा, चरण, मुख, कान, नाक, हस्त आदि अङ्ग प्रत्यङ्ग कवच, धनुष बाण, तूणीर आदि समर सामग्री कट कटकर समर भूमि मे, गिरने लगी। इन सब वस्तुओं से युद्धस्थली भर गई। इस प्रकार गरुड़-ध्वज ने सेनापति पाठ से लेकर उसके सभी साथी शूरवीरों को यम सदन पठा दिया।

जब यह सुखद समाचार कुजनरकासुर को मिला, तब तो वह अत्यन्त कुपित हो गया, अब उस पर पुर में रहा नहीं गया। वह सोचने लगा—"जो वीर मेरे मुर, पीठ आदि शूरवीर सेनापति-को मार सकता है, वह सामान्य पुरुष न होगा, उससे लड़ने तो मुझे ही अविलम्ब चलना चाहिये। अब व्यर्थ समय नष्ट करनेका अवसर नहीं।" यही सब सोचकर वह मदस्त्रावी गजोंकी विशाल सेना लेकर युद्ध के निमित्त अन्तःपुर से बाहर आया। वहाँ उसने गरुड़ पर चढ़े हुए गोविन्दके दर्शन किये। अपने सैनिकों के सहस्रों लक्षों रुंडमुन्ड वहाँ देखे। जैसे प्रज्वलित अग्नि घृत की आहुति पाकर और भी अधिक प्रचण्ड होती है, उसी प्रकार सैनिकों के रक्तकी नदीको देखकर उसका क्रोध सीमाको उल्लङ्घन कर गया।

गरुड़ पर विराजमान वासुदेव अपनी प्रिया सत्यभामा के साथ ऐसे ही शोभित होते थे जैसे सूर्य के ऊपर सौदामिनी सहित श्यामघन सुशोभित होता है। क्रुद्ध हुए भौमासुरने भगवानके ऊपर दूरसे ही शतघ्नी छोड़ी। समस्त शत्रुसैनिक भी साथ ही श्याम-

सुन्दर पर टूट पड़े। वे सबके सब शस्त्रों की वर्षा करने लगे। भगवान् भी चूकने वाले नहीं थे उन्होंने भी अपने धनुष शार्ङ्ग-धनुष पर अमोघ बाण चढ़ाकर उनकी वर्षा आरम्भ की। उनसे शत्रु पक्ष के सैनिकों के सिर, कर, कंठ, कटि कान तथा अन्यान्य अङ्ग प्रत्यंग कट कटकर गिरने लगे। हाय हाय की गगन भेदीही ध्वनि से दशों दिशाएँ प्रतिध्वनित होने लगी। भगवान् अनवरत भाव से बाण वृष्टि कर रहे थे मानों सृष्टि के विनाश में रुद्र प्रवृत्त हो रहे हों।

इधर भगवान्के वाहन कश्यपनन्दन विनताआनंदवर्धन गरुड़जी भी चुप नही थे वे भी अपने पंखों से पंजो से तथा चोंच से असुरोके दलका संहारकर रहे थे। सब सैनिक तथा उनके गजादि वाहन गरुड़ और गरुड़ध्वज की मार को न सह सकने के कारण रण छोड़कर भग गये, किन्तु वीराभिमानी भौमासुर नही भागा, वह एकाकी ही बड़ी वीरताके साथ वनमालीसे लड़ता रहा। उसे पख फैलाये इधर से उधर उड़ उड़कर शत्रु सेना का संहार करते हुए गरुड़जी के ऊपर अत्यन्त ही क्रोध आया। उसने हरिवाहन गरुड़जी पर अनेकों प्रहार किये, किन्तु उन्होने उन सबको व्यर्थ बना दिया। वे पुष्पमाला से आहत गजराज के सदृश उसके अस्त्र शस्त्रों से किंचित भी विचलित नही हुए। अस्त्र शस्त्रों से भयभीत होकर गरुड़जीकी पीठपर बैठी हुई सत्यभामाजीने कहा–"प्राण-नाथ! आप इस असुर को शीघ्र ही मार डालें" यह सुनकर भगवान्ने मारनेका निश्चय कर लिया। अब तो नरकासुरके क्रोध का ठिकाना नही रहा। वह हाथीपर चढ़कर भगवान्से युद्ध कर रहा था। उसने सम्पूर्ण शक्ति लगाकर अपना सभी बल बटोर-कर एक जाज्वल्यमान त्रिशूल त्रिभुवन पति के ऊपर फेकने ज्यों ही उठाना चाहा, त्यों ही उसके उठाने के पूर्व ही भगवान् ने उसका सिर अपने सुदर्शन चक्रसे काट दिया। भौमासुर मर गया

उसके आश्रित और सम्बन्धी असुर रोने लगे। सुरगण हर्ष के कारण हँसने लगे और सुमनों की वृष्टि करने लगे तथा दुदुंभि बजाने लगे। ऋषि, मुनि, सिद्ध तथा अन्यान्य देवगण साधु साधु कहकर श्यामसुन्दर का अभिनन्दन करने लगे।

अपने पुत्र नरकको मृतक देखकर तथा अपने स्वामी श्यामसुन्दर को कुपित देखकर उसकी माता भूदेवी अदिति के दिव्य कुण्डलों को वरुण के अमृतस्रावी छत्र को सुमेरु के मणिमय शिखर को तथा वैजन्ती माला सहित वनमाला को लेकर अत्यंत भयभीत होकर काँपती हुई कृपालु श्रीकृष्ण के समीप आई। उन सब वस्तुओं को सादर समर्पित करके, दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर भक्ति परायण हृदय से, गद् गद् कंठ से उन सुस्वर-वंदित भगवान् विश्वेश्वर की स्तुति करने लगी। उसने बार बार भगवान् के पाद पद्मों में प्रणाम किया उनकी महिमा गाई और अपनी विवशता दर्शायी।

सूतजी कहते है—"मुनियो! भूमिदेवी की प्रार्थना सुनकर शरणागतवत्सल भगवान् प्रसन्न हुए और भौमासुरके पुत्र भगदत्त को अभदान देकर उसके द्वारा सत्कृत होकर उसके पुर में गये। भौमासुर के सर्व सम्पत्ति युक्त वैभवशाली भवन को देखकर भगवान् प्रसन्न हुए। अब वे जैसे वन्दिनी कन्याओं का उद्धार करेंगे वह कथा प्रसङ्ग आगे वर्णन किया जायगा।"

### छप्पय

मुनिके मुरको मरन असुर गन अति घबराये।
ताम्र आदि सुत सात पीठ सँग नरक पठाये॥
ते जब सब मरि गये स्वयं भौमासुर आयो।
लड्यो प्रानपन सहित श्याम बल पार न पायो।
चक्र सुदर्शन तें नरक को सिर काट्यो श्रीहरी।
सुनत मरन सुत आइ भू, भेंट लाइ इस्तुति करी॥

# वन्दिनी कन्याओं का उद्धार तथा इन्द्र भवन गमन

( १११० )

गत्वा सुरेंद्रभवनं दत्त्वादित्यै च कुण्डले।
पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण सहेन्द्राण्या च सप्रियः ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ५६ अ० ३८ श्लो० )

छप्पय

अभयदान हरि दयो नरक सुत नृपति बनायो।
अवनि पौत्र भगदत्त प्रभुहिं निजपुर लै आयो॥
निरखीं षोडश सहस बन्दिनी कन्या पुर महँ।
होवें पति घनश्याम, भई इच्छा तिनि उर महँ॥
जानि सत्य संकल्प हरि, पठइ द्वारका सब दई।
मनवांछित ते पाइ वर, अधिक मुदित मन महँ भई॥

मनुष्य दूसरोंको अहंकारके कारण तुच्छ समझता है। अहंकारवश अपने को सर्वश्रेष्ठ समझकर प्राणी दूसरों का तिरस्कार करता है। जब हम अपने को बड़ा समझते हैं और दूसरा हमारे बड़प्पनको स्वीकार नहीं करता, तो हमारे मनमें उसके प्रति द्वेष होता है। द्वेष आते ही उसका अनिष्ट करनेकी–उसे नीचा दिखा-

*श्रीशुकदेवजी कहते है—"राजन्! इसके अनन्तर भगवान् इन्द्रके भवनमें गये वहाँ जाकर अदिति माताके कुण्डलोको दिया और वहाँ इन्द्राणी सहित देवेन्द्र ने सत्यभामाजी के सहित भगवान् की पूजा की।"

नेकी—इच्छा मन में उत्पन्न होती है। यह इच्छा ही कलह का बीज है। इसी की शाखा प्रशाखा राग द्वेष, लड़ाई झगड़ा, पराजय तथा मृत्यु आदि हैं। महत्तत्त्व के बिना संसार चक्र नहीं। संसार चक्रका ही नाम प्रपंच है इसकी भित्ति असत्‌पर ही स्थित है। सत् की सत्ता से असत् में सत् सा व्यापार हो रहा है। यही क्रीड़ा है, यही खेल है यही विनोद तथा प्रभु की लीला है। इसमें अपनी पृथक् सत्ता स्थापित करना उचित नहीं। सर्व सत्ता स्रोत की सत्ता में ही अपनी सत्ता मिला देना यही परम पुरुषार्थ है।

सूतजी कहते है—"मुनियो! भौमासुर मारा गया। भगवान् ने उसके पुत्र भगदत्त को प्राग्ज्योतिषपुर का राजा बना दिया। भगदत्त ने प्रार्थनाकी—"प्रभो! अपने पाद पद्मोंकी परागसे मेरे पुरको पावन बनाइये। मेरे भवनको कृतार्थ कीजिये।" भगदत्त की प्रार्थनासे भगवान्‌ने उसके सजे सजाये सर्व समृद्धिशाली भवन में प्रवेश किया। इधर उधर देख दाखकर बोले—"भगदत्त! हमने सुना है, तुम्हारे पिताने बहुत सी राजकन्याओं को बन्दी बना रखा है, वे कन्या कितनी हैं? और कहाँ हैं?"

हाथ जोड़कर भगदत्त ने कहा—"देव वे सब सोलह सहस्र एक सौ हैं। मेरे पिता की इच्छा थी, जब ये सब अठारह सहस्र हो जायँगी, तब सबके साथ विवाह करूँगा। उनका यह मनोरथ सफल न हो सका। वे बीच में ही काल कवलित हो गये। वे सब कन्यायें सुंदरी हैं,दोष रहित है और गंगाजलके सदृश पवित्र हैं। समीप के ही भवन में वंद हैं आज्ञा हों तो उन सबको उनके पिताओ के पास पहुँचा दिया जाय।"

भगवान् ने कहा—"चलो, देखें तो सही। देखकर फिर निर्णय करेंगे कि उन्हें कहाँ पहुँचाया जाय।"

'जो आज्ञा'कहकर भगदत्तने तुरन्त उस भवनको खुलवाया। भगवान् मंद मंद मुसकराते हुए घुटनोतक लटकती हुई वनमाला

को हिलाते हुए,पीताम्बरको फहराते हुए वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर क्या देखते हैं वे अत्यंत सुन्दरी कन्यायें करावास में भय के कारण पीली पड़ रही हैं। भगवान् को देखते ही वे सबकी सब संभ्रम के साथ खड़ी हो गईं। सहसा इतने सुन्दर पुरुष को देखकर वे सबकी सब श्यामसुन्दर के रूप पर मोहित हो गयी। उन्होंने यह समाचार सुन ही लिया था, कि हमारे हरण करने वाला नरकासुर मारा गया। सबके मन में एक साथ ही यह संकल्प उठा—"दैवने घर बैठे हमारे लिये ये भुवन मोहन वर भेज दिये। वे सबकी सब विधाता से यही मनाने लगीं कि हमारा पाणिग्रहण ये ही विश्वविमोहन करें। ये ही हमारे पति हों। ये ही हमें पत्नी रूप में वरण करें।"

भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, उनके अभिप्राय को समझ गये। ऊपर से दिखाने को उनसे पूछने लगे—"कहो, तुम सब कुशल पूर्वक हो न ? तुमको यहाँ बड़ा कष्ट हुआ ? तुम्हें तुम्हारे पिताओं के पास पहुँचा दें।"

कन्याओं ने कहा—"प्रभो ! पिता पुत्री को घरमें तो रख नहीं सकते। वे भी किसी को देंगे ही पिता को पुत्री के अनुकूल पति खोजने के लिये कितना प्रयत्न करना पड़ता है। अब हमें घर बैठे ही दैवयोग से सर्वगुण सम्पन्न पति प्राप्त हो चुके हैं, तब फिर हम पिताओं के घर जाकर क्या करेंगी ? हमारे जाने से उनकी चिन्ता और अधिक बढ़ेगी। अब तो हम आपकी ही शरण में हैं। आप चाहें अपनाओ या ठुकराओ। यहाँ रखो या जहाँ इच्छा हो तहाँ ले चलो।"

भगवान् ने बात को स्पष्ट करने के लिये सब पृथक् पृथक् पूछा—"तुममें से जिसे भी अपने पिता के यहाँ जाना हो, वह मुझ से कह दे। संकोच का काम नहीं।"

यह सुनकर सबने एक स्वर से कहा—"हम आपके चरणों को

छोड़कर ब्रह्मलोक में भी नहीं जाना चाहतीं। आप हमें ले जायँगे तो जायँगी नहीं यहीं आत्महत्या कर लेंगी।"

भगवान् बोले—"आत्महत्या क्यों करो। जब तुम सबकी ऐसी ही इच्छा है, तो चलो द्वारका में। जैसे सब रहती हैं, वैसे तुम भी रहना।"

यह सुनकर सब अत्यंत ही प्रसन्न हुईं। भगवान् ने भगदत्तसे कहा—'भैया इन्हें भली प्रकार से स्नानादि करा दो।' भगवान् की आज्ञा पाकर सहस्रों दासियों ने उबटन आदि अलाकर महौपधि दिव्यौपधि के सुन्दर सुगन्धित जलों से विधिवत् सबको स्नानादि

कराये। सुन्दर सुगन्धित मालायें पहिनाई वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके और अत्यंत ही आदर के साथ उन सबसे पृथक् पृथक् शिविकाओं में बैठाया। भगवान् की आज्ञा पाते ही वे सब शिवि-कायें द्वारका की ओर चलीं।

भगदत्त ने उन सब कन्याओं को तो बहुमूल्य वस्त्र और मणि-मय दिव्य आभूषण दिये ही साथ ही बहुत सा धन, बहुत से रथ, घोड़े और विविध प्रकार की सम्पत्तियाँ भी दी। ऐरावत कुल में उत्पन्न चार दाँतों वाले अत्यंत वेगवान चौसठ हाथी भी उसने दिये। भगवान् ने उन सब प्रेमोपहार की वस्तुओं को स्वीकार कर लिया और सेवकों के हाथ उनको द्वारका पहुँचा दिया।

सोलह सहस्र कन्याओं को तथा माल मसाले को द्वारका भेजकर अब भगवान् ने सोचा—"पहिले अदिति माता के कुन्डल दे आवे, तब द्वारका चलेंगे।" यह सोचकर भगवान् ने गरुड़जी को स्वर्ग में चलने की आज्ञा दी। भगवान् की आज्ञा पाकर गरुड़जी अपने पंखों से सामवेद की ध्वनि करते हुए उड़े। सर्व प्रथम उन्होंने सुमेरु के मणिमय शिखर को उसके ऊपर स्थापित किया, फिर वरुण के छत्र चँवर को उनके यहाँ पहुँचाया और फिर सीधे इन्द्र के भवन की ओर चले।

इन्द्र ने जब देखा, भगवान् गरुड़ पर चढ़े हुए अपनी भार्या सत्यभामाजी के साथ आ रहे हैं, तो वे अपने समस्त देवताओं के साथ उठकर खड़े हो गये। उन्होंने अत्यन्त ही आदर के साथ भगवान् का स्वागत सत्कार किया सर्व प्रथम भगवान् सत्यभामा जी को लिये हुए माता अदिति के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने माताजी को प्रणाम करके कहा—"माताजी! ये आपके कानों के दिव्य कुन्डल हैं, जिन्हें दुष्ट नरकासुर यहाँ से ले [illegible] था। मैं उसे मारकर ये कुन्डल आपको देने के लिये [illegible] आप इन्हें [illegible] करें।" यह सुनकर गद् गद् वाणी से [illegible] विनोद[illegible]

हुई अदितिदेवी बोलीं—"हे यदुनन्दन ! आप सर्वज्ञ हैं, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। इस जगत् के आदि कारण आप ही हैं। आप का कौन पिता कौन माता। आप तो अज, अव्यय अविनाशी हैं आपके लिये असुरों का मारना एक खेल है। मुझ शरण में आई अबला के ऊपर आपने इतनी कृपा की। मुझे दर्शन देने आप स्वयं पधारे। इससे हे देव ! मैं कृतार्थ हो गई। आपके पाद पद्मो में पुनः पुनः प्रणाम है।" यह कहकर जगन्माता अदिति ने अपने प्रेमश्रुओं से प्रभु का पीताम्बर भिगो दिया।

तब सत्यभामादेवी ने माता अदिति के पैर छुए अपना नाम बताया। माताने उन्हें बड़े प्यार से हृदय से लगाकर कहा—"बेटी ! तेरा सुहाग सदा बना रहे। मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ, तू सदा इसी प्रकार बनी रहे तुझे कभी जरा शोक न व्यापे तू सदा अपने पति की प्यारी बनी रहे।"

सत्यभामाजी का आगमन सुनकर इन्द्राणी भी अपनी सासके समीप आ गई थी दोनों बहुएँ बड़ी देर तक बैठी रहीं। फिर इन्द्र ने कहा—"यदुनन्दन आप मेरी सभा में पधारें सब देवता दर्शनों के लिये परम उत्सुक हैं।"

यह सुनकर माता से आज्ञा लेकर भगवान् तो इन्द्र के साथ सभा में चले गये और इन्द्रणी सत्यभामाजी को अन्तःपुर ले गयीं।

इन्द्राणी ने सत्यभामाजी का बहुत आदर सत्कार किया उन्हें मणिमय आसन पर बिठाया। आपस में घर द्वार, तथा पति के स्वभाव व्यवहार की बातें होती रहीं। उसी समय कल्पवृक्ष के पुष्पों की टोकरी भरकर नन्दन कानन का एक रक्षक लाया उन फूलों से शचीदेवी ने अपना शृङ्गार किया। पुष्प शैया बनाई। किसी अप्सराने कहा—"ये सत्यभामाजी भी पधारी हैं, इन्हें भी चोटी में खोंसने के लिये कल्पवृक्ष का पुष्प देना चाहिए।"

यह सुनकर इन्द्राणी ने डाँटकर उससे कह दिया—"तू समझती तो है नहीं। यह स्वर्गीय ललनाओं के उपभोगकी वस्तु है। मानवी स्त्रियाँ इन स्वर्गीय पुष्पोंकी अधिकारिणी नहीं होतीं।"

इन्द्राणीने यह बात कही तो इस प्रकार थी, जिससे सत्यभामाजी न सुन सकें, किन्तु उन्होंने सुन ही ली। सुनते ही वे आगबबूला हो उठीं। उनके रोम रोम में क्रोध छा गया। वे सोचने लगी—"यह इन्द्राणी अपनेको बहुत लगाती है। इसका पति तो मेरी ड्योढ़ीपर नाक रगड़ता रहता है,सूत मागधोंकी भाँति स्तुति करता रहता है और यह मुझे एक पुष्पकी भी अधिकारी नहीं समझती। मेरा मानवी महिला कहकर अपमान करती है। अच्छी बात है, मैं भी इसे बता दूँगी, कि मैं कैसी मानवी हूँ। यदि इसके गर्वको मैंने चूर्ण न किया तो मेरा नाम सत्यभामा नहीं है।" यह सोचकर वे चुप रह गयीं। उनका मुख क्रोध के कारण लाल पड़ गया। किन्तु उस समय उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। सोचा-"कहते तो निर्बल है। मैं तो इसे करके दिखाऊँगी।" यही सोचकर वे बोलीं-'महारानीजी! अब आज्ञा हो?'

इन्द्राणी समझ गई। हृदयगत भाव छिपते नहीं। बनावटी शिष्टाचार प्रदर्शित करते हुए उसने कहा—"ऐसी क्या शीघ्रता है बैठिये कुछ देर और।"

उठते हुए सत्यभामाजी ने कहा—"नहीं वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।" इतना कहते कहते वे बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये चल दीं। कुछ दूर इन्द्राणी उनके पीछे पीछे चली जब उन्होंने देखा यह मुझे देखती भी नहीं तो वह भी लौट पड़ी। इन्द्राणी जब लौट गई, तो सत्यभामाजी फिर कुछ ठिठक गई।

पीछे कोई अप्सरा कह रही थी—"सत्यभामाजी बुरा मान गईं।"

मुँह मटकाकर ठसक जताती हुई इन्द्राणी बोली—"बुरा

मान गई तो मेरी बलासे। मेरा क्या कर लेंगी। दो रोटी अधिक खा लेंगी। जो बात सच्ची थी वह मैंने कह दी। कल्पवृक्षके पुष्पों की माला तो शचीदेवी इन्द्राणी ही स्वर्ग में पहिन सकती है। मानवी स्त्रियाँ स्वर्गके पुष्पोंको अपने सिरमें कैसे लगा सकती है। सच्ची बात का बुरा मानती है तो माने। मैं त्रिलोकेश की पत्नी हूँ।

यह बात भी सत्यभामाजी ने सुनी। इस बात ने तो मानों उनकी प्रज्वलित क्रोधाग्नि में घृतकी आहुति डाली हो। वे तुनकती फुनकती अपने पतिदेव के पास पहुँची। भगवान् सुवर्ण के सिंहासन पर विराजे हुए थे, इन्द्र सत्यभामाजी को देखकर खडे हो गये और बोले—"पधारिये पधारिये, इस आसन पर विराजिये।" किन्तु सत्यभामाजी बैठी नही वे खड़े ही खड़े भगवान्से बोलीं—"अब चलोगे नही। यहाँ के उद्यान उपवन भी देख लें।"

यह सुनते ही भगवान् सिंहासन से उठ खड़े हुए और सत्यभामाजी के साथ चलने लगे।

देवेन्द्र ने बड़े शिष्टाचार से कहा—"भगवन्! मैं भी साथ चलता हूँ। स्वयं ही मैं यहाँ के उद्यान उपवनों को दिखाऊँगा।"

बीच में ही अधिकारके स्वरमें सत्यभामाजी बोलीं—"नहीं, आपकी कोई आवश्यकता नही हमारे साथ गरुड़जी हैं। हम सब देख लेंगे।"

सत्यभामाजी के रुखको देखकर इन्द्र डर गये। वे सोचने लगे—"मेरी सेवामें कौनसी त्रुटि रह गई जो स्वामिनीजी असन्तुष्ट हो गईं।" अधिक कहना उन्होंने उचित नहीं समझा। भगवान् जब गरुड़जीपर चढ़कर चल दिये तब इन्द्र प्रणाम करके अपने साथियों सहित लौट गये। स्वर्गोद्यान में जाकर सत्यभामा जी एक एक पेड़ की ओर देखकर पूछने लगीं—"प्राणनाथ!

यह किसका पेड़ है ?"

भगवान् सबका नाम बताते, फिर आगे बढ़ जाते। इसी प्रकार पूछते पूछते वे उस वृक्ष के समीप पहुंचे जो सबसे सुन्दर कल्पवृक्ष था। जिनके पुष्पों को शची इन्द्राणी के अतिरिक्त कोई व्यवहार में नहीं ले सकता था। उसके पुष्पों को देखकर ही सत्यभामाजी पहिचान गईं कि यह वही वृक्ष है। अत्यन्त ही कुतूहलके साथ वे अपने पतिसे बोलीं—"प्राणनाथ! यह किसका वृक्ष है?"

भगवान्ने कहा—"इसका नाम है कल्पवृक्ष स्वर्ग के उपवनों में वैसे बहुत से कल्पवृक्ष हैं, किन्तु यह सर्वोत्तम है। इसके पुष्पों की गन्ध योजनों जाती है।

सत्यभामाजी ने अत्यन्त ही उल्लास के साथ कहा—"हाँ, इसके पुष्प तो बड़े सुन्दर हैं। तनिक इसके नीचे बैठकर विश्राम कर लें।"

अपनी प्रिया की इच्छा समझकर यदुनन्दन उस कल्पवृक्ष के नीचे बैठ गये। कुछ देर तक इधर उधरकी बातें होती रहीं। फिर सत्यभामाजी ने अत्यन्त ही प्रेम भरित वाणी में कहा—"प्राणनाथ! मैं एक बात पूछूँ आप उसका उत्तर देंगे ?"

भगवान् ने कहा—"हाँ, पूछो, उत्तर क्यों नहीं देंगे ?"

सत्यभामाजी ने ममता भरी वाणी में कहा—"सच सच उत्तर दोगे, छल कपट तो न करोगे ?"

भगवान् ने कहा—"यह भी कोई बात हुई तुम्हें जो पूछना हो पूछो। मेरे ऊपर इतना अविश्वास क्यों करती हो।"

शीघ्रता के साथ सत्यभामाजी ने कहा—"नहीं अविश्वासकी कोई बात नहीं, किन्तु कभी कभी आप वैसे ही मुझे भुलावा देने को कुछ का कुछ कह देते हो।"

भगवान् ने हँसकर कहा—"अच्छा, अब ऐसा उत्तर न देंगे। पूछो क्या पूछती हो।"

भगवान् के और अधिक निकट जाकर सत्यभामाजी बोलीं—"अच्छा, मै यह पूछती हूँ, कि आप जो बार बार मुझसे कहा करते है—कि मुझे न उतनी रुक्मिणी प्यारी है न जाम्बवती प्यारी न कालिन्दी प्यारी न कोई दूसरी ही रानी प्यारी है, जितनी तुम प्यारी हो, तो क्या यह बात सच है या वैसी ही मुझे प्रसन्न करने को कह देते हो ?"

भगवान् ने हँसकर कहा—"तुम अपना अभिप्राय बताओ। इतनी बड़ी भूमिका बाँधने से क्या लाभ ?"

मचलकर सत्यभामाजी ने कहा—पहिले इस बात का उत्तर दो, तब मैं अपना अभिप्राय कहूँगी।"

भगवान्ने कहा—"तुम तो व्यर्थकी बात बढ़ा रही हो, तुम्हें जो कहना हो उसे कहो।"

प्रेम आग्रह के साथ सत्यभामाजी ने कहा—"मैं व्यर्थ की बात नहीं बढ़ा रहा हूँ, आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर पहिले दें, तब मैं और बात कहूँगी।"

भगवान्ने कहा—"कहने से प्रेमका महत्व घट जाता है। जो बार बार यह कहा करता है मैं तुमसे प्रेम करता हूँ,प्रेम करता हूँ वह अवश्य ही बनावटी प्रेमी है। तुम मेरे ऊपर शङ्का करती हो। कहो हाँ, अच्छा वह बात सत्य ही है, चलो आगे चलो।"

सत्यभामाजी ने कहा—"बस, मुझे आपसे यही कहलाना था। अच्छा, अब मेरी प्रार्थना यह है, कि आप मुझे यथार्थ में प्रेम करते हो तो इस कल्पवृक्ष को उखाड़ कर द्वारका ले चलो इसे मैं अपने महल के उपवन में लगाना चाहती हूँ।"

भगवान् ने प्रेमपूर्वक रोष के स्वर में कहा—"अरे,तुम पगली हुई हो क्या ? ऐसी असम्भव प्रस्तावकर देती हो जो कभी न हो। यह स्वर्ग का वृक्ष है। पृथिवी पर कैसे जा सकता है ?"

आग्रह के स्वर में सत्यभामाजी ने कहा—"नहीं महाराज !

आपके लिये कुछ भी असंभव नही है। आपके लिये सब संभव है। मैं इस वृक्ष को यहाँ से लिये बिना उठूँगी नहीं। आपने मुझे वचन भी दिया था। कि तुम्हारे घर में कल्पवृक्ष लगा दूँगा।" उस वचन को पूरा करो।"

भगवान् ने हँसकर कहा—"अरे, चलो हटो। उस समय तो वैसे ही तुम्हारा मन रखने को मैंने कह दिया था।"

सत्यभामाजी ने कहा—"तब फिर तुम्हारी बात का कैसे विश्वास करें। आज मेरा मन रखने को तुम कुछ कह दोगे, कल दूसरे का मन रखने को मेरी बुराई भी करोगे।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान् ने उनकी ठोढ़ी ऊँची उठाकर प्यार के साथ कहा—"देखो, हठ नहीं करते हैं। यदि तुम्हारा कल्पवृक्ष ले चलने का ही आग्रह है, तो यहाँ और भी कल्पवृक्ष है, उनमें से किसी को ले चलें। यह तो देवराजी शचीदेवी का विशेष कल्पवृक्ष है।"

आग्रह के स्वर में सत्यभामाजी ने कहा—"मैं तो इसी को लूँगी और आपको ले चलना पड़ेगा।"यह कहकर उन्होने अपनी कोमल भुजा कमलाकान्त के कमनीय कंठ में डाल दी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! पुष्पों की, सोने चाँदीकी, मणि माणिक्यों और मोतियों की कोई भी माला इतनी मोहक और भारी नहीं होती जितनी कान्ताकी भुजलता रूपमाला भारी होती है, उसके कंठमें पड़ते ही मनुष्य इतना भारी हो जाता है कि वह भागना भी चाहे तो भाग नही सकता। उठना भी चाहे तो बिना सहारे के उठ नहीं सकता। भगवान् तो नरनाट्य कर रहे थे। उनके लिये किसी का न मोह है न ममता। वे तो क्रीड़ा करनेको

ऐसे कौतुक किया करते हैं। अपनी प्रियाका अत्यंत आग्रह देखकर उन्होने उस कल्पवृक्ष को उखाड़ लिया। उसके रक्षक मना करते रहे, चिल्लाते रहे, शचीदेवीका देवेन्द्रका नाम लेते रहे,किन्तु भगवान् ने सबकी बातें अनसुनी कर दीं। कल्पवृक्षको उखाड़कर गरुड़पर रखकर वे उसपर चढ़ गये। नीचे खड़ी ही खड़ी सत्यभामाजी उन रक्षकोंसे बोली—"जाओ, अपनी स्वामिनीसे कहना, कि मर्त्यलोक की एक मानवी स्त्री आई है, वह तुम्हारे कल्पवृक्ष को उखाड़े ले जाती है। तुममें और तुम्हारे स्वामी में बल हो, पौरुष हो तो आकर छुड़ा लें। अभी हम यहीं बैठे हैं।"

सेवकों ने सब बातें ज्यों की त्यों कुछ नमक मिरच लगाकर इन्द्राणी के समीप बैठे हुए देवेन्द्र से कही। सब सुनकर इन्द्र इन्द्राणीसे बोले—"सुनती हो। भलाई का परिणाम बुराई होता है। हमने श्रीकृष्णचन्द्रका कितना आदर किया, उसका परिणाम यह निकला कि हमारे कल्पवृक्ष को उखाड़े ले जाते हैं। हमने उनका कितना आदर सत्कार किया था।"

शचीरानी मुँह मटकाकर बोली—"यह सब उनके बहूरानी की करतूत होगी। वह अपने को बहुत लगाती है।"

इन्द्र ने कहा—"हाँ, जाते समय उनका मुख लाल हो रहा था, तुमने कुछ कह दिया था क्या ?"

तुनककर इन्द्राणी बोली—"मैंने क्या कह दिया महाराज ! जो सच्ची बात थी, वह कह दी। वह चाहती थी, मैं कल्पवृक्ष के पुष्पों से उसकी पूजा करूँ। आप ही सोचें—"वह मर्त्यलोक की स्त्री, उसे मैं कैसे देवोद्यान के दिव्य पुष्प दे सकती हूँ। इसी पर उसका मुँह फूलकर कुप्पा हो गया और तुन फुन तुन फुन

कहती हुई चली गई। मैंने भी कह दिया—"जाओ, तुम मेरा क्या कर सकती हो।" प्रतीत होता है, उसी ने अपने पति को उकसा कर यह कृत्य कराया है।"

चिन्तित होकर देवेन्द्र ने कहा—"तो अब क्या किया जाय ?"

माथा ठोककर शचीरानी बोली—"हाय ! मेरा कैसा भाग्य फूट गया। मुझे पति मिला, तो ऐसा नपुन्सक मिला, जो मेरी रक्षा करना तो दूर रहा मेरी वस्तुकी भी रक्षा नहीं कर सकता। स्त्री का सब प्रकार से पति भरण पोषण करता है इसीलिये उसकी भर्ता और पति संज्ञा है। एक वह भी पति है, जो अपनी पत्नीकी असंभव बातको संभव करना चाहता है,स्वर्गकी वस्तुको पृथिवीमें ले जाना चाहता है,एक मेरा भी पति है, जो मेरे सिर-पर ही एक मर्त्यलोक की स्त्री अपमान कर रही है और उसे वह भीगी बिल्ली की भाँति सहन कर रहा है। यह तुम्हारी देवताओं की सेना किस काम आवेगी ? क्या यह केवल प्रदर्शन करने को ही है ? यदि तुममें सामर्थ्य नहीं है, तो तुम मेरी चूड़ियाँ पहिन-कर भीतर बैठ जाओ। लाओ, मैं अपने कल्पवृक्ष की रक्षा करूँगी प्राण रहते तो मैं उसे ले नहीं जाने दूँगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अमोघतीक्ष्ण यन्त्र से उभारा हुआ आदमी चाहें एक बार चंचल न भी हो, किन्तु स्त्री का उभारा हुआ पुरुष शान्त बैठ सके उसे उत्तेजना न हो यह असंभव है। अपनी पत्नी की फटकार सुनकर इन्द्र को भी क्रोध आ गया। उसने सोचा—"श्रीकृष्ण द्वारका के राजा होंगे, यह क्या बात कि वे बलपूर्वक हमारे वृक्षको लिये जाते हैं। अच्छी बात है हम भी उन्हें देख लेंगे।" यह सोचकर वे भी सेनापति स्कन्द को बुलाकर सेना सजाकर श्रीकृष्ण का सामना करने की

तैयारियाँ करने लगे। अब जैसे लड़ाई भिड़ाई हुई, उसको वर्णन मैं आगे करूँगा।"

## छप्पय

दँवे कुण्डल अदिति स्वर्ग महँ गये मुरारी।
पाइ श्यामको दरश मातु मन भई सुखारी॥
सतभामा कूँ पूजि शचीने आदर कीन्हो।
किन्तु मानवी मानि देवद्रुम सुमन न दीन्हो॥
समुझि घोर अपमान निज, लै हरि सँग उपवन गईं।
कल्पवृक्ष लखि लेन हित, प्रेम सहित तहँ अड़ि गईं॥

# इन्द्र का भगवान् के साथ युद्ध

( ११११ )

ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः-
पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ।
सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महा-
नहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥*
( श्री भा० १० स्क० ५९ अ० ४१ श्लोक )

छप्पय

वृक्ष उखारचो श्याम गरुड़की पीठि धरचो जब ।
रक्षक रोवत गये इन्द्रतें वृत्त कह्यो सब ॥
शची उभारे इन्द्र सेन सजि लड़िवे आये ।
रवि,शशि, यम अरु वरुन देव हरि सकल हराये ॥
अस्त्रहीन सुरपति भये, भगे भूमि--रन छोड़िकें ।
सतभामा कटु वचन बहु, कहे हँसी मुँह मोरिकें ॥

जो भगवान् की महत्ता को भूलकर—अपने को ही सब कुछ समझकर-भगवान् का सामना करता है, उनका तिरस्कार करने की असफल चेष्टा करता है, उसे अन्त में पराजित होना पड़ता है,

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! देखो ये ही इन्द्र थे, जिन्होंने पहिले अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये शिर झुकाकर अपने मुकुट के अग्र भाग से भगवान् के चरणों का स्पर्श करते हुए विनती की थी, फिर जब स्वार्थ सिद्ध हो गया, तो वे ही उनसे लड़ने गये । देखो, इन देवताओंकी बुद्धि कैसी तामसी है । इस धनाढ्यता के लिये धिक्कार है ।"

क्योंकि भगवान् तो अच्युत तथा अपराजित हैं। विजय तो उनकी किंकरी है वे तो सदा विजय मे युक्त रहते है। पराजय तो कभी उनके पास फटकने भी नही पाती। जीव भगवान् से हार भी जाय, तो उसकी विजय ही है क्यों कि किसी भी प्रकार से किसी भी हेतु से--भगवान् के सम्मुख पहुँच जाना यही प्राणियों की सर्वोत्कृष्ट विजय है यही परम पुरुषार्थ है। यही पराकाष्ठा है यही परागति है। अतः अपनी समस्त चेष्टाओं का सदुपयोग करना ही हो तो भगवान् में ही करे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! शची देवी के उभाड़ने पर और उत्साहित करने पर देवेन्द्र सेना सजाकर कल्पवृक्ष की रक्षाके लिये उद्यत हो गये। उन्होंने भगवान् से युद्ध करनेका निश्चयकर लिया। समस्त देवगण परिघ, निस्त्रिंश, गदा, शूल, धनुष, बाण शतघ्नी तथा अन्यान्य अपने अपने अस्त्र शस्त्र लेकर लड़ने चले। देवेन्द्र भी ऐरावत हाथी पर चढ़कर युद्ध के लिये उद्यत हुए। उन्होने ऐरावत की पीठ से अपना युद्धोपयोगी शख बजाया। उसका निर्घोष दशों दिशाओं में गूँजने लगा। देवताओं के मनमें अत्यंत उत्साह छा गया। भगवान् के समीप पहुँच कर सभी ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया और वे सब एक साथ ही भगवान् पर बाणों की तथा अन्यान्य अस्त्र शस्त्रों की वर्षा सी करने लगे। भगवान् उनके प्रहारों से तनिक भी चिन्तित नहीं हुए। उन्होने लीला से ही उन सब अस्त्रों को काट दिया।

वरुणजी ने अपने नागपाश से भगवान् को बाँधना चाहा। बीच में ही गरुड़जी ने अपनी चोंच से उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये। यमराज ने अपना दंड छोड़ा। भगवान् ने अपनी कौमोदिकी गदा से उसके खण्ड खण्ड कर दिये। जिस शिविका में बैठ कर कुवेरजी युद्ध करने आये थे, उस शिविका को सुदर्शन चक्र ने टुकड़े टुकड़े कर दिया। सूर्य जब अपने प्रबल तेज से प्रभु के

सम्मुख युद्ध करने आये तो, भगवान् ने अपने नेत्रों के तेज से उन्हें तेज हीन अन्धे के सदृश बना दिया। इसी प्रकार मरुद्गण, साध्यगण, रुद्रगण तथा अन्यान्य देवगण भगवान् मधुसूदन के सम्मुख युद्ध करने आये और सभी को मुँह की खानी पड़ी। सभी पराजित होकर युद्ध से उपरत हो गये। तब देवेन्द्र ऐरावत पर चढकर युद्ध करने आया। उसने सहस्रों बाण छोड़ कर गरुड़जी के सहित गोविन्द को ढक लिया। भगवान् ने बात की बात में उनके बाणों को व्यर्थ बना दिया इधर गरुड़जी ऐरावत को मारने लगे। वह चिङ्घाड़कर भागता। जैसे पिता बच्चे के साथ खेल करता है, उसी प्रकार भगवान् बहुत देर तक अनेक अस्त्र शस्त्रों के द्वारा देवेन्द्र से युद्ध करते रहे। इन्द्र जो भी अस्त्र उठाते उसे ही वासुदेव व्यर्थ बना देते। जब उनके सब अस्त्र शस्त्र विफल हो गये, तब उन्होंने अपना अमोघास्त्र वज्र श्यामसुन्दर को मारने के लिये उठाया। भगवान् ने भी उसके उत्तर में अपना सुदर्शन चक्र उठाया। दोनों ही अस्त्र अमोघ थे। दशों दिशाओं में हा हा कार मच गया। सभी ने समझा अब अकाल में ही प्रलय हो जायगी।

इन्द्र ने क्रोध में भर कर अपना वज्र भगवान् पर छोड़ ही तो दिया, किन्तु भगवान् ने अपना सुदर्शन चक्र उन पर नहीं छोड़ा। इन्द्रको मार देना तो श्रीहरि को अभीष्ट नहीं था। उन्होंने लीला से ही इन्द्र के छोड़े वज्र को हाथ से पकड़ लिया। अब तो इन्द्र किंकर्तव्य विमूढ़ बन गये। उनका वाहन ऐरावत गरुड़जी की मार से क्षत विक्षत बन गया। स्वयं उनके पास कोई अस्त्र शस्त्र नहीं रहा था। वे अस्त्र हीन होकर प्राणों के भय से समर भूमि से भागने लगे। उन्हें भागते देखकर व्यंग के स्वर में सत्यभामाजी बोलीं—"बस शचीपति देवेन्द्र! तुममें इतना ही बल है। स्र रसे भयभीत होकर भागने में तुम्हें लज्जा

भी नहीं आती ? अब तुम अपनी बहूरानी शचीदेवी को क्या मुख दिखाओगे ? वे जब तुमसे कल्प वृक्ष के पुष्प माँगेंगी, तो उन्हें क्या देकर शांत करोगे ? तुम्हारी रानी तो हमें मानवी समझ कर एक फूल भी नहीं देना चाहती थी। अब हम सम्पूर्ण कल्प वृक्ष को ही उखाड़े लेजा रहे हैं। छिः छिः तुम अपनी बहू के कहने से एक वृक्ष की भी रक्षा न कर सके। अब समर से भागो मत। हम कल्प वृक्ष के भूखे नहीं हैं। हमें कल्प वृक्ष क्या करना है, ले जाओ तुम इसे। मुझे तो यही जताना था कि ऐसे तीन सौ साठ कल्प वृक्ष हमारे यहाँ लग सकते हैं। तुम्हारी शचीरानी ने मेरा अपमान किया था। स्त्री के हृदय में अपमान पचता नहीं विशेष कर जिसका पति सर्व समर्थ हो और उसे प्राणों से अधिक प्यार करता हो। अब तुम्हारा बल पौरुष देख लिया इस कल्प वृक्ष को ले जाओ सब देवता भी पूर्ववत स्वस्थ हो जायँ।"

सत्यभामाजी के ऐसे व्यंग वचन सुनकर देवेन्द्र लौट पड़े। उन्हें चेत हो गया। वे गरज कर बोले—"अरी चण्डी ! तू बहुत बातें क्यों बना रही है। न तो मुझे अपनी पराजय से कुछ दुःख ही है न लज्जा। जिनके संकल्प मात्र से विश्वकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होती है, उनसे पराजित होने में लज्जा की ही कौन सी बात है। यदि कोई अपने हाथों अपने बाल को उखाड़ दे या तोड़ दे इसमें बाल को क्या लज्जा। इन विश्वरूप श्रीकृष्ण में ही तो यह सम्पूर्ण विश्व अवस्थित है। मुझ जैसे असंख्यों इन्द्र इनकी श्वास प्रश्वास से निकलते और विलीन होते रहते हैं।"

देवेन्द्र की ऐसी युक्ति सुनकर भगवान् हँस पड़े और बोले—"अजी, देवराज आप ये कैसी बातें कर रहे हैं। आप त्रिभुवनाधीश हैं, देवताओं के राजा हैं, स्वर्ग में निवास करने वाले

है। हम मर्त्यलोकके प्राणि हैं। पृथिवी पर रहते है। हमारी आपकी क्या तुलना। वास्तव में स्त्री के आग्रह से मैंने यह अशिष्टता ही की जो आपके विना पूछे आपके उद्यान का कल्पवृक्ष उखाड़ लिया। आप हमारे इस अपराध को क्षमा करें। यह आपका पारिजात पादप है। इसे आप सहर्ष ले जायँ। यह आपका अमोघ वज्र है इसे भी आप ग्रहण करें। स्त्रियों का हठ बड़ा बुरा होता है। उसी हठ के वशीभूत होकर मैंने ऐसा साहस कर डाला।"

भगवान् की ऐसी बातें सुनकर लजाते हुए देवेन्द्र बोले—"अजी, महाराज! अब आप मुझे और भ्रम में क्यों डालना चाहते है। आप तो विश्वम्भर है। चराचर विश्वके स्वामी हैं। भूमि का भार उतारने के लिये मनुष्य रूपसे अवनिपर अवतरित हुए है। यह सत्य है हमारी आपकी बराबरी नही। हम अल्प है आप महान् हैं। हम अंश है, आप अंशी हैं, हम दास है आप स्वामी हैं। आप जो भी हों हमारे पूजनीय है, स्वामी है आपके पाद पद्मो मे हम प्रणाम करते है। आपने तो केवल मुझे शिक्षा देने के लिये यह लीला रची है, नहीं आपको पारिजात की क्या आवश्यकता आप्त काम को किसी वस्तु की स्पृहा ही कैसे हो सकती है?"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है अब तुम इस कल्पवृक्षको ले जाओ।"

हाथ जोड़कर विनीत भाव से देवेन्द्र ने कहा—"प्रभो! मेरी यह विनती स्वीकार की जावे। अब तो यह कल्पवृक्ष द्वारका ही जाय श्रीमती सत्यभामाजी के भवन की यह शोभा बढ़ावे। जब तक मर्त्यलोक में नर नाट्य करते रहेंगे, तब तक यह रहेगा। आपके तिरोधान के अनन्तर यह पृथिवी पर रह ही नहीं सकता। अपने आप ही यह स्वर्ग चला आवेगा।"

इन्द्रका जब बहुत आग्रह देखा और अपनी प्रिया सत्यभामाका भी कुछ रुख देखा तो भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है। तुम नहीं मानते हो, तो इसे हम लिये जाते हैं।" यह कह कर भगवान् चलने को उद्यत हुए। उसी समय शचीने आकर सत्यभामा जी से अपने व्यवहार के लिये क्षमा याचना की। इन्द्रने इन्द्र णी सहित भगवान् और सत्यभामा जी की पूजा की। इस प्रकार पूजित होकर भगवान् कल्पवृक्ष को गरुड़जी की पीठ पर रखकर विजय का शंख बजा कर द्वारका के लिये चल दिये।

उस कल्पवृक्ष पर बहुत से मधु लोलुप मकरन्द प्रेमी मधुप रहते थे। उन्हें उसी वृक्षका मधु प्रिय था। अतः उस पर निवास करने वाले वे भ्रमर वृन्द भी उसके साथ ही साथ गुन गुनाते हुए चले। मानों गोविन्द के गुणों को गाते हुए गायक गरुड़ के पीछे पीछे उड़ रहे हों। इस प्रकार अदिति देवी के कुण्डलों को देकर देवताओं को जीत कर तथा कल्पवृक्ष को लेकर भगवान् द्वारकापुरी में आये। वहाँ आकर उन्होंने उत्तम लग्न में वह वृक्ष सत्यभामाजी के भवन के आँगन में लगा दिया। उसके पुष्पों की गन्ध बारह कोश तक जाती थी। उसके नीचे वृद्ध आकर बैठ जाय तो युवक हो जाता था। चिन्ताग्रस्त आकर बैठ जाय, तो निश्चिन्त हो जाता था। लेखक आकर बैठ जाय तो उसकी सरस्वती प्रस्फुटित हो जाती थी। सारांश यह कि यह सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला था। अब द्वारका में दो कल्पवृक्ष हो गये एक सजीव दूसरा निर्जीव। यह निर्जीव कल्पवृक्ष तो केवल संसारी भोगों को ही दे सकता था। किन्तु भक्तवांछाकल्पतरु भगवान् वासुदेव तो भुक्ति मुक्ति तथा भक्ति तीनों को ही देने में समर्थ थे। सत्यभामाजी अत्यंत ही प्रसन्न रहतीं। उस कल्पवृक्ष के लग जाने से उनके भवन की शोभा

अत्यधिक बढ़ गई। वे सबके घरों में उसके पुष्पों को बराबर भेजती रहती थीं। इस लिये किसी के मन में भी उनके प्रति ईर्ष्या के भाव नहीं उठते थे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की यह मोह मयी माया कैसी प्रबल है। मनुष्य सब जान बूझकर भी अनजान बन जाता है। यह जानता भी है, इस काम के करने से मेरा पतन होगा, यह कार्य मेरे वर्ण, आश्रम, पद, प्रतिष्ठा, सदाचार तथा कुल के विरुद्ध है फिर भी उसे बार बार करता है। जानबूझ कर करता है। पिछली की हुई प्रतिज्ञाओं को भूल जाता है। औरों की बात छोड़ दीजिये। जो तीनों भुवनों के अधीश्वर कहाते हैं, वे इन्द्र भी जब ऐश्वर्य के मद में आ जाते हैं, तो तमोगुण बढने से भगवान् की महत्ता को भूल जाते हैं। ब्रजमें अपना यज्ञ बन्द होने पर इन्द्र ने कैसा उपद्रव किया, ब्रज को नाश करने का ही संकल्प कर लिया। वहाँ भगवान् ने एक उङ्गली पर गोवर्धन पर्वत को उठाकर उसके मान को मर्दन किया। तब उसने अपने अपराध के लिये क्षमा याचना की। फिर स्वर्ग में इन्द्राणी के उकसाने से तमोगुण में भर गया। पुनः भगवान् से युद्ध करने प्रवृत्त हुआ। पहिले द्वारका में जाकर कैसी बिलैया डण्डौत की। अब जब माता के कुण्डल मिल गये तो फिर अपने को सर्व समर्थ ईश्वर समझने लगा। इसमें इन्द्र का भी कुछ दोष नहीं। यह सब दोष तो भगवान् की माया का है। जहाँ धन का मद हुआ तहाँ मनुष्य कामी बन जाता है। कामी पुरुष को कर्तव्याकर्तव्य का विवेक नहीं रहता।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार भगवान् ने कल्प वृक्ष लाकर सत्यभामाजीके साथ की हुई अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। अब जिस प्रकार उन्होंने सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं के साथ विवाह किया उस कथा प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

अब सब समुझे इन्द्र शक्र सकुच तजि बोले बानी।
'हैं अच्युत अखिलेश आप हौ अति अभिमानी ॥
माया तुमरी प्रबल भूलिके उरभ्भ्यो स्वामी।
क्षमा करें अपराध अखिलपति अन्तर्यामी ॥
सुनत इन्द्रके वचन मृदु, भये सदय करुनायतन।
पुर आये सुर द्रुम लिये, थाप्यो सतभामा सदन ॥

# सोलह सहस्र कन्याओं के साथ विवाह

( १११२ )

अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः।
यथोपयेमे भगवांस्तावद् रूप धरोऽव्ययः॥*

(श्री भा० १० स्क० ५९ अ० ४२ श्लोक)

छप्पय

पुनि जो सोलह सहस एक शत कन्या आई।
बनवाये बहु भवन सकल सुख तें ठहराई॥
विधिवत करयो विवाह रूप उतने धरि लीन्हे।
सब कूँ भूषन वसन दास दासी बहु दीन्हे॥
भवन भवन महँ भुवन पति, पृथक पृथक निज तनु धरें।
सुखद सरस सुन्दर संतत, क्रीड़ा सबके सँग करें॥

अग्नि एक ही है, वह जैसा काष्ठ होता है वैसे ही आकार की प्रतीत होने लगती है। सूर्य एक ही हैं, किन्तु जल से भरे असंख्यों घड़ों में उनका प्रतिविम्ब पृथक् पृथक् दृष्टिगोचर होता है। आकाश एक ही है पात्र भेद से उसकी घटाकाश, मठाकाश तथा

* श्री शुकदेवजी कहते है—"राजन्! भौमासुर के यहाँ से लायी हुई उन सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं के साथ भगवान् ने भिन्न भिन्न भवनोंमें, भिन्न भिन्न रूप रखकर एक ही मुहूर्तमें विधिवत् विवाह किया।"

देहाकाश संज्ञा हो जाती है। इसी प्रकार सर्वान्तिर्यामी, अज, अच्युत, अखिलेश श्रीहरि एक है अद्वैत हैं तथापि भक्तों को सुख पहुँचाने के निमित्त रसमयी मधुर क्रीड़ा करनेके निमित्त वे अनेक बन जाते हैं और भक्तोंकी भावनानुसार उनके साथ वैसी ही क्रीड़ा करके उन्हें इच्छित वर देते हैं। भगवान् सबके हैं और सब की भावनानुसार वे रूप रख लेते हैं। स्वयं उनका न कोई नाम है न रूप है।

सूतजी कहते है—"मुनियो ! जब भगवान् कल्पवृक्ष लेकर द्वारका में आ गये, तब उन्होंने भौमासुर के यहाँ से आई हुई उन सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं की सुधि ली। तुरन्त उन्होंने विश्वकर्मा जी को बुलाया और उन्हे आज्ञा दी—"देखो,ये राजकन्यायें हैं, इन सबके लिये पृथक् पृथक् सोलह सहस्र एक सौ भवन बना दो। किन्तु इस बात का ध्यान रखना कि वे सब भवन एक से हों उनमें किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो। किसी को यह कहने का अवसर न मिले, कि हमारे साथ पक्षपात किया जाता है, उस का भवन सुन्दर है, हमारा तो ऐसे ही है। सब भवन समान हों, उनमें की सब सामग्री भी एक सी ही हो।"

यह सुनकर हाथ जोड़कर विश्वकर्माजी ने बात की बात में सबके लिये सुन्दर, सुखद, सुरम्य तथा सभी ऋतुओं मे अनुकूल भवन बना दिये। भगवान् ने सबको एक एक भवन दिया, उसमें जीवनोपयोगी सभी सामग्रियाँ थीं। सबमें सुन्दर उद्यान, सरोवर, क्रीड़ास्थल और विहार भवन थे। सभी में सैकड़ों दास दासी विद्यमान थे। सभी में पुष्प खिल रहे थे और सुन्दर सुन्दर पक्षी मधुर मधुर शब्दों से गुञ्जार कर रहे थे। ऐसे सुन्दर भवनों को पाकर वे सबकी सब परम प्रमुदित हुईं। अब तक तो वे सब भेड़ बकरियों की भाँति एक ही स्थान में रहकर दिन काट रहीं थीं। अब वे सबकी सब सुख पूर्वक रहने लगी।

भगवान् ने ज्योतिषियों से विवाह का शुभ मुहूर्त पूछा। ज्योतिषियों ने लग्न बताई उसी लग्न में एक ही समय भगवान् ने सबका पाणिग्रहण किया।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—'सूतजी ! एक ही साथ सोलह सहस्र एक सौ राजकुमारियोंके साथ भगवान्ने विवाह कैसे किया। एक ही मण्डपमें ये सब विवाह हुए या पृथक् पृथक् मण्डप बने।"

सूतजी बोले—"महाराज ! जितनी राजकुमारियाँ थीं, सबके घरों में पृथक् पृथक् विवाह मण्डप बने थे। सब भवनों में विवाह पढ़ने वाले पंडित भी पृथक थे। यही नहीं जितनी राजकुमारियाँ थीं, उतने ही रूप भगवान् ने रख लिये थे। इस प्रकार एक ही समय में भिन्न भिन्न रूप रखकर भगवान् ने उन्हें अपनाया, उन्हें अपनी धर्म पत्नी बनाया। ये सबकी सब लक्ष्मीजी के अंशों से ही उत्पन्न हुई थीं। श्रीलक्ष्मीदेवीजी ने ही ये सब इतने रूप रख लिये थे, भगवान् भी उतने ही रूप रखकर उनके साथ रमण करते।

यद्यपि भगवान् आत्माराम हैं,अपने ही आनन्दमें सदा निमग्न रहते हैं,फिर भी लोक लीला दिखाने के लिये उन राजकुमारियों के साथ प्राकृत पुरुषोंका सा व्यवहार करते हुए उन्हें सुख देते।

जिन अच्युत अखिलेश श्रीकृष्णचन्द्र को पाने के निमित्त ब्रह्मादिक देवगण तथा बड़े बड़े योगेश्वर सहस्रों वर्षों तक घोर तप करते हैं,फिर भी उनकी पदवी को नहीं पाते। उन्हीं प्रभुको पति रूप से पाकर वे परम भाग्यशालिनी राजकुमारियाँ फूली नहीं समाती थीं। उनकी निरन्तर यही चेष्टा बनी रहती कि हम अपनी सेवा सुश्रूषा और विनयके द्वारा वासुदेवको अपने वशमें कर लें। वे हमें ही सबसे अधिक प्यार करें। इसी लिये वे भगवान्की ओर निरन्तर अनुराग पूर्ण मन्द मन्द मुस्कान युक्त चितवन से ही निहारतीं। व्रीडा मिश्रित वाणीसे नवसंगमकी सरस सुखद वार्ताएँ

करतीं। अपना सर्वस्व समर्पित करके उनकी समस्त सेवाओं को स्वय ही करतीं। यद्यपि उनके यहाँ दास दासियोंकी कमी नहीं थी सहस्रो सुन्दर से सुन्दर सेवक थे। सुकुमारी से सुकुमारी सुन्दरी सेविकायें थीं। उन सबके रहते हुए भी वे श्यामसुन्दर की स्वयं ही सेवा करने में अपना सौभाग्य समझतीं।

भगवान् जब सुधर्मा सभा से पधारते तो उन्हें देखकर सहसा खड़ी हो जातीं। आगे बढ़कर उनका सुस्वागत करती। फिर अनुराग भरित हृदय से उन्हें विराजने को स्वय आसन देती। अपने हाथों से स्वयं सुगन्धित जलसे स्नान कराती, उनके अरुण वरुणके परम मृदुल चरण कमलों को स्वयं अपने सुन्दर सुकोमल करों से घोतीं। बालोंको सम्हारतीं। चन्दनादि लगातीं। सुन्दर स्वच्छ वस्त्रों को पहिनाती, उन्हें अपने हाथ से सुस्वादु विविध प्रकारके षडरस बनाकर भोजन करातीं। भोजन करा कर मुख शुद्धि के निमित्त पान इलायची आदि देतीं। सुन्दर सुखद शैया पर उन्हें सादर सुलातीं। उनके चरण तलोको शनैः शनैः सुहलाती। चरणों को दबातीं। स्वयं ही मोर की पङ्खों से बने पङ्खों से उनको वायु करतीं। सारांश यह है, कि उनकी जितनी भी सेवा वे कर सकती थीं स्वयं ही सब अपने हाथों से करती।

भगवान् सोलह सहस्र एक सौ आठ रूप रखकर सबके भवनोंमे पृथक पृथक निवास करते। अतः किसी को भी यह कहने का अवसर नहीं होता था, कि भगवान् हमारे यहाँ पधारते नहीं। सब यही समझती, भगवान् मुझसे ही सबसे अधिक प्यार करते हैं, जो मेरे भवनको छोड़कर अन्य किसी के यहाँ जाते ही नहीं। इसी कारण उन सबमें परस्परमें सौतिया डाह नहीं था। जब भगवान् सबके महलों में रहते, तब तो पृथक पृथक रूप रखकर रहते जब सभामें जाने लगते तब द्वार तक तो पृथक् पृथक् रूपोमें आते। जब द्वार तक पहुँचा कर सब स्त्रियाँ लौट जातीं, तो वे सब रूप

एक में मिल जाते और उसी रूपसे वे सभामें जाते । इस प्रकार सबको सन्तुष्ट करते हुए श्यामसुन्दर द्वारकामें रह कर गृहस्थ धर्म का अनुकरण करने लगे ।

शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! भगवान्‌के रानियाँ तो इतनी थी पुत्र कितने होंगे । इन सबके पुत्र हुए । अथवा ये सब भी गोपिकाओंके सदृश सदा कृशोदरी ही बनीं रहीं ।"

सूतजीने कहा—"नही महाराज ! सदा कृशोदरी क्यों बनी रहेंगी । जब उन्हें भगवान्‌ने विधिवत् पत्नी रूपसे ग्रहण किया, तो पत्नीका मुख्य फल तो पुत्रोत्पत्ति ही है । सत्य संकल्प अमोघवीर्य भगवान्‌की पत्नियाँ पुत्र हीन भला कैसे रह सकती हैं । सबके पुत्र हुए । जसे भगवान्‌ने भवन,भोग सामग्री,दास दासी आदि वस्तुएँ देनेमें किसीके साथ विषम व्यवहार नही किया उसी प्रकार पुत्र देनेमें भी उन्होंने विषमता नहीं की । किसीको चार पुत्र दे देते दश पुत्रियाँ दे देते और किसीको एक ही देते तो वे आपसमें बुरा मानती । इस लिये भगवान्‌ने ऐसी नौबत ही नहीं आने दी । जैसे जनवासेमें जो परोसा दिया जाता है, उसमें छोटे बड़े मोटे पतले का भेद भाव नही किया जाता । सबको समान रूपसे चार चार लड्डू और आठ आठ कचौड़ियाँ दी जाती हैं, उसी प्रकार भगवान् ने सबको दश दश लड़के और एक एक लड़की दी ।"

शौनकजीने कहा—"सूतजी ! भगवानके सब पुत्रों के हमें नाम सुनाइये ।"

यह सुनकर हंसते हुए सूतजो बोले—"महाराज ! आप तो ऐसा असंभव प्रश्नकर देते हैं । कथा सुनते सुनते ऊब गये क्या ? अब बताइये सबका नाम बताने लगूँ तो फिर नाम गिनानेमें ही रह जाऊँ । एक लाख इकसठ हजार अस्सी तो लड़के ही हुए और सोलह हजार एक सौ आठ लड़कियाँ । सबके नाम कहाँ तक गिनाऊँगा । आठ पटरानियोंके मुख्य मुख्य पुत्रोंके नाम आप

आज्ञा करें तो गिना भी दूँ ।"

यह सुन कर चौंक कर शौनकजी बोले—"हाँ सूतजी । एक बात तो हम भूल ही गये । आपने जो बताया था, भगवान् की सबसे बड़ी पटरानी श्रीरुक्मिणीजीके जो प्रद्युम्नजीका जन्म हुआ था और उसे सूतिका गृहसे ही वेष बदलकर शम्बरासुर हर ले गया था, उनका क्या हुआ । मछलीके उदरसे निकलने पर मायावतीके नामसे प्रसिद्ध रतिने उनका पालन किया था । अब तो वे बड़े हो गये होंगे, युवक बन गये होगे । वे द्वारका लौट कर आये या नहीं ? उनका विवाह हुआ या नहीं ? कृपा करके प्रथम भगवान्‌के सबसे ज्येष्ठ पुत्र श्रीप्रद्युम्नजीकी कथा सुनावें, तदनतर भगवान्‌के अन्य पुत्र पौत्रोंकी बात बतावें ।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज ! अब मैं आपसे प्रद्युम्नजीका ही शेष चरित्र कहता हूँ उसे आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें ।"

### छप्पय

पूछें शौनक-सूत ! व्याह हरि बहुत बताये ।
किन्तु पुत्र कं भये आपुने नाहिँ गिनाये ॥
हँसिके बोले सूत—कहाँ तक पूत गिनाऊँ ।
मुख्य मुख्य जे भये तिनहिँ के नाम बताऊँ ॥
शौनक बोले—'प्रथम तुम, श्रीप्रद्युम्न कहो कथा ।
शम्बरपुर मायावती, रतिने पाले वे यथा ॥

—★—

# प्रद्युम्नजी की कथा

( १११३ )

प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने।
मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥
स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत्।
अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्सञ्जनयन्कलिम् ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ५५ अ० १७ श्लो० )

### छप्पय

कहें-सूत सब सूद दयो शिशु रति कूँ मनहर।
निज पति कूँ पहिचान करे पालन छिपि भीतर ॥
भये युवक पति सरिस भाव लखि वे घबराये।
रतिने तब सब पूर्व जन्मके वृत्त बताये ॥
रति माया प्रद्युम्न कूँ, दीन्ही वे निर्भय भये।
इक दिन शम्बर तें स्वयं, बिना बात ही भिड़ि गये ॥

पूर्व जन्म संस्कार उदय होनेपर असंभवसी लगने वाली बात संभव हो जाती है। पाप पुण्यों में प्रवृत्ति पूर्वजन्मोंके संस्कारवश ही होती है। जैसे प्राणी जहाँ जहाँ भी जाता है, वहीं वहीं

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! मायावती ने प्रद्युम्नजी से इस प्रकार संभाषण करके उन्हें समस्त मायाओंको नष्ट करनेवाली महामाया नामक विद्या सिखा दी। तब प्रद्युम्नजीने शम्बरासुरके सम्मुख आकर नहीं सहन करने योग्य कटु वचनो से तिरस्कार करके, कलह के लिये उत्तेजित करते हुए युद्धके निमित्त उसे आह्वान किया।"

उसकी छाया भी साथ साथ जाती है उसी प्रकार जीव जिस योनि में जाता है उसके संस्कार तो उससे लिपटे ही रहते हैं। बिना भले बुरे संस्कारों के सम्बन्ध होता ही नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की सबसे बड़ी पटरानी के प्रद्युम्नजी का जन्म हुआ। शम्बरासुर उन्हें अपना शत्रु समझकर सूतिका गृहसे उठा ले जाकर उसने उन्हे समुद्र में फेंक दिया। वहाँ एक बड़ी मछलीने उन्हें निगल लिया। मछली मारने वालोंने वह मछली शम्बारासुर को दी। शम्बरासुरने अपने रसोइयोंको दे दी। उन्होंने उसके पेटको फाड़ा प्रद्युम्नजी निकले। उनको रसोइयों ने शम्बरके महल में रहने वाली मायावतीको दे दिया, जो पूर्व जन्ममें रति थी। उसने उनका पालन पोषण प्रेमपूर्वक किया। नारदजी आकर उसे बता गये "ये तेरे पूर्वजन्मके पति कामदेव हैं।" इसीलिये वह पतिभाव मनमें रखकर ही उनका पालन करती। इस प्रकार अन्तःपुर में रहते रहते वे सोलह वर्ष के हो गये।

पहिले तो वे बच्चे थे, कुछ समझते नहीं थे। अब तो युवक हो गये थे। स्त्रियोंकी चेष्टाओंको समझने लगे थे। उन्होंने अनेक बार अनुभव किया कि मेरी पालन करने वाली माताकी चेष्टायें अच्छी नहीं हैं। वह मुझसे पुत्रवत व्यवहार न करके कामभावसे व्यवहार करती है। इससे उन्हें बड़ी लज्जा भी आई और अत्यंत ही आश्चर्य भी हुआ।

एक दिन जब वह अत्यंत ही अनुराग भरित हृदय से रति सम्बन्धी हाव भाव कटाक्षों द्वारा सतृष्ण नयनोंसे अतृप्ताकी भाँति उन्हें निहार रही थी, तब वासुदेवनन्दन भगवान् प्रद्युम्नजी ने उनसे कहा—"माताजी! मैं देखता हूँ आपकी बुद्धि कुछ विपरीत सी हो गयी है। आपके भावोंमें विचित्र परिवर्तनसा प्रतीत होने लगा है। तभी तो आप मातृभावको परित्याग करके मेरे साथ

कामिनीके समान व्यवहार करने लगी है। ऐसा आचरण गर्ह्य है। सर्वथा निन्दनीय है। आपको मेरे साथ ऐसा व्यवहार करना शोभा नहीं देता।"

यह सुनकर लजाती हुई मायावती बोली—"प्रभो ! मैं आपकी माता नही। न यह शम्बर आपका पिता ही है। आप तो वासुदेवनन्दन हैं। स्वयं श्रीमन्नारायण के तनय है। भाग्यवती रुक्मिणीदेवी ने आपको प्रसव किया है।"

यह सुनकर आश्चर्यचकित होकर प्रद्युम्नजी कहने लगे—"तब द्वारकासे मैं यहाँ कैसे आ गया ? आपने मेरा पालन कैसे किया ? आप कौन है ? मेरे इन सभी प्रश्नोंका उत्तर दीजिये।"

यह सुनकर मायावती कहने लगी—"देखिये, आपका जन्म द्वारकापुरीके अन्तःपुरमें परम भाग्यवती रुक्मिणीदेवीजी के गर्भ से हुआ था। जब आप दश दिनके भी नहीं हुए थे, तभी सूतिका घरसे यह पापी शम्बरासुर आपको हर लाया था। इसने आपको समुद्रमें फेंक दिया था, एक मछली आपको निगल गई। वह दैवयोग से यहाँ आ गयी। उसी के उदर से आप निकले।"

इस पर प्रद्युम्नजी ने पूछा—"अच्छा, तो फिर तुम कौन हो।" मायावतीने कहा—"महाराज ! मै आपकी पूर्वजन्म की पत्नी हूँ। आप पूर्व जन्म में कामदेव थे, मैं रति थी। आपकी प्रतीक्षा में ही मैं यहाँ शम्बरासुर के यहाँ दिन काट रही थी। अब आप अपने इस प्रवल शत्रु शम्बरासुर को मार डालिये।"

प्रद्युम्नजी ने कहा—"तो मैं इसे कैसे मारूँ ? इससे द्वन्द युद्ध करूँ ?"

भयभीत होकर मायावती ने कहा—"नही, महाराज ! ऐसा आप कभी न करें। यह असुर बड़ा दुर्दम्य और दुर्जय है। युद्ध में तो इसे कोई परास्त कर ही नही सकता। यह बड़ा मायावी

है। सहस्रों प्रकार की मायाओंको यह जानता है। यह साधारण मायाओं से भी नहीं जीता जा सकता है। वह महामाया स्त्री के अतिरिक्त कहीं रहती नहीं। उसे आप मुझसे सीख लें, तो उसी के द्वारा आप इसे पछाड़ सकते हैं। अन्यथा युद्ध करके तो आप सौ वर्षों में भी इसे नहीं जीत सकते। इसे मार कर मुझे लेकर आप अपने पुर को पधारिये। आपकी पुत्रस्नेहाकुलामाता आपके विरह में निरन्तर कुररी की भाँति दीन होकर विलाप करती रहती है। बछड़े के नष्ट हो जाने पर गौ बिलबिलाती रहती है, उसी प्रकार आपके खो जाने से आपकी माता बिलबिला रही है। चलकर उसे धैर्य बँधाइये। मुझे प्रेम प्रदान कीजिये। यह सब होगा तभी जब आप इस अपने प्रबल शत्रु को माया द्वारा मार देंगे।"

प्रद्युम्नजीने कहा—"अच्छी बात है, उस महामायाकी दीक्षा तुम मुझे दे दो। तुम्हारी सम्मति और सहायता से ही मैं इस असुर का अन्त कर सकता हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रद्युम्नजी के सहमत होने पर मायावतीदेवी ने उन्हें सब मायाओंको व्यर्थ बना देनेवाली महामाया नाम की विद्या दी। अब क्या था अब प्रद्युम्नजी निर्भय हो गये।

शम्बरासुर तो निश्चिन्त था, उसे विश्वास था, मृत्यु तो कृष्णतनय प्रद्युम्नके द्वारा बदी थी.उसे मैंने अपने पुरुषार्थसे नष्ट ही कर दिया। अब मैं मृत्युजित हो गया। अब मुझे कोई मार ही नहीं सकता वह यह नहीं जानता था, कि मायावती जिस अत्यंत सुन्दर बालक का मेरे ही अन्तःपुर में पालन पोषण कर रही है वही मुझे मारने वाला पुरुष प्रद्युम्न है।

प्रद्युम्नजी इतने सुन्दर थे, कि उन्हें जो भी देख लेता वही विमोहित हो जाता। शम्बरासुर भी उन्हें देखता और वह भी

उनसे प्रेम करता। एक दिन वे शम्बरासुर के समीप गये। वे उसे कुपित करके उससे लड़ना चाहते थे। क्रोध उत्पन्न कराने में क्या लगता है। किसी को दो गाली दे दे। उसकी झूठी सच्ची निन्दा कर दो। मर्ममें चुभने वाली दो कड़ी बातें कह दो, कितना भी शांत पुरुष क्यों न हो उसे भी क्रोध आ ही जायगा। फिर तामस प्रकृति वालों का तो कहना ही क्या है। जाते ही उन्होंने कहा—"क्यों वे पापी असुर! तू बड़ा नीच है। बड़ा कामी और क्रूर है। तैंने मेरी स्त्री को अपने घर में क्यों रख लिया है।" इतना सुनतेही शम्बरासुर का क्रोध आ गया। उसने कहा—"चल हट, निर्लज्ज कहीं का। अपनी माता को पत्नी कहने में तुझे लज्जा नहीं आती। तू जानता नहीं मैं कौन हूँ अभी तेरी इस चबर चबर चलने वाली जिह्वाको गरम लोहे की सडासीसे पकड़वाकर बाहर खिंचवा सकता हूँ। तुझे जीवित ही पृथिवी में गड़वाकर कुत्तोंसे नुचवा सकता हूँ। तेरे जीवित शरीरसे खाल खिंचवाकर उसमें भुस भरवा सकता हूँ। अरे, अबोध तू मेरी शक्ति को जानता नहीं। मैं राजराजेश्वर हूँ। अजर अमर हूँ समर में मुझे समस्त सुरगण भी नहीं जीत सकते।"

यह सुनकर क्रोध में भरकर प्रद्युम्नजी बोले—"अरे, मृत्युके खिलौने! क्यों बढ़ बढ़कर बातें बना रहा है? क्यों व्यर्थ की डींग हाँक रहा है। देवताओं की बात ही पृथक् रही, तू मुझसे ही आ युद्ध करले। मैं ही तुझे दाल आटे का भाव बता सकता हूँ, मैं ही तुझे यमसदन पठा सकता हूँ। मैं ही तेरी चौकड़ी भुला सकता हूँ। तेरे लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ। तुझे विश्वास न हो तो आ जा मेरे तेरे दो दो हाथ हो जायँ।"

हाथ में खड्ग लेकर उछलकर शम्बरासुर ने कहा—"अच्छा आ जा। मैं तुझे अभी तेरी अशिष्टता का फल चखाता हूँ.

प्रद्युम्नजी ने भी उछलकर कहा—"अच्छा आ जा।'

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! वासुदेवनन्दन भगवान् प्रद्युम्नजीके ऐसे कठोर तथा असह्य वचन सुनकर वह असुर पादप्रहारसे कुपित हुए सपंके समान क्रोधमें भरकर लाल लाल नेत्र किये हाथमें गदा लिये हुए अपने आसनसे उठकर प्रद्युम्नजीसे लड़ने आया। इधर प्रद्युम्नजी भी सावधान थे। आते ही उसने दाँतोंसे ओठको काटते हुए किचकिचाकर सम्पूर्ण बल लगाकर कई बार बड़े वेगसे अपनी गदाको घुमाकर उसे प्रद्युम्नजी के ऊपर छोड़ ही तो दिया। फिर बड़े वेग से बिजली के सदृश कड़ककर बोला—'यह मारा यह मारा।'

प्रद्युम्नजी तो सावधान ही थे, उन्होंने जब असुरकी अग्निके समान जाज्वल्यमान गदाको अपनी ओर आते देखा तो उन्होंने अपनी गदा के वेग से उसे व्यर्थ बना दिया उसके टुकड़े टुकड़ेकर दिये। गदाको व्यर्थ बनाकर उन्होंने अपनी गदा असुरके ऊपर छोड़ी। वह दैत्य तो मायावी था। मयासुरका यह शिष्य था, अतः अपनी आसुरी माया के प्रभाव से वह आकाश में उड़ गया और वहीसे प्रद्युम्नजीके ऊपर अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा। बड़े बड़े अस्त्रों के गोलोंको वह फेंकता जो नीचे आते ही फट जाते और उनमें से असंख्यों अस्त्र निकल पड़ते। प्रद्युम्नजी ने देखा, मैं इस मायावीकी माया को अपने बल पौरुष से व्यर्थ नहीं बना सकता, अतः उन्होंने मायावती की सिखायी उसी सर्व मायाओंको शान्त करने वाली सत्वमयी महामायाका प्रयोग किया। उस माया के प्रयोग को देखकर शम्बरासुर अत्यंत ही भयभीत हुआ। वह यक्षोंकी, राक्षसों पिशाचों सर्पों गन्धर्वों तथा असुरोंकी असंख्यों मायाओं को जानता था, उन सबका उसने प्रयोग किया, किन्तु प्रद्युम्नजी की मायावतीदत्ता महामाया के सम्मुख किसीकी कुछ भी न चली। वे सबकी सब व्यर्थ बन गयी। तब तो असुर थर थर काँपने लगा। उसी अवसरपर प्रद्युम्नजीने एक

तीक्ष्ण खड्ग निकालकर शम्बरासुर के किरीटकुण्डल मंडित लाल लाल कड़ी दाढ़ी मूँछ वाले सिरको धड़से पृथक्कर दिया। उसके मरते ही समस्त असुर हाय हाय करके रुदन करने लगे। देवता आकाश से पुष्प बरसाने लगे। अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रद्युम्नजी अपनी प्रिया मायावतीजी के समीप आये और उससे बोले—"चलो चलें, अब अपनी द्वारकापुरी में चलकर माता पिता के दर्शन करें।"

यह सुनकर मायावती अत्यंत प्रसन्न हुई। वह सोलह शृंगार करके सज बजकर प्रद्युम्नजी के साथ द्वारका चलनेको उद्यत हो गई।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार पापी शम्बरासुरको मारकर अपनी पूर्वजन्मकी प्रियाको साथ लेकर प्रद्युम्नजी आकाश मार्ग से अपनी प्रिया के साथ उड़कर द्वारकापुरीकी ओर चले। अब द्वारका में जिस प्रकार उनके पहुँचने पर हर्ष प्रकट किया जायगा। उस कथा प्रसङ्गको आगे कहूँगा।"

### छप्पय

कहा सुनी कछु भई युद्धकी नौबत आयी।
ह्वै कें दोऊ कुपित परस्पर गदा चलायी॥
पुनि मायातें लड़े असुर नभ गयो उड़ाई।
माया कीन्हीं बहुत श्याम सुतकूँ सुधि आई॥
सत्वमयी माया महा, छोड़ी शम्बर मर गयो।
असुर सकल दुःखित भये, सुरगन हिय अति सुख भयो॥

—※—

# प्रद्युम्नजी के आनेसे द्वारका में आनन्द

( ११११४ )

यं वै मुहुः पितृसरूप निजेशभावा—
स्तन्मातरा यदभजन् रहरूढभावाः ।
चित्रं न तत्खलु रमास्पदं विम्बविम्बे-
कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥*
( श्रीभा० १० स्क० ५५ अ० ४० श्लो० )

छप्पय

मायावति लै संग चले प्रद्युम्न मुदित मन ।
शोभित नभ महँ मनहु दामिनी दमकति सहघन ॥
पहुँचि द्वारका गये भवन रानी सकुचायीं ।
कृष्ण सरिस नर निरखि कामवश भई लजायीं ॥
तब आये घनश्याम तहँ, नारदतें सब जानिकें ।
भई सुखी अति रुक्मिनी, निज सुतकूँ पहिचानि कैं ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! प्रद्युम्नजीकी रुक्मिणी आदि माताये श्रीकृष्णके ही समान उनके रूपको बार बार देखकर उनमें पति-भाव करने लगीं । वेमधुरभावमें मग्न एकान्तमें चली गयी थी । जो स्मरण मात्रसे ही मनमें क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं, उन कामदेवावतार, भगवान् के प्रतिबिम्ब स्वरूप प्रद्युम्नजीके आँखों के सम्मुख हो जानेपर ऐसे भाव उदय हो जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । जब माताओंके मनमें ऐसे भाव उदय हो गये तो अन्य स्त्रियों के विषय में तो कहना ही क्या ।"

कभी कभी असंभव आशा भी संभव हो जाती है। जिनकी हम आशा खो चुके है, जिनके लिये हृदयके कोनेमें कही क्षीण सी आशा है, वे यदि कही सहसा आ जायँ, तो प्रथम तो विश्वास ही न होगा। यदि कोई विश्वास करादे, तो उन्हें पाकर कितनी प्रसन्नता होगी उसे शब्दों द्वारा व्यक्त करना असंभव है। जो वस्तु सुगमता से बिना श्रमके स्वत: प्राप्त है उसकी प्राप्तिमें उतनी प्रसन्नता नहीं होती,चिरकालकी प्रतीक्षाके अनन्तर जो वस्तु प्राप्त होती है उसकी प्राप्ति में अवर्णनीय सुख होता है। किसी का पुत्र परदेश चला गया है कह गया है महीने भरमे लौट आऊँगा। महीने भर में वह लौट आता कोई विशेष बात नही। किन्तु जितना ही उसके आने में विलम्ब होता है, जितनी ही अधिक उसकी प्रतिक्षा की जाती है। उतना ही उत्कण्ठा बढ़ती है, जितनी अधिक उत्कण्ठा बढ़ती है उतना ही आनन्द आता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! वासुदेवनन्दन महात्मा प्रद्युम्न जी शम्बरासुर को मारकर और अपनी पूर्वजन्म की भार्या मायावती को साथ लेकर आकाश मार्ग से द्वारकाजी में आये। वस्त्राभूषणों से सजी सजाई अपनी गौरवर्ण की भार्या के साथ वे श्याम वर्ण वाले प्रद्युम्नजी ऐसे लगते थे मानों आकाश में नूतन जलधर से लिपटी बिजली चमक रही हो। वे आकाश से सीधे ही आकर अपनी माता रुक्मिणीजी के विशाल आंगन मे उतरे। उस समय रुक्मिणीजी सभी रानियोंके सहित बैठी थीं। भगवान् राजसभामें गये हुए थे। अकस्मात् प्रद्युम्नजीको देखकर वे सबकी सब रानियाँ सहम गईं। उन्होंने शीघ्रता के साथ अपने अपने आंचल सम्हारे तनिक सा घूँघट मार लिया। प्रद्युम्नजीका जलभरे नूतन मेघके सदृश सुन्दरश्याम वर्ण था। वे भी भगवान् के सदृश चमकीला,पतला रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनके भुजायें विशाल थीं। कमल के सदृश विकसित अरुण वरण के उनके

विशाल आकर्षक नेत्र थे। उनके मुखारविन्द पर भी मंद मंद मनोहर मुसकान छिटक रही थी। उनकी काली काली घुंघराली अलकावली, बिथुर कर झुककर झूम कर मानों कपोलों को चूम रहा हों। उनकी भौंहें कुटिल और धनुषाकार थी। इन सब लक्षणोंसे युक्त होनेसे अन्तःपुरकी समस्त रानियोंने प्रथम तो उन्हें श्रीकृष्ण ही समझा। इसी लिये संभ्रमके साथ घूँघट मार कर
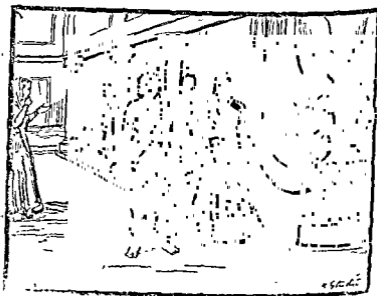
इधर उधर लुकने छिपने लगीं। बड़ी बहिनों के सम्मुख छोटी बहिनें अपने पतियो से लजाती हैं, बातें नहीं करती हैं इसी लिये भगवान् की अन्य पत्नियाँ इधर उधर भागने लगीं। रुक्मिणीजी तो सबसे बड़ी थीं। अतः वे नहीं भागीं। उन्होंने तो समझ लिया ये श्रीकृष्ण नहीं हैं। अतः हँसती हुई बोली—"अरी, तुम कैसी लुगाई हो जो अपने पति को भी नहीं पहिचान सकती। ये वे नहीं

हैं। ये तो कोई और ही पुरुषरत्न है।" इतना सुनते ही सब रानियाँ लज्जित होकर पुनः लौट आई। उन्होंने देखा एक किशोरावस्थापन्न कुमार एक अत्यंत ही सुन्दरी स्त्री के साथ निर्भय होकर वहाँ खड़ा है। सब सोच रहीं थी—"इसकी चाल ढाल, उठन बैठन सब भगवान् के सदृश है। इसने भगवान् के ही समान सुन्दर आकृति कसे पा ली।"

सूतजी कहते है—"मुनियो! रक्त का बड़ा प्रभाव होता है। जिसने अपना परस्पर में रक्तका सम्बन्ध होता है जैसे माता, पिता, भाई बहिन तथा पुत्र पुत्री आदि उन्हें देखकर हृदय स्वः भर आता है। चाहें उनसे किसी कारण वश परिचय न भी हो, तो भी हृदयमें उन्हें देखते ही एक विचित्र भाव उत्पन्न हो जाता है। इसीलिये रुक्मिणीजी प्रद्युम्नजी को देखते ही पुत्र स्नेह में भीग गईं। उन्हें सूतिकागृह से अपने खोये हुए पुत्र की स्मृति हो आई। वे सोचने लगी—"देखो, मेरे भी एक पुत्र हुआ था, उसकी मुखाकृति भी ऐसी ही थी। न जाने कौन उसे सूतिका घरसे चुरा ले गया। यदि भाग्यवश वह कही जीवित हो, तो इतना ही बड़ा हो गया होगा। यह कौन है, किसका पुत्र है, किसी परम भाग्य शालिनी माताकी कोखको इसने कृतार्थ किया है। इसे यह इतनी सुन्दरी स्त्री कहाँ से मिली है। मुझे तो इस बात पर अत्यधिक आश्चर्य हो रहा है, कि इसे श्रीकृष्ण की सदृशता कैसे प्राप्त हो गया। इसकी आकृति अच्युत की आकृति से सर्वथा मिलती है। उन्ही के समान इसकी चाल ढाल और बोल चाल भी है। उनके ही समान यह हँसता है, इसके समस्त अङ्गों की गठन भी श्याम-सुन्दर के समान ही है। रंगमें, रूपमें, स्वभावमें, व्यवहार, उठनमें बैठनमें, चलनमें, चितवनमें, तथा सभी बातों में ही तो यह घन-श्याम के समान है। कहीं यह मेरा वही बालक तो नही है। प्रारब्धवश वही तो बड़ा होकर मेरे नयनों को सुख पहुँचाने के

लिये कहीं यहाँ नहीं आगया है ? यदि ऐसी बात न होती, तो इसके प्रति मेरे मन मे सहज स्वाभाविक वात्सल्य स्नेह क्यों उत्पन्न हो जाता । मेरी बायीं आँख तथा बायें भुजा भी फड़क रही है । इन सब शुभ सूचक शकुनों से तो यही सिद्ध होता है, कि आज मुझे अपने अत्यंत स्नेही के मिलन का सुख प्राप्त होगा ।"

प्रद्युम्नजी को देख देखकर भगवती रुक्मिणी ये सब बातें सोच ही रही थीं, कि सहसा वहाँ वसुदेवजी और देवकीके सहित भगवान् वासुदेव आ पहुँचे । सर्वज्ञ भगवान्से तो कोई बात छिपी ही नही रह सकती, वे तो सब कुछ जानते थे, अतः उन्होंने भी आकर कुछ नहीं कहा। वे भी आश्चर्य चकित दृष्टिसे प्रद्युम्नजी की ओर देखकर कहने लगे—"यह लड़का कौन है ? कहाँ से आया ?" सब चुप थे । जब भगवान् भी नही जानते तो न जाने यह कौन है । सब यही सोचने लगे । प्रद्युम्नजी कुछ कहते नहीं थे,वे नीचा सिर किये हुए खड़े थे । उसी समय वीणा बजाते हरि गुण गाते नारदजी वहाँ आ पहुँचे । नारदजी को देखते ही भगवान् खिल उठे और बोले—"आइये नारदजी, आइये, आइये ।"

नारदजी ने कहा—"आये महाराज ! आज कैसे सब परिवार एकत्रित हो रहा है । किस कारण आप इतने विस्मित हो रहे हैं ?"

भगवान् ने कहा—"नारदजी ! न जाने कहाँ से यह लड़का एक स्त्री को लिये हुए यहाँ आ गया है । इसे ही देखकर सब विस्मित हो रहे है । इससे इनका परिचय पूछते हैं, तो कुछ बताता नहीं ।

यह सुनकर नारदजी ने कहा—"महाराज ! क्यों ऐसा नर नाट्य कर रहे हो ? क्यों सबको भुलावे में डाल रहे हो ? आप इन्हें पहिचानते नहीं । ये तो आपके प्रथम पुत्र श्री प्रद्युम्नजी हैं । शम्बरासुर इन्हें हर ले गया था, इसे मार कर और अपनी पूर्व

जन्मकी पत्नीको लेकर के ये आपके चरणों में उपस्थित हुए है।" यह कह कर नारदजी प्रद्युम्नजीसे बोले—"तुम भैया ! अपने माता पिता दादी दादा तथा अन्यान्य माताओंको प्रणाम क्यों नहीं करते ?"

इतना सुनते ही प्रद्युम्नजी ने अपनी नव वधू युक्त वसुदेवजी, देवकीजी, बलरामजी भगवान्. रुक्मिणीजी तथा अन्यान्य माताओंके चरणोंमें प्रणामकिया। सभीने प्रद्युम्नजीको हृदयसे लगाकर उन्हें प्यार किया, अनेकों आशीर्वाद दिये। जैसे कोई मृतक सुहृद पुन: लौट आवे उसे देख कर जैसे सम्बन्धियोंको सुख होता है उससे भी अधिक सुख सब लोगोंको हुआ। जब सब पुरवासियोंने वृत्तान्त सुना कि खोये हुये प्रद्युम्नजी बडे होकरवहू लेकर पुनः द्वारकापुरीमें लौट आये है, तो वे सब बड़ा आनन्द मनाने लगे। प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहने लगे—"देखो, प्रारब्धके सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं जा सकता। हम सब तो समझते थे, बालक नष्ट हो गया होगा, किन्तु यह तो पुनः लौट आया। सत्य है जिसको भगवान् रक्षा करते हैं उसे मार ही कौन सकता है।"

इस प्रकार सम्पूर्ण नगर निवासी प्रद्युम्नजीको देखने आते वे उनके मनोहर रूपको देख कर मुग्ध हो जाते। उन्हें देखते २ नर नारियोंके नयन तृप्त नहीं होते थे। वे तो साक्षात् कामदेवके अवतार ही थे। जब उनके माताओंका मन उन्हे देखकर चंचल हो उठा, तो अन्य स्त्रियोंके सम्बध मे तो कहना ही क्या सम्पूर्ण नगर में प्रद्युम्नजीके आने पर फिर वैसा ही उत्सव मनाया गया, मानो आज फिर उनका द्वितीय जन्म हुआ है। रुक्मिणीजी अपने प्यारे पुत्रको पाकर परम प्रमुदित हुईं। उनके स्तनोंसे स्वतः ही दूध बहने लगा। उन्होंने प्रद्युम्नजीको हृदयसे लगा कर प्रेमाश्रुओंमे और स्तनके दूधसे उन्हें निहला दिया मानों उनका अभिषेक कर रही हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह मैंने श्रीरुक्मिणीजीके प्रथम पुत्रकी कथा कही अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?'

शौनकजीने कहा—"सूतजी ! सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियोंके पुत्रोंके नाम न बताओ तो आठ पट रानियों के मुख्य मुख्य पुत्रोंका तो हमें आप नाम बता ही दें।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज ! अब मैं आपको आठ पटरानियोंके पुत्रोंके ही नाम बताता हूँ।"

### छप्पय

पहिचाने वसुदेव, देवकी, बल हरि सबने।
वन्दन सबको करयो वधू सँग हरि नंदनने ॥
छाती तैं चिपटाइ नेह सबने दरसायो।
मृतक सरिस सुत पाइ हियो सबको हुलसायो ॥
वैदर्भीके प्रथम सुत, श्री प्रद्युम्न कथा कही।
अब आठनिके सुतनिकी, सुनो कथा जो बचि रही ॥

०-✱-०

# आठ पटरानियोंकी सन्तति और प्रद्युम्न विवाह

( ११११५ )

ता सां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ।
अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥*
( श्रीभा० १० स्क० ६१ अ० ७ श्लोक )

छप्पय

वैदर्भीके पुत्र भये प्रद्युम्न आदि दश ।
सतभामाने भानु आदि जनि पायो जग यश ॥
जाम्बवतीने साम्ब सुमित्रादिक सुत जाये ।
नाग्नजितीके वीर, चन्द्र, वसु आदि सुहाये ॥
श्रीकालिन्दीके भये, श्रुतकवि आदिक तनय दश ।
जनि प्रघोष आदिक तनय, लह्यो लक्ष्मणाने सुयश ॥

स्थान की संकीर्णता न हो, सुन्दर सुविस्तृत स्वच्छ सुखकर भवन हो । धन का अभाव न हो, जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्रचुर-मात्रा में हों, लालन पालन की चिन्ता न हो, ऐसे भाग्यशाली

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! सभी श्रीकृष्णचन्द्र की पत्नियों मे दश दश पुत्र हुए । उनमे जो जो आठ पटरानियां हैं, जिनका वर्णन मैं पीछे कर चुका हूँ उनके प्रद्युम्न पुत्रो का विवरण मैं तुम्हारे सामने सुनाता हूँ ।"

भवनो में बहुत से सुन्दर सुन्दर बालक विहरें क्रीड़ा करें, इधरसे उधर किलकारी मारते हुए घूमें, यही पृथिवी पर ही स्वर्ग है। सुन्दर स्वच्छ कपड़े पहिने छोटे छोटे बच्चे अपनी बाल सुलभ चंचलतावश क्रीड़ा करते हुए बड़े ही भले मालूम होते हैं। यह प्राणी क्रीडा प्रिय है, इसे खिलौने चाहिये, जिससे यह खेलता रहे। छोटे छोटे लडके घरुआपाती गेंद गुल्ली डंडा से खेलते है। लड़कियाँ गुड्डी गुड्डोंसे खेलती है। बड़े होने पर उन दोनोंके खिलौने बच्चे हो जाते है। बच्चों को काजर लगाकर, गोटादार सुन्दर चमकने वस्त्र पहिनाकर माता पिता बड़े प्रसन्न होते हैं। उन्हीं के साथ खेलकर अपने को भाग्यशाली समझते हैं। दरिद्री के घर बहु सन्तान होना दारिद्रका चिह्न है, किन्तु सम्पत्तिवानों के बहु सन्तति होना यह तो बड़े भाग्य की बात है। जिनके लाखों पुत्र हों वे तो समस्त ऐश्वर्य, वल,यश,श्री, ज्ञान और वैराग्यके स्वामी ही होते है। उन्हीमें सभव है। सम्पूर्ण विश्व के ही वे पिता हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों ! सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियों के पुत्रों के नाम बताने में कोई लाभ नही, उनमे कोई विशेष प्रसिद्ध भी नहीं। अतः समय के संकोच से सब श्रीकृष्ण पुत्रों के नाम गिनाने मे मैं असमर्थ हूँ। हाँ, कथा प्रसङ्गको पूर्ण करने के निमित्त भगवान् की जो आठ प्रधान पटरानियाँ हैं,उनके दश दश पुत्रोंके नाम मैं आपको गिनावे देता हूँ। अच्छा सर्वप्रथम विदर्भनन्दिनी भगवती रुक्मिणीजी के ही पुत्रो के नाम श्रवण कीजिये। प्रद्युम्नजी तो उनके सबसे ज्येष्ठ श्रेष्ठ सुत थे ही उनके अतिरिक्त चारुदेष्ण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और चारु ये नौ पुत्र थे। इस प्रकार प्रद्युम्नजी के सहित ये दश भाई थे। ये सबके सब बड़े पराक्रमी और वीर्यशाली थे। चारुमती नामकी एक कन्या थी, जिसका विवाह कृतवर्मा के पुत्र वली के साथ हुआ था। इस लिये कृतवर्मा भगवान् के समधी थे। इस

प्रकार सबके दश दश पुत्र हुए। ये सबके सब बलवीर्य में अपने पिता के ही समान थे।

सत्राजित् की तनया सत्यभामाजी के भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु, और प्रतिभानु ये दश पुत्र थे।

जाम्बवान् की पुत्री जाम्बवती से साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविण और क्रतु ये दश पुत्र थे। ये अपने पिता भगवान् कृष्ण के ही समान पराक्रमी और युद्ध प्रिय थे। इनमें साम्ब इतने सुन्दर थे, कि इन्हें देखकर स्वर्ग की अप्सरायें भी मोहित हो जाती। इनके ही कारण यदुकुल का संहार हुआ। इनके अंग प्रत्यंग स्त्रियों के समान आकर्षक और कोमल थे।

महाराज नग्नजित् की कन्या नग्नजिती के वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगुप्त, वेगवान्, वृष, आम, शकु, वसु, और तेजस्वी कुन्ती ये दश पुत्र हुए। इसी प्रकार सूर्यतनया कालिन्दी के भी परमप्रसिद्ध दश पुत्र हुए। जिनके श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्रएकल, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सोमक ये नाम थे।

मद्रदेश के राजा की पुत्री माद्री लक्ष्मणा के भी प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित ये दश महावीर्यमान् पुत्र हुए।

अष्टम पत्नी भद्रा के भी संग्रामजित् बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक ये पुत्र थे। इन आठ रानियों के अतिरिक्त जो रोहणी प्रमुखा सोलह सहस्र एक सौ और रानियाँ थीं, उन सबके भी दश दश पुत्र हुए। उनमें दीप्तिमान्, ताम्रतप्त रोहिणीजी के पुत्र अति प्रसिद्ध थे।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी आपने भगवान् के कुछ पुत्रों के नाम तो गिना दिये। इन सबके विवाह कहाँ हुए?"

हँसकर सूतजी बोले—'अजी, महाराज ! क्षत्रिय कुमार के लिये विवाह की चिन्ता नहीं रहती । कोई प्रसन्नता से कन्या न दे तो छीन झपटकर ले आते हैं। उन दिनों तो अपने अनुराग रखने वाली कन्या को राक्षस विधि से हरण कर लाना एक वीरता की बात समझी जाती थी । जैसे घर के बड़े लोग करते हैं उसाका अनुकरण बच्चे भी किया करते हैं । भगवान् ने कन्या हरण का मार्ग दिखा ही दिया था, अतः ये सबके सब राजकुमार ऐसे ही स्वयम्वरों में से कन्याओं को ले आते थे । ये सबके सब कुलीन सुन्दर, बलवान् तथा धनुर्वेदविशारद तो थे ही । इन सबके लिये कन्याओं का घाटा थोड़े ही था ।

शौनकजी बोले—"सूतजी ! भगवान् के प्रथम पुत्र प्रद्युम्नजी का विवाह उस मायावती से ही हुआ, या उनकी और भी कोई पत्नी थी ?"

सूतजी बोले—"भगवन् ! मायावती तो पूर्वजन्म की पत्नी थी । प्रद्युम्नजी का विवाह तो उनके मामा रुक्मी की लड़की रुक्मवती के साथ हुआ ।"

यह सुनकर चौंककर शौनकजी बोले—"सूतजी ! रुक्मी तो भगवान् से द्वेष मानता था, उसने अपनी पुत्री का विवाह प्रद्युम्नजी के साथ क्यों किया ?"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! तुम इन गृहस्थियों की बात जानते नहीं । ये पचास बार लड़ते हैं, पचास बार फिर एक होते हैं । जिससे अपना सम्बन्ध हो गया है, उनसे कैसी भी लड़ाई हो, वे सम्बन्धी तो हैं ही । यद्यपि रुक्मी का मन शुद्ध नहीं हुआ था । रुक्मिणीजी के हरण के समय उसने प्रतिज्ञा की थी—' जब तक मैं श्रीकृष्ण को हराकर अपनी बहिन रुक्मिणीको न छुड़ा लाऊँगा, तब तक अपने नगर कुण्डिनपुर में प्रवेश न करूँगा । भगवान् को हराना तो पृथक् रहा उसे प्राण बचाने ही

कठिन हो गये। इसलिये वह लज्जा के कारण कण्डिनपुर न गया, अपना एक पृथक् 'भोजकट' नामक नगर बसाकर रहता था। जब जब भी उसे कुण्डिनपुर जाने की इच्छा होती, तब तब ही उसे श्रीकृष्ण द्वारा अपने किये हुए अपमानकी स्मृति हो उठती। इसलिये वह उस बैरको भूला नही था। रुक्मिणीजी भातृ-स्नेहवश भोजकट आती जाती रहती। जब उनके भाई रुक्मीकी कन्या रुक्मवती बड़ी हुई तो इन्होंने रुक्मी से कहा—"भैया! इसे तो तू मुझे प्रद्युम्न के लिये दे दो।" रुक्मी नहीं चाहता था, कि यादवोंसे फिर नया सम्बन्ध और जोड़ा जाय, किन्तु बहिनसे स्पष्ट मना भी नही कर सकता था। अतः उसने कहा—"बहिन! मैंने तो अपनी लड़की का स्वयम्वर करने का निश्चय किया है, स्वयंवर में वह जिसे भी वरण कर ले, उसी के साथ मैं इसका विवाह कर दूँगा। यह तो घरकी बात थी, रुक्मिणीजीने रुक्मवती को भली भाँति समझा दिया। प्रद्युम्नजी सुन्दर भी बहुत थे। साक्षात् कामदेव के अवतार ही थे, अतः रुक्मवती ने यह बात स्वीकार कर ली।

रुक्मी ने स्वयवर की बड़ी भारी तैयारियाँ कीं, सभी देशोंके राजा राजपुत्र उस स्वयंवर में आये थे। यहाँ तो मिली भगत थी रुक्मवती जयमाला लेकर आयी। उसने और राजकुमारोंकी ओर देखा भी नहीं आते ही प्रद्युम्नजीके कण्ठमें जयमाला पहिना दी। इससे सभी राजा अत्यंत ही कुपित हुए। वे सोचने लगे— "रुक्मी को अपने भानजे के साथ ही विवाह करना था, तो हम

सबको यहाँ बुलाकर अपमान क्यों किया। सब मिलकर इससे कन्याको छीन लो।" ऐसा निश्चय करके वे सबके सब प्रद्युम्नजी से लड़नेको उद्यत हो गये। प्रद्युम्नजी तो महारथी थे, भगवान्के प्रथम पुत्र थे। इसलिये वे तनिक भी विचलित न हुए उन सब राजाओंसे अकेले ही लड़ते रहे। अन्तमें उन सब एकत्रित हुए राजाओंको युद्धमें अकेले ही परास्त करके रुक्मवती को ले गये।

यद्यपि रुक्मी द्वेषवश द्वारका नहीं जाता था सदा श्रीकृष्ण को मार डालनेका ही अवसर खोजता रहता था, फिर भी अपनी बहिनका प्रिय करने के लिये उसने द्वारका में आकर अपनी पुत्री का विवाह अपने भानजे प्रद्युम्नके साथ कर दिया। बड़े आनंद के साथ प्रद्युम्नजी का विवाह हो गया। इसी रुक्मवती के गर्भसे प्रद्युम्नजीके अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। जिसके विवाहमें बलदेव जीने रुक्मी को मार डाला।

सूतजी कहते है—"मुनियो! भूत, भविष्य, वर्तमान, अतीन्द्रिय, दूरस्थ तथा व्यवहित सभी प्रकारकी वातोंको जानने वाले योगिराज मेरे गुरु भगवान् शुकदेव ने महाराज परीक्षित्से जिस प्रकार प्रद्युम्नजी के विवाह का वृत्तान्त कहा था वैसे ही मैंने आपसे कह दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आपने कहा कि बलदेवजी ने अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी को मार डाला, सो, इसका क्या कारण हुआ? क्यों बलदेवजी ने रुक्मीके प्राण लिये। अनिरुद्धजीका विवाह कहाँ हुआ। कृपया वासुदेव,संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस भगवान्के चतुर्व्यूहावतारमेंसे चतुर्थव्यूह अनिरुद्धजीके विवाहका वृत्तान्त हमें सुनाइये।

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज अब मैं भगवान् के पौत्र और प्रद्युम्नजी के पुत्र अनिरुद्ध के ही विवाह का वृत्तान्त सुनाता हूँ, आप दत्त चित्त होकर श्रवण करें।

### छप्पय

वृक, हर्षादिक लाल मित्रविन्दाने पाये।
भद्राने संग्रामजीत दश बेटा जाये॥
कहूँ कहाँ तक नाम सबनि सुत दश दश मानो।
एक लाख इकसट हजार अस्सी सुत जानो।
भये पुत्र प्रद्युम्नके श्रीअनिरुद्ध महारथी।
रुक्मी जिनके व्याह महँ, मरे द्यूतके स्वारथी॥

—★★—

# अनिरुद्ध विवाह और रुक्मी वध

## ( १११६ )

दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ।
रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥
जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ६१ अ० २५ श्लोक )

### छप्पय

शौनक पूछें–'सूत ! हने रुक्मी क्यों बलने ।
सूत कहें–'मुनि ! रच्यो खेल यह काल प्रबलने ॥
करन व्याह अनिरुद्ध भोजकट आये यादव ।
रुक्मी पौत्री संग व्याह सम्पन्न भयो जब ॥
भयो द्यूतको खेल तहँ, बल रुक्मी दलपति भये ।
रूँगट रुक्मीने करी, कुपित देवबल ह्वै गये ॥

बड़े बड़े बुद्धिमान पुरुष यह जानते हुए भी कि मृगया, मद्य, मांस, धर्म विरुद्ध काम और द्यूत ये सब व्यसन कलह तथा पतन के कारण हैं, फिर भी इनमें प्रवृत्त हो जाते हैं । इन कार्यों

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! रुक्मी ने अपनी बहिन के नाती अनिरुद्धजी के साथ अपनी पौत्री रोचना का विवाह कर दिया । यद्यपि उसका भगवान् से पुराना वैर भाव था और वह यह भी जानता था, कि ऐसा सम्बन्ध धर्म सङ्गत न होकर अधर्म सम्बन्ध है, फिर भी अपनी बहिन की प्रसन्नता के निमित्त उसने इस सम्बन्ध को भी किया ।"

में ऐसा आकर्षण है, कि बड़े-बड़े धर्मात्मा भी इनसे पृथक् नहीं रह सकते। जब जानते हैं जूआ खेलकर किसी का कल्याण नहीं हुआ है, किन्तु उसमें विजय की ऐसी आशा बनी रहती है, कि सर्वस्व गँवा कर भी मनुष्य उससे विरत नहीं हो सकता। जूए मे प्राय: उसी की विजय होती है जो अधिक छल कपट करना जानता हो। उसका परिणाम कलह, विग्रह, द्वेष और मृत्यु यही सब होता है। इसी लिये शास्त्रकार बार-बार इस बात पर बल देते हैं, कि किसी भी प्रकार के दुर्व्यसन में न पड़ना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रद्युम्नजी के पुत्र अनिरुद्ध जो हुए। इन लोगों के यहाँ तो मामा फूफी के लड़के लड़कियों के साथ विवाह करने का सदाचार ही बन गया था। यद्यपि यह अधर्म है। मामा फूफी के लड़के लड़की परस्पर में भाई बहिन के समान होते हैं, किन्तु स्नेह वश यह परम्परा दक्षिण में चल पड़ी है। महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, गुर्जर, कलिङ्ग, पाण्डय तथा अन्यान्य दाक्षिणात्य देशों में यह प्रथा चल पड़ी है, इस लिये देशाचार मानकर लोग करने लगे है, किन्तु है यह अधर्म ही।

रुक्मी तो मन ही मन श्रीकृष्ण से द्वेप रखता ही था। उसने अपनी पुत्री रुक्मवती का विवाह भी अनिच्छा पूर्वक अपनी बहिन के संकोच से प्रद्युम्नजी के साथ कर दिया था। अब उसके पुत्र की एक रोचना नाम की पुत्री थी। इधर प्रद्युम्नजी के पुत्र अनिरुद्ध भी विवाह योग्य हो गये थे। रुक्मिणीजी की तो दाढ़ गनक गई थी। वे चाहती थी, मेरी बहुएँ मेरे ही कुल की हों। अतः उसने भोजकट जाकर रुक्मी से कहा—"भैया! अब रोचना के लिए और वर ढूँढ़ने कहाँ जाओगे। अच्छा है, लड़की घर की घर में ही रहे। तुम्हारा अनिरुद्ध बड़ा हो गया है। मैं चाहती हूँ रोचना को तुम अनिरुद्ध के ही लिये दे दो।"

रुक्मी ने देखा, जब मेरी वहिन की इच्छा हो गई है,तो मुझे विवाह कर देना ही उचित है, यदि मैं प्रसन्नता से विवाह न करूँगा, तो ये श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न तथा बलदेव आदि बली यादव बल पूर्वक कन्या को ले जायँगे,इसलिए इनसे विग्रह करना व्यर्थ है। यह सब सोचकर उसने कहा—"अच्छी बात है, तेरी ऐसी इच्छा है, तो ऐसा ही हो।'

यह सुनकर रुक्मिणीजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। अब क्या था द्वारकामें विवाहकी धूम मच गयी। सब यादव कहने लगे। विदर्भ देशमें दो दो विवाह हमारे यहाँ के हुए, बरात में एकबार भी नहीं गये। दोनों विवाह द्वारका में ही हुए। अब इस तीसरे विवाह में तो बरात सजाकर चलेंगे ज्योनार खायँगे।" यह सोच कर सब बड़े प्रसन्न हुए। सब सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण पहिन पहिन कर बरात जानेकी तैयारियाँ करने लगे। यदि भगवान्‌के सभी पुत्र जाते, तो रुक्मी का दिवाला निकल जाता, अतः बलरामजी, श्रीकृष्णचन्द्रजी, प्रद्युम्नजी, साम्बजी तथा और भी दो चार सहस्र मुख्य मुख्य यादव बरात के लिये चले। रुक्मिणीजी तो दोनों पक्ष की थी, अतः उनका भोजकट में जाना आवश्यक था, इसलिये पौत्र के विवाह में वे भी गईं।

विदर्भपुर के लोगों ने यादवों की बरात का अत्यधिक स्वागत सत्कार किया। बड़ी धूम-धाम के साथ वैदिक विधि से रोचनाका विवाह अनिरुद्धजी के साथ हो गया। विवाह होने के पश्चात् भी कई दिनोंतक बरात ठहरी रही। बरातमें हँसी विनोद तथा खेल आदि होते ही हैं। कन्या पक्षके लोग वर पक्ष वालों को बुद्धू बनाने के कुछ न कुछ कार्य करते रहते हैं। पान में कोई रंग दे देंगे। जिसे खाने से सबके मुख नीले काले हो जायँ। कचौड़ियों में मिरचा भरके समधी को परोस देंगे, जिससे वह जब सी सी

करने लगे तो सब उसकी हँसी उड़ा सकें। इसी प्रकार और भी कार्य करते हैं। विवाह में इसीकी तो शोभा है।

रुक्मीने सोचा—"ये वलदेवजी अपनेको बहुत बली लगाते है, इन्हें किसी प्रकार बुद्धू बनाया जाय।" कन्या पक्ष की ओर से भी निमन्त्रण मे बहुत राजा आये थे। उनमें कलिङ्ग देश के राजा बड़े विनोद प्रिय थे। उन्होंने रुक्मी से कहा—"देखो, बलदेवजी को बुद्धू बनाने का एक उपाय है। इनको जूआ खेलना आता तो है नहीं फिर भी इन्हे द्यूतका बडा व्यसन है। हम लोग तो द्यूत क्रीड़ामें पंडित ही हैं। अतः इन्हें उत्साहित करके जूआ खिलाया जाय और उसीमें इन्हें बुद्धू बनाया जाय।"

यह बात सबको रुचिकर हुई। सब बलदेवजी के साथ खेल करना चाहते थे, उनकी हँसी उड़ाना चाहते थे। उन लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, खेल करना ही था, तो क्रीड़ा प्रिय कौतुकी कृष्णसे करते। भला सर्पसे क्या खेल करना। न जाने कब कुपित हो जाय, कब काटले। किन्तु विनाश काल में बुद्धि विपरीत हो जाती है। राजाके उत्साहित करने पर रुक्मीने बड़े आदर से बलरामजी को बुलाया और बोले—"बलदेवजी! हमने आपकी द्यूत क्रीड़ा की बड़ी प्रशंसा सुनी है। सुना है आप इस विद्यामें बड़े निपुण हैं।"

बलदेवजी ने कहा—"अरे, भाई निपुण काहेके है। वैसे ही मनोविनोद के लिये कभी कभी खेल लेते हैं।"

रुक्मी ने कहा—"तो हमारे तुम्हारे दो दो हाथ हो जांय विवाह में द्यूत क्रीड़ा भी हो।"

बलदेवजी ने कहा—"अच्छी बात है, हो जाय कुछ देर मनोरञ्जन।" यह कहकर वे खेलने को उद्यत हो गये। खेल की

सामग्री मँगाई गई। पड़ने लगे पासे। रुक्मी की ओर कलिङ्ग नरेश आदि कई धूर्तराजा हो गये थे। बलदेवजी अकेले थे। रुक्मी ने पूछा—"कहिए बलदेवजी ! आप दाव पर क्या लगाते है ?"

बलदेवजी ने कहा—"अच्छा, पहिले सौ सुवर्ण मुद्रा हम लगाते हैं।"

यह सुनकर रुक्मीने भी सौ सुवर्ण मुद्रा लगाकर पाशा फेंका, उसने तुरन्त सौ मुद्रा जीत ली। जूए मे खेलते-खेलते उत्साह बढ़ता है। दोनों ही ओर से सर्वस्व लगाने तक को तैयार हो जाते हैं। सौ जीतने पर बलदेवजी ने सहस्र पण लगाये। सहस्र जीत ने पर दश सहस्र पण लगाया। वे सब तो चांडाल चौकड़ी के ही थे। बलदेवजी जो भी लगाते उसे ही जीत लेते और ठठाका मारकर हँसने लगते। कलिङ्ग राजको बलदेवजी को चिढाने में बडा आनंद आता। रुक्मी की विजय होते ही वह खिलखिला कर हँस पडता और कहता—"हाँ, बलदेवजी ! और लगाइये, और लगाइये।"

उसकी हँसी और व्यंग वचनों को सुनकर बलदेवजी मन ही मन कुपित होते, किन्तु कुछ कहते नही थे। जब रुक्मी दस सहस्र मुद्राओं को जीत गया, तो उसने कहा—"अब मैं एक लाख मुद्रा लगाता हूँ।" यह कहकर उसने पाशा डाला। अबके बलदेवजी की जीत हुई। किन्तु वे सब तो बड़े धूर्त थे एक साथ सबके सब कहने लगे—"रुक्मीजी जीते ! रुक्मीजी जीते !!"

अब तो बलदेवजी अपने क्रोध को संवरण करने में समर्थ नही हुए। स्वाभाविक ही उनके नेत्र अरुण वर्ण के थे, इस घटनासे वे और भी लाल वर्ण के हो गये। वे पूर्णिमा के उमड़ते

हुए समुद्र के समान परम क्षुभित हो गये थे अब वे अपने को सम्हाल नहीं सके, उन्होंने दश करोड़ मुद्रायें दाव पर लगा दीं। अबके भी पाशा तो बलदेवजी का ही पड़ा था। किन्तु रुक्मि ने छल का आश्रय लिया वह बोले—"अबके भी मैं ही जीता।"

बलरामजी ने क्रोध में भरकर कहा—"अब तुम लोग अधर्म पर उतारू हो गये हो। जीत मेरी हुई और तुम अपनी बता रहे हो।"

व्यग के स्वर में रुक्मी बोला—"घिरा हुआ सियार गाँव की ओर भागता है, जब धर्म से कार्य नहीं चला तो लोग अधर्म का आश्रय लेते हैं। जीत मेरी हुई आप अपने बताते हैं। आप इन कलिङ्गराज तथा दूसरे राजाओं से पूछें कौन जीता है। अपके कहने से क्या होता है। ये लोग मध्यस्थ हैं, प्रश्न निर्णायक है। ये जो निर्णय देंगे वही मान्य होगा।" इस पर वे सबके सब धूर्त बोल उठे-'रुक्मीने ही जीता है! रुक्मीने ही जीता है!'

इतने में ही आकाश वाणी हुई—"धर्म पूर्वक तो विजय बलरामजी की ही हुई है। रुक्मी का कथन मिथ्या है।" किन्तु आकाश वाणीके समय सभी उच्च स्वरसे चिल्लाने लगे—"नहीं नही,रुक्मीकी ही विजय हुई है। रुक्मीजी ने ही दाव जीता है।"

रुक्मी भी हठ करने लगा। आकाश वाणीकी उपेक्षा करके, उन राजाओं के उत्साहित करने पर वह भी अड़ गया। वह बलरामजी की हँसी उड़ाने लगा। उन्हें बुद्धू बनाने लगा। हँसी हँसी में ऐसे व्यग वचन बोलने लगा जिन्हे कोई भी स्वाभिमानी पुरुष सहन नही कर सकता था। वह बलदेवजी को चिढ़ाते हुए कहने लगा—"देखिये, जिसका काम उसीको छाजे, नहीं गदहा

छूट मोगरा बाजे।" धोबी धोबी का ही काम कर सकता है। चौरम खेलना, बाण चलाना, युद्ध करना यह काम क्षत्रियों का ही है। आप लोगों ने जीवन भर तो वन में गोएँ चराई। आप लोग लड़ना भिड़ना जूआ खेलना क्या जाने। हाँ बैल नाथने का काम आ पड़े या चोरी आदि करनी पड़े तो उसे आप भली भाँति कर सकते हैं। आप इन राजाओं के बीच में व्यर्थ चौसर खेलने को उद्यत हो गये।"

रुक्मी के ऐसे चुभते हुए व्यंगों को सुनकर अन्य सभी दुष्ट राजा हा हा करके हँसने लगे और बलदाऊजी की खिल्लियाँ उड़ाने लगे। कोई कहता—'इस लिये ये कंधे पर हल रखे रहते हैं। खेती करना, हल चलाना तो बनियों का काम है। अब, ये चले है पाशा खेलने। पूर्वी गधा पश्चिमी रेंक रेंके, तो कैसे सफलता प्राप्त कर सकता है।"

अब क्या था, सबके चिढ़ाने पर बलदेवजी का क्रोध सीमाको उल्लङ्घन कर गया। वहाँ एक परिघ पड़ा था, बलदेवजी ने न आगा सोचा न पीछा। परिघ को उठाकर रुक्मी के सिर पर एक जमा ही तो दिया। जैसे फूट खिल जाती है, उसी प्रकार परिघ लगते ही रुक्मी का सिर खिल गया। वह उसी माङ्गलिक सभा में प्राण हीन होकर बलि पशुके समान मर गया। मानो रोचना के विवाह यज्ञ मे ददिया सुसर ने बाबा की बलि चढ़ा दी हो।

रुक्मीको मारकर ही बलदेवजी का क्रोध शान्त नही हुआ पासमे बैठे कलिङ्ग राजको भी उन्होंने आगे बढ़कर पकड़ लिया।

कलिङ्ग राज थर थर काँपने लगा। बलरामजी ने परिघ को तो फेंक दिया। कस कर एक चपत उसके गालों पर जमाया। चपत के लगते ही उसके वे सभी शुभ्र स्वच्छ बत्तीसों दाँत टूट कर पृथिवी पर गिर पड़े, जिन्हें बार बार निकाल कर वह बलराम-जी की हँसी उड़ा रहा था। फिर उन्होंने परिघ को उठा लिया और दे दना दन दे दना दन प्रहार करने लगे। समस्त राजा बलराम जी को क्रुद्ध हुआ देख कर उसी प्रकार भागे जैसे भेड़ों के झुंड में सिंह आजाने पर वे भागती हैं। उस भाग दौड़ में किसी के हाथ टूट गये, किसी के पैर टूट गये, कोई मुँह के बल गिर गये, किसी की नाक टूटी, किसी के आखें फूटी। इस प्रकार सभी क्षत विक्षत होकर अपने अपने प्राणों को लेकर भागे। रुक्मिणीजी भी आकर रोने लगीं। भगवान्‌भी आगये वे बलराम जीको कुपित देख कर सिट पिटा गये। सम्मुख रुक्मिणीजी रो रही थी। भगवान् ने न तो एक शब्द बलरामजी से कहा, और न रुक्मिणी से ही कहा। वे जानते थे, यदि बलरामजी से कुछ कहा, तो वे छूटते ही कहेगे—"कैसा कलियुग आगया, लोग अपनी बहू को ही सब कुछ समझते है, बड़े भाई का कोई शील संकोच नहीं। साले साली ही सब कुछ है। इसके साले ने मुझे कितनी खरी खोटी सुनाई तब तो इसने कुछ नहीं कहा, जब मैंने उसे मारा तो यह अपनी बहूका पक्ष ले रहा है। और यदि रुक्मिणी से कुछ कहते है। तो वह कहेगी—"ये यादव कैसे निर्दयी है। मेरे भाईको भी मार डाला और अब मुझे ही उलटा उपदेश दे रहे हैं।" अतः भगवान् ने सोचा—"सबसे अच्छा मौन रहना ही है। बलदेवजी का क्रोध शान्त हो जायगा, तो रुक्मिणी को द्वारकामें चल कर समझा लेंगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! रंग में भंग पड़ गई। विवाह के शुभ अवसर पर हत्या हो गई। कुछ कालमें बलदेवजीका क्रोध

शान्त हो गया। वे तुरन्त अपने रथ पर बैठ कर द्वारकाको चल दिये।

तब भगवान्‌ने भा झूठे आंसू बहाकर रुक्मणीके लड़कोंके साथ सहानुभुति दिखाई और अपनी पौत्र वधूको विदाकराके वर और नव वधूको लेकर समस्त बराती यादवोंके साथ भोजकटसे चलदिये और द्वारका पुरीमें आगये। मार्गमें लोगों ने कहा—"बलदेवजीने आवश्यकतासे अधिक क्रोध किया। विवाहमें हत्या हो गयी।"

भगवान्‌ने कहा—"अच्छा है साला मारा गया। हमसे बड़ा द्वेष रखता था उसने अपनी करनीका फल पा लिया।"

यह सुन कर शौनकजाने पूछा—"सूतजी! क्या यह रुक्मीके साथ अन्याय नहीं हुआ। उसने अपनी बहिन दी, पुत्री दी पोती दी और उसके बदलेमें यादवोंने उनके प्राण ले लिये। महाराज! यदि बलदेवजी पर जूआ खेलना नहो आता था, तो न खेलते। जूएमें तो ऐसा होता ही है। उसपर एक राजाको मार डालना यह कहाँ तक उचित है?"

सूतजी बोले—"महाराज! बड़ोंकी बातें बड़ी ही होती हैं। वृद्ध लोगोंके कृत्य विचारणीय नहो होते। बड़े जो भी करें वहो उचित। छोटे जो करे वही अनुचित। जो हुआ सो हुआ। भगवान् जो भी करते हैं अच्छा ही करते हैं। इस विषयमें आप अधिक विचार न करें।"

शौनकजी बोले—"अच्छो बात है सूतजी! अच्छी यह तो बताइये कभी भगवान्‌ने रुक्मिणीजी को इस घटनाके पश्चात् सान्त्वना भी दी?"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज! सान्त्वना क्या दी। एक दिन हँसी हँसी मे इस बातको कहना चाहा। रुक्मिणीजी कुछ गम्भीर स्वभावकी थी। वे सत्यभामाजोकी भाँति मानिनी नहीं थी

भगवान्‌ने एक दिन उससे हँसीकी। तब भगवान्‌को देनेके देने पड़ गये। जैसे तैसे उनकी प्रशंसा करके उन्हें समझा दिया। सब इस घटना का भी उल्लेख किया। अब आप रुक्मिणीजी और भगवान् के विनोद की ही कथा सुने।"

## छप्पय

लाल लालकरि आँखि सर्प सम बल फुफकारे।
रुक्मी सिर महँ परिघ जमायो प्रान निकारे॥
पुनि कलिङ्ग नृप पकरि तुरत बत्तीसो झारी।
जो खल भूपति हँसे सबनिकी दशा बिगारी॥
भलो बुरो नहिं हरि कह्यो, शील बन्धु,तियको करचो।
यदुपति सोचत जात मग, भलो भयो सारो मरचो।

# भगवान्‌का रुक्मिणीजीसे विनोद

( ११९७ )

तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य,
या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ।
प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठ-
वक्त्रोल्लसास्मितसुधां हरिराबभाषे ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ६० अ० ९२ श्लो० )

छप्पय

यों अनिरुद्ध विवाह भयो आये निज पुर सब ।
हरि विनोद ज्यों करचो रुक्मिनी सङ्ग कहूँ अब ॥
इक दिन निरखी प्रिया हँसति हरिने ढिग आवत ।
पग पग पै जनु सुखद मधुर रस सौ बरसावति ॥
अलक, पलक, मुख, नासिका, कंठ, जघन, कटि वर हृदय ।
चुवत सबनितें मधुर रस, मुख मनहर मुसकान मय ॥

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जिन रुक्मिणीजीने लीला ही से मानवरूप धारी श्रीहरिके अनुकूल रूप धारण कर लिया है तथा जिनका मुखारविन्द अलकों, कुण्डलों और सुवर्णमाला विभूषित कण्ठसे शोभायमान है तथा जो मधुर मुसकानमयी सुधासे सुशोभित है, जो मूर्तिमती लक्ष्मीजी ही हैं इसीलिये जो भगवान्‌से कभी पृथक् नहीं होती हैं उन्हें देखकर हँसी विनोदकी इच्छा से प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए भगवान् उनसे कहने लगे।"

इस नीरस गृहस्थाश्रममें सरसताका सञ्चार कामधुरा कामिनी ही करती है, संसार में अनन्दोत्पादक दो ही वस्तुएँ हैं। सुन्दरी और दरी (गुफा) जिस घर में अनुकूलता पति परायणा पत्नी नहीं उसके लिये घरमें रहना व्यर्थ है, उसे गुफा का आश्रय लेना चाहिये। घर तो मिट्टी के बने होते हैं जड है, किन्तु उन घरोंको चैतन्यता पत्नी ही प्रदान करती हैं। घर में नाना चिन्तायें उत्पन्न होकर उसे कडवा बनाये रहती हैं,उस कड़वाहट्को मेटकर गृहिणी ही उसे मधुर बनाती है। स्त्री कैसी भी क्यों न हो वह पुरुप को घरमें बाँधे रहती है। यदि ऐसा न होता तो सभी प्रतिकूलाचरण करने वाली पत्नी का परित्याग करके पत्नी हीन जीवन बिताते। दिन भर का थका पुरुप पत्नीको देखकर उसका आतिथ्य ग्रहण करके नवजीवन प्राप्त करता है। दिन भरकी चिन्ताओंसे व्यथित पुरुप पत्नी की मधुर मुस्कान को निहार कर तथा उससे दो हँसी विनोद की सरस बातें करके आत्म विस्मृत होता है। लोग सुरापान करके भी अपनी चिन्ताओं से कुछ काल के लिये मुक्ति पाना चाहते है, किन्तु उसमें एक दोप है, वह अचेत करके निश्चिन्त करती है, किन्तु धर्मपत्नी तो सचेत करती हुई पुरुप को चिन्ता रहित बनाती है, पुत्र प्रसव करके संतति चलाती है, गृहस्थीकी गाड़ी को चलाती है,दिन भर श्रम करके भी वह हँसती रहती है और चिन्ता के समय पति के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है। ऐसी स्त्री का मुख प्रेम में,रोप मे,दुख मे, सुख में, तथा सभी अवस्थाओं में स्फूर्ति प्रदान करने वाला होता है।

सूतजी कहते है—"मुनियो! अनिरुद्ध का विवाह करके भगवान् द्वारका आ गये और सुखपूर्वक अपनी सोलह सहस्र एक सौ आठ पत्नियों के साथ आनन्द विहार करने लगे। जैसे भगवान्को कभी जरा व्याधि नहीं व्यापती सदा युवक बने रहते हैं, उसी प्रकार उनकी स्त्रियां भी सदा नीरोग और युवती बनी

रही। उनके न कभी बाल पके न अङ्गों में सिकुड़न पड़ी न कभी कोई व्याधि हुई। सदा सोलह वर्ष की सी बनी रहीं।

भगवान् की पत्नियों में सत्यभामाजी अधिक मानिनी थी। जब वे रूठ जाती, तो भगवान् को उन्हें बहुत समय तक मनाना पड़ता, किन्तु रुक्मिणीजी बड़ी सीधी सादी थीं। भगवान् जो कह देते, वही करतीं। कभी कोई हँसी विनोद की बात भगवान् कह देते, तो सकुच जातीं, मुसकाकर रह जातीं कभी उलटकर उत्तर न देतीं। हँसी विनोद तो तभी बढ़ता है जब दोनों ओर से कहा सुनी हो। एक ने कहा, दूसरा सुनकर चुप हो गया, बात समाप्त हो गयी। रुक्मिणीजी का दास्यभाव था। वे स्वाधीन भर्तृका के समान प्रगल्भा नहीं थीं। उन्हें भगवान्‌की सेवा करने में ही अधिक आनन्द आता था, हँसी विनोद उन्हें प्रिय नहीं था। भगवान् को तो व्रज की ही बानि पड़ी हुई थी। वहाँ गोपिकायें उन्हें खरी खोटी सुनातीं, गाली देतीं, रूठतीं, मान करतीं। ये उनकी अनुनय विनय करते, हा हा खाते, पैर छूते, ठोढ़ी में हाथ डालते और हाथ जोड़े खड़े रहते। यहाँ द्वारका में वह रस कहाँ यहाँ तो सदा सेवा लेते रहो।

प्रेम में मान करना, रूठना, मचल जाना, कोप करना, हठ करना आवश्यक है। इससे प्रेमका सौंदर्य बढ़ता है। उसमें नव-जीवन आता है। जितना सुख मधुर मन्द मुसकानमय मुख को देखकर होता है, उससे कहीं अधिक अपनी प्रिया के प्रेम कोप से फूले हुए मुख को देख कर होता है।

भगवान् ने एक दिन सोचा—"मैंने रुक्मिणीजी के मुख को सदा मन्द मुसकान युक्त ही देखा है, क्रोधमें भरने पर इस मुखकी कैसी शोभा होती होगी, इसका अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ। हो भी कैसे, रुक्मिणीजी तो कभी हँसी मे भी मुझसे क्रोध नहीं करतीं। मैं कुछ क्रोध करने की कभी बात कहता भी हूँ, तो वे

मुसकरा देती हैं। तब आगे कुछ कहने का मेरा साहस भी नहीं हाता। एक दिन इनसे ऐसी कोई चुभती हुई हँसी करो, जो इनके हृदय मे पार हो जाय, इन्हें अवश्य ही क्रोध आ जाय। उस समय जब ये क्रोधमें भरकर आपेसे बाहर हो जायँ, तब मैं हँस दूँगा।" यही सब सोचकर श्यामसुन्दर किसी सुहावने सुखद समय की प्रतीक्षा करने लगे।

एक समय की बात है, वसन्त की सुखद ऋतु थी। बाहर चन्द्रमा की चाँदनी छिटक रही थी, कुछ कुछ गरमी पड़ने लगी थी। पंखे की वायु प्रिय लगने लगी थी। श्यामसुन्दर अपनी सुखद शैया पर सुखपूर्वक शयन कर रहे थे। हाथी दाँत के पायों वाला विस्तृत पलँग रेशम की निवाड़ों से बुना हुआ था, उस पर सेंवर की रुई का गद्दा बिछा था, उसके ऊपर दुग्धफेनके समान, बगुलों के पङ्ख के समाम शुभ्र, शङ्ख के समान स्वच्छ सफेद महीन चादर विछी थी, मृदुल उपवहण रखे थे। श्यामसुन्दर दाये करवट से तकिये पर भुजा रखे उसके सहारे लेटे हुए थे। कोई दासी थूकने के पात्र को रख रही थी. कोई चन्दन ला रही थी, कोई ताम्बूल बना रही थी। श्रीरुक्मिणीजी स्वयं एक बाल व्यजन लिये वनवारी को वायु कर रही थी। भगवान् तो भक्तोंको सुख देने और धर्मकी मर्यादा स्थान के निमित्त अवतीर्ण होते है, उन्हें स्वयं तो कोई इच्छा नहीं क्योंकि वे स्वयं आप्त काम हैं।

भगवान्‌का भव्यभवन भोगकी समस्त सामग्रियोंसे सुसज्जित था। उसमें सुन्दर स्वच्छ शुभ्र वितान तना था, जिनमें मोतियों की चारों ओर झालर लटक रही थीं। उस गृह में घृत अथवा तैल के दीपक नहीं थे। कान्तिमती मणियों के प्रकाश से ही वह प्रकाशित हो रहा था। दिव्य मल्लिकाकी मालाएँ स्थान स्थान पर टँगी हुई थीं। उनकी गन्धके लोभी भ्रमर गण उड़ उड़कर गुञ्जार

कर रहे थे, मानों माधवको मधुमय सङ्गीत सुना रहे हों। पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र उदित होकर प्रभुके दर्शनोंकी व्यग्रता प्रकट कर रहे थे, जब उन्हे विदित हुआ कि प्रभु तो अन्तःपुर में अपनी प्रिया के साथ हैं और सुखपूर्वक पलंग पर शयन कर रहे हैं, तब उनकी अधीरता और भी अधिक बढ़ी। वे स्वय तो अन्तःपुर में जा नहीं सकते थे, अतः उन्होंने अपनी किरणों को भेजा। किरणों के शुभ्र हास्य से वह भवन परम सुशोभित हो रहा था, छिपकर चोरीसे झरोखे से चन्द्रदेव झांक रहे थे। भवन के भीतर पात्र मे जलती हुई अगुरु की धूप का धूँआ चन्द्रदेव के इस अशिष्ट व्यवहार से कुपित होकर स्वयं झरोखाओं के छिद्रो से निकल निकल कर निशानाथ के नयनों मे भर जाना चाहता था। पारिजात उपवन की सुगन्ध से सुवासित वायु वनवारी के वस्त्रों से तथा रुक्मिणी जी की साड़ी से क्रीड़ा कर रही थी।

अपने परमेश्वर पतिकी परिचर्या करती हुई विदर्भनन्दिनीकी शोभा अपूर्व थी। अब तक एक सुन्दरी सखी रत्नदण्ड युक्त चँवर लेकर श्यामसुन्दरके ऊपर डुला रही थी, अब उस चँवरको स्वयं श्री रुक्मिणीजी डुलाने लगी। चँवर डुलाने से उनके करोंके रत्नजटित कंकण, चूड़ियोंके साथ मिलकर मधुर मधुर शब्द कर रहे थे। कमलकी पंखुड़ियों से भी अधिक कोमल उनकी पतली पतली उँगलियों में मणिमय अँगूठियाँ सुशोभित हो रही थीं। उनमें जड़े हीरे व्यजन डुलाते समय चमक रहे थे। कुन्कुम से लिप्त तथा कंचुकी से आवृत उनका उन्नत वक्षस्थल श्रमके कारण हिल हिलकर केशर कस्तूरी की सुगंध को बखेर रहा था। अपने मणिमय नूपुरों की सुमधुर ध्वनि मे वे मदनमोहन के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। कुन्कुमकी कीच से अरुणवर्ण के बने अपने कण्ठ के मोतियो के हारो से आवृत उनका कण्ठ कुछ कुछ हिल रहा था। सुन्दर साड़ी से आवृत उनके कटि मे पड़ो

महामूल्यमयी करधनी रुनुभुनु रुनुभुनु शब्द कर रही थी। कुटिल अलकों से आवृत वे अपने मुखारविन्द को नीचे किये हुए थी। अच्युत अपलक भाव से उनके अनुपम आननकी ओर निहार रहे थे। बीच बीच में कनक कुण्डलों की कांति से सुशोभित तथा पदक विभूषित कण्ठ को उठाकर अपने प्राणनाथ की ओर देख लेती। जब कभी दोनों के नयनों से नयन मिल जाते तो अपनी मधुर मुसकानमयी दृष्टि को हटाकर वे पुनः पृथिवी की ओर देखने लगती।

इस प्रकार जो छाया की भाँति भगवान् के साथ-साथ रहने वाली हैं, ऐसी लक्ष्मीजी की अवताररूपा उन रुक्मिणीजी को देखकर आज भगवान् को हँसी करने की सूझी। वे बोले— "प्रिये! मैं तुमसे एक बात पूछूँ? बुरा तो न मानोगी?"

अत्यन्त ही स्नेह से वीणा विनिन्दित स्वर में रुक्मिणीजी बोली—"पूछो, प्राणनाथ! भला बुरा मनाने की कौन सी बात है। कहीं पत्नी अपने पति की बातों का बुरा भी मान सकती है क्या?"

भगवान् ने पूछा—"अच्छा, यह बताओ, तुमने मुझमें क्या गुण देखा, जो मुझे वरण किया?"

रुक्मिणीजी समझ गयीं भगवान् मुझसे हँसी करना चाहते हैं, अतः बात बढ़ने न पावे इसलिये वे कुछ भी न बोलीं। तनिक मुसकरा कर रह गयीं। किन्तु भगवान् तो आज उन्हें कुपित करने पर तुले हुए थे, आज वे ऐसे मानने वाले नहीं थे अतः बोले—"देखो, मुझे शंका इसलिये हुई कि तुम्हारा विवाह न होता हो सो भी बात नही। बड़े बड़े नृपतिगण तुम से विवाह करने को लालायित थे। जिनका ऐश्वर्य हमारे से [illegible] बड़ा बड़े बड़े लोकपालों से बढ़ा चढ़ा था, जो [illegible], सुकुमारता, सुन्दरता तथा वीरता में जगत् प्रसिद्ध थे। [illegible]

तुम सकोचवश किसी से कहने में असमर्थ थीं, तुम्हारे बड़े भाई पिता तुम्हें उन शक्तिशाली राजाओ को देना भी चाहते थे। वे लोग बरात सजाकर तुम्हारा पाणिग्रहण करने तुम्हारे नगर में आ भी गये थे, उन सर्वसमर्थ राजाओं को छोड़कर हमें तुमने क्यों वरण किया। वे तो तुम्हारे अनुरूप थे, हम तो किसी भी प्रकार तुम्हारे समान नहीं, फिर तुमने ऐसी भूल क्यों की ?"

रुक्मिणी जी समझ रही थीं, भगवान् मुझे चिढ़ाना चाहते है, इसीलिये विवाह की बात स्मरण दिलाकर मेरी हँसी उड़ा रहे हैं, इसलिये वे कुछ बोली नहीं। भगवान् के श्रीमुख की ओर देखकर कुछ लज्जित सी हो गयीं। भगवान् आज रुकने वाले नहीं थे बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही वे कहते गये—"देखो, हमें अपना पति बनाकर तुमने बड़ी बड़ी भूलें कीं। उनमें से कुछ मैं गिनाता हूँ।

१—तुम राजकन्या हो, राजाकी कन्या को राज पुत्र के साथ ही विवाह करना चाहिये। हम तो राजा है नहीं। भगोड़े हैं। राजाओं के भय से अपने प्राण बचाने के लिये हम भागकर समुद्र के बीच में रहते हैं। हम राजसिंहासन पर बैठने के अधिकारी नही बड़े बड़े बली राजा हमसे बैर मानते हैं। इसलिये हमारी तुम्हारी जोड़ी भी उचित नहीं।

२—दूसरी बात यह है, कि पुरुष पद प्रतिष्ठा में अपने अनुरूप न भी हो और अत्यंत प्रेमी अनुराग युक्त हो, स्त्रियों को अपने प्रेममय व्यवहार से उनके अनुरूप कार्य करके उनके अधीन रह कर उन्हें प्रसन्न कर सके, तो अकुलीन पुरुषको भी स्त्रियाँ वरण कर लेती है। हममें वह भी बात नहीं। स्त्रियोंके प्रति हमारी कोई आसक्ति नहीं। उनमे हमारा कोई विशेष आकर्षण नहीं। हम अस्पष्ट और अलौकिक मार्ग का अनुसरण करने वाले हैं।

ऐसे नीरस और फक्कड़ पुरुष के पल्ले पड़ी पत्नियाँ दुःख ही दुःख उठाती हैं। उनको कभी आन्तरिक प्रसन्नता नहीं होती।

३—तीसरी बात यह है, कुलीन भी न हो, पदप्रतिष्ठा न हो तथा कामकला कोविद भी न हो, यदि वह धनिक हो, तो धनके पीछे भी स्त्रियाँ पुरुष को प्रेम करने लगती है। सो हम पर धन भी नही। निर्धन हैं, फक्कड़ है। हमरे साथी निष्किंचन निर्धन और दीन होते हैं। जैसे हम वैसे हमारे प्रशंसक। "चोर चोर मौसाते भाई" उन अकिंचन निर्धन भक्तों ने ही हमारी प्रशंसाके पुल बाँध-बाँध कर हमको इतना प्रसिद्ध कर दिया है। स्वयं समस्त दीनों के नाथ होने से सम्पत्तिशाली हमारे समीप आनेसे डरते हैं। धनवान् हमसे प्रेम नहीं करते। सो हम पर न धन है, न धनवानों से मित्रता ही।

४—चौथी बात यह है कि सम्बन्ध और मैत्री समान शील वालों मे ही शोभा देती है। सब बातों में समानता न हो, तो कुछ बातों में तो समानता हो ही। हममें तुममें किसी बातमें भी तो समानता नही। तुम धनवान राजाकी बेटी, हम लोग उठाऊ चूल्हे वाले। आज यहाँ तो कल वहाँ। न कोई अपना घर न द्वार। हमारा तुम्हारा कुल भी समान नही। तुम राजपुत्री हम ऐसे ही राज्य भ्रष्ट सट्ट पट्ट बहिष्कृत नाम मात्र के क्षत्रिय। तुम ऐश्वर्यशाली की पुत्री, हम ऐश्वर्य हीन दिन काटने वाले व्यक्ति। तुम गोरी हम काले। तुम गंभीर प्रकृति की हम चपल चंचल। तुम गुणवती हम निर्गुण। इन सभी बातों से हमारी तुम्हारी जोड़ी अनुरूप नही। तुमने चढ़ती अवस्था की झोंकमें बिना समझे बूझे यह यह सम्बन्ध करके अत्यन्त ही अदूर दर्शिता का काम किया। किन्तु कोई बात नहीं। अभी कुछ बिगड़ा भी नही है। प्रातःकाल का भूला सायंकाल तक घर लौट आवे, तो वह

भूला नहीं माना जाता । अब भी भूल का सुधार हो सकता है, त्रुटि का परिमार्जन किया जा सकता है । अतः अब तुम एक काम करो, हमसे विवाह विच्छेद करके किसी अच्छे से सुन्दर से प्रभावशाली युवक राजपुत्र को फिर से वरण करलो । ऐश्वर्य-शाली राजाओं की कमी नहीं और तुम इतनी सुन्दरी हो, कि बड़े से बड़ा राजा तुम्हें प्रसन्नता पूर्वक बड़े आदर से ग्रहण कर सकता है । तुम चाहो तो अपने प्रथम पति शिशुपाल के ही यहाँ चली जाओ । उसमें कुछ त्रुटि देखती हो, तो जिनके अधीन वह रहता है, उस सम्राट् जरासन्ध का पल्ला पकड़ लो । महाराज शाल्व भी बड़े बली हैं उनसे नया सम्बन्ध जोड़ लो अथवा हमारी फूआ का लड़का दन्तवक्र भी बड़ा बली है, उसकी है जाकर वह बन जाओ । अथवा तुम्हें और भी जो कोई अच्छा लगे । उसीके यहाँ चली जाओ । भेजने का प्रबन्ध हम कर देंगे

तुम कह सकती हो कि तुम्हें छोड़ना ही था, तो मुझे मेरे पिता की राजधानी कुण्डिनपुरसे रथमे बिठाकर क्यों भगा लाये तभी तुम मेरे यहाँ न आते । मेरा भाग्य जिसके साथ बधा होता उसके साथ चली जातीं । सो, उसमें एक कारण है । मैं तुम्हें कुछ प्रेमवश थोड़े ही हरण करले आया था । मैं तो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के निमित्त वहाँ गया था । तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी मुझ से द्वेष मानता था । तुम्हारे पिताकी इच्छा, मेरे साथ तुम्हारा विवाह करने की थी । किन्तु रुक्मीने द्वेषवश उन्हें रोक दिया । मेरा अपमान किया । वह मुझ से सहन न हो सका अतः उन वीर्यमद से मदोन्मत्त महीपतियों के मान को मर्दन करने के निमित्त मैं तुम्हें वहाँ से हर लाया था । क्योंकि मैं दुष्टों का दर्प मिटाने वाला हूँ । इसीलिये मैने साहस किया था । तुम समझती होगी हम तुमारे रूप पर रीझ कर वहाँ गये होंगे

हम लोग तो आत्माराम हैं, अपने आप में ही सदा सन्तुष्ट रहने वाले है। हमें स्त्री पुत्रो से क्या लेना देना। हमारे लिये मिट्टीकी काष्ठ की जैसे ही गुड़िया तैसे ही हाड़ मांस की बनी स्त्री। हम तो उदासीन है। जैसे किसी भवन में दीपक जल रहा है उस दीपक के प्रकाश में बैठा एक चोर चोरी कर रहा है, दूसरा किसी का वध कर रहा है, तीसरा मद्य पी रहा है, चौथा कोई निन्दित कार्य कर रहा है, पाँचवां कोई पुस्तक लिख रहा है, छठा कोई अन्य परोपकार का कार्य कर रहा है। दीपक सबको प्रकाश देता हुआ चुप चाप स्थित रहता है। बुरे काम करने वाले की निन्दा नही करता, अच्छे काम करने वाले की प्रशंसा नही करता। सभी को समान भाव से प्रकाश प्रदान करता है। इसी प्रकार हम देह गेह से उदासीन होकर निष्क्रिय और केवल साक्षीमात्र होकर स्थित हैं। ऐसे हमसे तुम्हे क्या प्रयोजन? तुम अपनी गठरी मुठरी बाँधकर तैयार हो जाओ, मैं अभी रथ तैयार करता हूँ।"

सूतजी कहते है—"मुनियो! इस प्रकार की बातें कहकर भगवान् मौन हो गये। रुक्मिणीजी और सब बातों को तो सहन करती रही, किंतु जब भगवान् ने बार-बार गम्भीर होकर यह बात कही—तुम चाहे जिसके साथ चली जाओ, दूसरा पति बना लो तो इससे उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। भय और आशंका के कारण उनका हृदय धड़कने लगा। नैत्रो से निरन्तर नीर बह रहा था, वे अपने मुखसे एक भी शब्द उच्चारण न करती थी। चिन्ता में

निमग्न हुईं वे निरन्तर नीचे की ही ओर देख रही थी। वे अपने अरुण वरण वाले नखों की द्युतिसे पृथिवी को आलोकित करती हुई उसे कुरेद रही थी। उनके अञ्जन रञ्जित अश्रुबिंदु कपोलों से ढुलक-ढुलककर कुचकुंकुम की कीच को धो रहे थे। मानसिक दुःख, पति-त्याग का भावी भय तथा अत्यन्त शोक के कारण उनकी बुद्धि विनष्ट सी हो गयी थी। दुःख से वे तुरन्त इतनी दुर्बल बन गयी कि कंकण अपने स्थान से खिसक गया। जिस चँवर से व्यजन कर रही थी, वह स्वतः ही उनके कोमल कर से गिर गया। बुद्धि विभ्रम हो जाने से उन्हें मूर्छा-सी आने लगी। चरण शरीर के बोझ को सम्हालने में समर्थ न हो सके। वे काँपने लगे। अचेत होने से तथा पैरों के लड़खड़ा जाने से वे अब अधिक देर तक खड़ी न रह सकी, जैसे प्रबल वायु के झोंके से या कट जाने से कदली स्तम्भ गिर जाता है उसी प्रकार उनका शरीर भूमि पर गिर गया। गिरते ही उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये। आभूषण कहीं से कहीं खिसक गये। सिरसे साड़ी उतर गई, उनके काले काले कुटिल केश इधर उधर बिखर गये। उनकी वेणी खुलकर ढीली हो गयी, उसमें लगी मालती मल्लिका की मालायें भूमि पर गिर गयी। भगवान् ने कभी पहिले ऐसी हँसी की होती, तो वे जानती भी। उनके लिये यह नयी बात थी इसीलिये उन्हें इतना अधिक मानसिक क्लेश हुआ।

भगवान् ने सोचा—"अरे, यह तो रंग में भंग हो गयी। हास्य विनोद की गम्भीरता से अनभिज्ञ वैदर्भी अत्यन्त दुखी हो गयी। देखो, इसका मेरे ऊपर कितना अनुराग है, प्रत्यक्ष त्याग

की कल्पना तो दूर रही, हँसी विनोद में केवल वाणी द्वारा भी यह मेरे वियोग को सहन नहीं कर सकती।" इस प्रकार उनके प्रेमानुबन्ध के विषय में सोचकर करुणामय कृपालु कृष्ण ने उनके ऊपर कृपा की। तुरन्त ही वे अपने पलंग पर से उतर पड़े इस समय उनके चार हाथ काम आये। दो हाथो से उठाकर तो उन्होंने अपनी प्रिया को हृदय से लगा लिया। एक हाथ से उनके बालों को सम्हारने लगे और एक हाथ से उनके मुख पर जो स्वेद बिन्दु चमकने लगे थे, उन्हें पोंछा। बार-बार उनकी ठोढ़ी को उठाकर बहते हुए अश्रुओ को अपने पीताम्बर से पोंछा। शोकाश्रु सिञ्चित, कुंकुम रञ्जित हृदय को उन्होंने बार-बार पोंछा और स्नेह पूर्वक भुजाओं से दबा कर उन्हें अपने निकट बिठाकर समझाने बुझाने लगे। वे तो इस विद्या में आचार्य परीक्षा पास कर चुके थे। व्रज की चटसाल में इन्होंने मानिनियों को मानने का ही अभ्यास तो किया था। मानते समय कैसी बातें करनी चाहिये कैसी कैसी युक्तियाँ निकालनी चाहिये उन सबके पे पंडित थे। अतः जिन रुक्मिणीजी का हँसी विनोद के कारण भ्रान्त चित्त हो गया है और जो त्याग के भय से अत्यन्त ही दीना बनी हुयी हैं, उनको दीनानाथ दयालु दामोदर मंद मंद मुसकराते हुए सान्त्वना देने लगे।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो! जिस प्रकार भगवान् ने रुक्मिणी जी को सान्त्वना दी है और भगवान् की सान्त्वना से सचेत हो कर जिस प्रकार उन्होने उनकी हँसी की एक एक बात का

गम्भीरता के साथ उत्तर दिया है, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा। रुक्मिणीजी ने ऐसे उत्तर दिये कि भगवान् की बोलती बन्द हो गयी। उन पर कुछ भी उत्तर नहीं बना और 'हाँ हाँ' कहकर ही उन्हें इस प्रसङ्ग को समाप्त करना पड़ा।'

छप्पय

देखि प्रियाको रूप हँसी की हरि कूँ सूझी।
मंद मंद मुसकाय पहेली पिछली बूझी॥
कहो प्रिये ! क्यों छाँड़ि नृपतिगण मम संग आई।
शूर बीर शिशुपाल संग तब भई सगाई॥
हम निरगुन निस्पृह परम, निष्किञ्चन निर्धन निपट।
तातें तजि हमकूँ अबहुँ, जाउ अपर नृपके निकट॥

—✕✕—

# भगवान् की विनोद की बातों का रुक्मिणी जी द्वारा उत्तर

( ११!८ )

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह,
यद्वै भवान्भागवतोऽसदृशी विभूम्नः ।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः,
क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ६० अ० ३४ श्लोक)

छप्पय

सुनि पति वचन कठोर रुक्मिनी अति घबरायी ।
मूर्छित ह्वै महि गिरी तुरत उठि श्याम उठायी ॥
प्रेमालिङ्गन करचो पोंछि मुख केश सम्हारे ।
पलँग पास बैठाइ मधुर स्वर वचन उचारे ॥
अरे, प्रिये ! रूठी वृथा, हँसी हँसी मे हौं कही ।
नरक रूप घर महँ सरस, है प्रसङ्ग सुखकर जिही ॥

---

* भगवान् की बातोंका उत्तर देती हुई रुक्मिणीजी कह रही हैं—, "हे अरविन्दलोचन ! आपने जो मुझे अपने असमान बताया यह यथार्थ ही है । भला ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त तथा सर्व व्यापक आप परमेश्वर के अनुरूप मैं कैसे हो सकती हूँ । कहा तो त्रिदेवों के भी स्वामी आप और कहा त्रिगुणमय स्वभाव वाली, अज्ञानी पुरुषों द्वारा पैर पुजाने वाली उलूकवाहिनी मैं ?"

सूतजी कहते है—"मुनियो ! भगवान् ने जब रुक्मिणीजी से हँसी की और वे दुखित होकर मूर्छित हो गयीं, तो भगवान् ने उन्हें प्रेमपूर्वक उठाया, हृदय से लगाया और अत्यन्त ही स्नेहपूर्वक समझाने लगे—"अरे, वैदर्भि ! तुम रुष्ट हो गयीं क्या ? भला हँसी विनोद की बातों मे भी कही रूठा जाता है ?

डबडबाई आँखों से श्यामसुन्दर की ओर देखकर रुक्मिणीजी प्रेम के रोष में बोलीं—"कहीं ऐसी हँसी होती है। हँसी की भी सीमा होती है। मुझे आपने कुलटा स्त्री समझ रखा है क्या ? जो ऐसी बात आपके मन में आयी।"

अत्यन्त स्नेहसे शीघ्रताके साथ, उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए भगवान् बोले—"नही नहीं, यह मेरा अभिप्राय तनिक भी नहीं था। मैं क्या तुम्हें जानता नहीं। मैं भली भाँति जानता हूँ तुम एक मात्र मुझमे ही अनुराग रखने वाली हो। मन से भी तुम किसी पर पुरुष की कल्पना नहीं कर सकती।"

कपोलों परसे ढुलकते हुए अश्रुओं को बायें हाथ से पोंछती हुई तथा साड़ी के अञ्चल से नाक के पानी को पोंछती हुयीं रुक्मिणीजी बोलीं—"जब आप यह जानते हैं, तो ऐसी बुरी बात आपने मुख से निकाली ही क्यों ? इसके पहिले तो आपने इतने चुभते हुए कठोर वचन कभी भी नही कहे थे।"

भगवान् प्यार के साथ बोले—"अब सच्ची ही बात बतादूँ ? अच्छा सुनो, मैंने तुम्हारे चन्द्र मुख पर सदा मन्द मन्द मुसकराहट ही दौड़ती देखी। क्रोध में तुम्हारी आकृति कैसी हो जाती है, इसे देखने का मेरे मनमें चिरकाल से कुतूहल हो रहा था। कई बार मैंने प्रयत्न भी किया, किन्तु तुमने बात बढने ही नही दी। लजाकर रह गयीं। तुम्हारे लज्जा से अवनत मुखारविन्द में इतना अधिक आकर्षण है, कि मैं फिर बातको बढ़ा नही सका इस कारण मेरा कुतूहल पराकाष्ठा पर पहुँच गया। मेरी बड़ी इच्छा थी प्रणयकोप

से फड़कते हुए तुम्हारे इन बिम्बाफलों के सदृश अरुण अधरोंको देखूँ। कटाक्ष विक्षेप के कारण कुटिल हुए तुम्हारे ये अरुणवर्ण के बड़े बड़े विशाल युगल नयन कैसे हो जाते हैं। कोप में कुटिल हुयी तुम्हारी ये सुन्दर भृकुटियाँ कैसे तन जाती है। तुम्हारा यह निर्मल पूर्णचन्द्र के सदृश मनोहर मुखारविन्द रोष में किस आकृतिका हो जाता है, इन्हीं सब बातों को देखने के लिये मैंने ये हँसी की बातें कहीं तुम इन्हें सत्य समझ गयी। इसीलिये कहा है सीधे सादे आदमियों से बहुत हँसी न करे।

रुक्मिणीजी ने कोप से कटाक्ष फेंकते हुए कहा—"चलो हटो, तुम पर दूसरो को बनाना बहुत आता है। ऐसी भी क्या हँसी? ऐसी हँसी से क्या लाभ?"

हँसकर भगवान्‌ने कहा—"देखो, हँसी में ऐसी वैसी बातोंका विचार नहीं किया जाता। हँसी तो निर्मुक्त हृदय से होती है। जहाँ खुटका बना रहता है, शील संकोच निभाना पड़ता है, वहाँ खुलकर हँसी हो ही नहीं सकती। तुम कहती हो इससे लाभ क्या? मैं कहता हूँ, गृहस्थी में यही तो सबसे बड़ा लाभ है। हस्थी में नित्य नूतन झंझट लगे रहते हैं। यह ऐसा बिना पानी का अंध कूप है, कि यह कभी भरता ही नहीं। चिन्ता, व्याधि, शोक,धनाभाव, पुत्र पुत्रियों का विवाह व्यवसाय की चिन्ता, दुष्टों का, चोरों का, राजा का, प्रजा का, जाति का, कुल का, और न जाने किस किसका भय बना रहता है। गृहस्थी में दु:ख ही दु:ख है। यही एक मात्र सबसे बड़ा लाभ है, सुख है कि कुछ समय अपनी प्राण प्रिया के साथ प्रेमपूर्वक हँसी विनोद में बीत जाता है। इसी एक मात्र सुख के पीछे गृहस्थी कोटि कोटि दु:खों को सहर्ष सहन करता है। इसी सुख के लिये वह विपत्ति के पहाड़ को सिर पर लाद लेता है। इन सब बातों में सत्य का रत्ती भर भी अंश नहीं था, ये सब मैंने झूठी बातें कही किन्तु तुम्हें दु:ख पहुँचाने के अभिप्राय से नहीं कहीं थीं। वैसे ही हँसी

विनोद में कह दी।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! जब रुक्मिणीजी को विश्वास हो गया, कि भगवान् मुझे छोड़ना नहीं चाहते वैसे ही हँसी विनोद कर रहे है, तब उन्हें सन्तोप हुआ, उनके मन में जो प्रियतम वियोग का भय बैठ गया था, वह निकल गया।

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! हँसी भी हँसी के ही ढंग से होता है। गुलगुली उतनी ही करनी चाहिए जिससे हँसी आती रहे। अधिक करदी तो फिर हँसी मे खँसी हो जाती है। भगवान् ने यह जो त्याग देने की, दूसरे के यहाँ चले जाने की बात कहदी, यह अति कर दी। ऐसा उन्होने क्यों किया ?"

सूतजी बोले—"भगवन् ! इन नटनागर की बातों के सम्बन्ध में कोई कुछ निश्चित रूप से कह नहीं सकता। इनके एक कार्य में अनेक गूढ़ अभिप्राय छिपे रहते हैं। एक कारण तो भगवान् ने स्वयं ही बताया, कि मैं तुम्हारे क्रोध युक्त मुख की शोभा देखना चाहता था, इस लिये ऐसा कह दिया।

दूसरे भगवत्! प्रेममें बार बार इस बात को सुनने की इच्छा बनी रहती है, कि मैं तुम्हें ही एक मात्र चाहता हूँ, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कोई नहीं। यह बात जितनी ही बार सुनी जाती है, उतना ही सुख होता है इस लिये भगवान् ने स्वभाववश यही सब सुनने को कह दी।

तीसरा यह भी है, क्रोध से, प्रेम की लड़ाई से, मनसे,रुठनेसे प्रेम निखर जाता है। जैसे मीठा खाते खाते अरुचि हो जाय, तो तनिक चरपरी कड़ुवी चटनी चाट लेने से स्वाद बदल जाता है, जैसे बहुत दिन रखे रहने से ताँबे पर मैल जम जाता है, खटाई से रगड़ने से वह फिर चमकने लगता है, उसी प्रकार अत्यन्त कोपके अनन्तर जो प्रेम होता है उसमें विलक्षणता नूतना आ जाती है, उसी नूतनता को लाने के लिये भगवान् ने ऐसी बातें कही।

चौथा कारण यह भी हो सकता है, कि ऐसा कहकर भगवान् रुक्मिणीजी के मुखसे पतिव्रताओं का धर्म कहलवाना चाहते थे, जिससे अन्य स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण करे लोक का कल्याण हो क्यों कि भगवान् की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी प्रत्येक चेष्टा जगत् के कल्याणके ही निमित्त होती है। वे हँसी मे, विनोद में, क्रोध में, तथा अन्य भावोंमें भावित से होकर जो भी क्रीड़ा करते है, उसमें लोकहित सन्निहित रहता है।

पाँचवा कारण यह भी है, कि भगवान् कभी भी रुक्मिणीजीसे विलग नही होते थे, इसलिये उन्हें यह अभिमान हो गया था, कि मैं अत्यत ही सुन्दरी हूँ, भगवान् मेरी मुट्ठीमें है। ये मेरे ऐसे वश में हैं, कि पल भर भी मेरे बिना नही रह सकते। अतः उनके इस अभिमान को दूर करने के लिये भगवान्ने ऐसी चुभती हुई बातें कह दी। फिर जब उन्हे अधिक व्याकुल देखा तो कह दिया। 'ये सब बातें झूठ है, इनमें सत्यका अंश त‍िक भी नहीं। किन्तु रुक्मिणीजी का तो अभिमान चूर हो गया था, वे बोलीं-- "महाराज! आपने एक को छोड़कर सब बातें सत्य ही कहीं। इनमें झूठ कुछ भी नही था।"

भगवान्ने उपेक्षा के स्वरमें कहा—"हँसीकी बातोंमें सत्यता थोड़े ही होती हैं, वे तो वैसे ही विनोदके लिये मनोरंजनके लिये कही जाती है।"

रुक्मिणीजी बोली--"यहबात संसारी विषयी पुरुषोंके विषयमें सत्य भले ही हो सकती है किन्तु आप तो सत्य स्वरूप हैं सत्य संकल्प हैं। आप हँसी में भी जो कहेंगे, वह सत्य ही होगा। अब आपने जो जो बातें कहीं हैं, मैं उनका उत्तर देती हूँ सुनिये।"

भगवान् तो चाहते ही थे, हमारी प्रिया हमसे हृदय खोलकर बातें करे। अपने प्रेमी की बातें चाहें जैसी भी हों, उन्हें चाहें जितने बार सुना हो, उसके मुख से सुननेमें बड़ी अच्छी लगती

हैं। चित्त चाहता है, उसके समीप बैठकर उसके मुख को देखते हुए उससे कुछ न कुछ सुनते ही रहें। इसीलिये भगवान् बोले— "अच्छी बात है, सुनाओ।"

रुक्मिणीजी बोली—"अच्छा, सुनिये। पहिली बात तो आपने यह कही, कि हमारी तुम्हारी समता नहीं। जोड़ी मिलती नहीं। यह सर्वथा सत्य ही है। ऐश्वर्यादि गुणो से युक्त सर्व व्यापक सर्वेश्वर, सर्व समर्थ सच्चिदानन्द स्वरूप आप और कहाँ विकृत तीनों गुण वाली अज्ञजनों द्वारा उपासित उलूकवाहिनी मैं। मेरे आपकी समता ही क्या। मैं आपकी पत्नी बननेके सर्वथा अयोग्य हूँ, किन्तु आपने कृपा करके मुझे अपना लिया है। इसमें मेरी कोई विशेषता नहीं। आपकी कृपालुता ही है।

अच्छा, दूसरी बात आपने यह कही थी, कि "हम राजाओंके भय से भागकर समुद्र के बीच में आकर बसे है।" सो यह भी सर्वथा सत्य ही है। क्योंकि यह जो त्रिगुणमय प्रपञ्च है इसमें कलह होती ही है, उसके भय से आप चैतन्य घन आत्मरूप से अन्तःकरण रूपी अगाध समुद्र में आकर सुख पूर्वक शयन करते है। समस्त देहरूपी पुरियों में शयन करने के कारण आप पुरुष कहाते हैं।

एक बात आपने यह भी कही थी, कि "हमारा सब बलवान् राजाओसे वैर बँध गया है, सो यह भी बात सत्य ही है। क्योंकि कुत्सित इन्द्रियगण रूप जो ये नृपतिगण है इनसे सदा ही आपकी कलह रहती है। जिह्वा अपनी ओर खीचती है,कान अपनी ओर खींचते है सभी इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों की इच्छा करती है, विषय प्राप्त न होने से विद्रोह करती हैं। आप इन सबको जीत लेते हैं इसीलिये आप हृषीकेश कहाते हैं।

आपने कहा—"हमने राज्यसिंहासन को छोड़ दिया है, सो यह भी असत्य नहीं है, घोर तमोगुण ही राज्यसिंहासन है, इसे

तो आपके चरणाश्रित भक्त ही त्यागकर वन में चले जाते हैं। जब आपके भक्तों की दृष्टि में भी जो वस्तु हेय है अत्यंत त्याज्य है, उसे आप ग्रहण कैसे कर सकते हैं।

आपने यह भी कहा—"हमारा मार्ग अस्पष्ट है, हम लोक-विरुद्ध मार्गसे चलने वाले हैं" सो यह भी सत्य है, क्योंकि आपके चरण कमलकी रेणुका आश्रय करने वाले भक्त जन तथा योगि-वृन्द सब प्रकार के विधि-निषेध रूप बन्धन से मुक्त होकर स्व-च्छन्द विहार करते है। वे लौकिक वैदिक किसी भी कार्यमें लिप्त नही होते, लोक विरुद्ध भी व्यवहार करते देखे गये है। जब आपके चरणाश्रित सेवक ही विधि-निषेधके बन्धन में नही हैं तो आपको लौकिक बन्धन कैसे बाँध सकते है, आपके मार्गको जान कौन सकता है ?"

आप जो अपनेको निष्किञ्चन बताते हैं, यह बात भी असत्य नही। आप दरिद्रताके कारण निष्किञ्चन हो सो बात नहीं। दरि-द्रता तो आपकी बड़ी साली है, किसी ने उसे आश्रय नहीं दिया, तो आपने उसे आश्रय दिया। उसके घर को बसाया बहनोई के नाते को निभाया। असुर भी आपकी शरणमें आकर सुखी होते हैं। पशु, पक्षी, कीट, पतंग तथा सभी के आश्रय आप ही हैं। क्योंकि आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यही निष्किञ्चनता आपमें विद्यमान है। देखिये आपइन्द्र, वरुण, कुबेर तथा अन्य विश्व वन्दितदेव सबके द्वारा पूजित है। वे जगत् पूज्य देवगण निरन्तर आपकी पूजा करते रहते है। वे आप में अनन्य भक्ति रखते है आपभी उन्हें अपना आत्मीय समझकर कृपा करते है। वे आपके अंश ही हैं। जो लोग धन सम्पत्ति आदि के मद में अन्धे हो रहे है वे आपको भूल जाते है। वे नही जानते काल रूप से आप ही उनकी आयुको नाशकर रहे है। वे निरन्तर प्राणोंके पोषणमें ही लगे रहते है। आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं। आपसे पर कोई वस्तु

नहीं इसलिये आप निष्किञ्चन है।

आपने एक बात यह कही कि सम्बन्ध समानसे ही हो सकता है। यह बात सोलहू आने सत्य है। जो स्त्री पुरुष विषयों में ही आसक्त हैं। काम सम्बन्ध को ही सर्वश्रेष्ठ सुख मानते हैं, उन सुख दुख आदि द्वन्दों में फँसे रहने वाले विषयी लोगों से आपका सम्बन्ध हो ही कैसे सकता है। आप तो परम पुरुषार्थ स्वरूप हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी के आप स्वामी हैं, सभी के उद्‌गम हैं। जो लोग त्रिवर्गों में ही फँसे रहते हैं वे जन्मते और मरते रहते हैं। उनसे आपका नित्य सम्बन्ध होता नहीं। जो सब प्रकारकी कामनाओंका परित्याग करके एकमात्र आपकी ही शरण हो जाते है, ऐसे अनन्य भक्त सर्वस्व त्यागी विवेक वैराग्यवान् पुरुषों से ही आपका सेव्य सेवक सम्बन्ध हो सकता है। यद्यपि मुझ मे कोई गुण नहीं है। मैं आपकी समता नहीं कर सकती, तो भी आपने अपनी कृपालुतावश मुझे अपनाया है।"

आपने पूछा—"तैने अन्य इतने बड़े बड़े राजाओंको छोड़-कार मुझे ही वरण क्यों किया ?" सो, इसका भी उत्तर सुनिये। देखिये मैं तो अज्ञा हूँ, आपकी महिमाको जान नहीं सकती, किन्तु जो न्यस्तदण्ड सन्यासी है। जिन्होंने प्राणि मात्रको अभय-दान दिया है। उन बड़े बड़े विवेकी वैराग्यवान् विरक्त विद्वानों ने आपके प्रभाव का वर्णन किया है। आप सम्पूर्ण जगत् के आत्मस्वरूप है। आपने भक्तों को आप अपने ही समान बना लेते हैं। यही नहीं उन्हें आप अपने से भी अत्यधिक आदर देते हैं। इसीलिये मैंने आपको वरण किया है। ये शिशुपाल, दन्त-वक्र और जरासन्ध आदि तुच्छ राजाओं की तो बात ही क्या इन्द्रादिलोक पाल, अज शंकर तथा अन्य भी अपनेको ईश मानने वाले बड़े बड़े भुवनपतियोंके समस्त भोग आपके भृकुटि विलाससे

उत्पन्न हुए कालवेग से नष्ट हो जाते हैं, जब इन ईश्वरोंकी विभूति भी स्थाई नहीं है, तो इन क्षुद्र नरपतियों के धन वैभव के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ?

हाँ, एक बात में मैं आपसे सहमत नहीं यह आपने छिछोरपन में आकर कह दिया है। उसका मैं विरोध करूँगी, अवश्य करूँगी और भरी सभा में करूँगी। आपने जो कहा—"राजाओं के भय से समुद्र में आकर बसे हैं, हम निर्बल है।" यह आपकी भूल है। देखिये, आप निर्बल होते तो ऐसा साहस कभी भी न कर सकते थे। जिस जरासन्ध के भय से भयभीत होकर आप अपने को भगोड़ा बताते हैं। मेरे विवाह के समय वह जरासन्ध भी तो वहीं था उसके समस्त साथी नरपति भी वहाँ समुपस्थित थे। पृथिवी के सभी शूरमानी नृपतिगण उस अवसर पर आये थे। आप वहाँ अकेले ही रथ पर चढ़कर पहुँच गये। वहाँ से आप सबके देखते देखते सबकी आँखों में धूलि झोंक कर मुझे उसी प्रकार अपना भाग मानकर उठा लाये जैसे समस्त पशुओं के बीच में से सिंह अपने भाग को उठा लाता है। जब आप अपने शार्ङ्ग धनुष की टंकार की, तब शत्रुओं के हृदय विदर्ण हो गये। जरासन्ध आदि को भागते ही बना।"

आपने कहा—"तुम मेरे साथ रहोगी, तो दुखी होगी। तुम्हें सुख प्राप्त न होगा, सो यह बात भी आपकी उचित नहीं। यदि राज्य पाट, धन वैभव मे ही सुख होता, तो इतने बड़े प्रतापी महाराजा अङ्ग,सहस्रों अश्वमेधादि अज्ञ करने वाले महाराज पृथु, जिनके नाम से यह समस्त देश भारतवर्ष कहलाता है वे महाराज भरत,इतने बड़े वैभवशाली महाराज ययाति और महान् यशस्वी राजर्षि गण तथा अन्यान्य भी बहुतसे सम्राटगण अपने अपने एक छत्र राज को छोड़कर तथा धन, वैभव, और विषय सामग्रियोंको छोड़कर आपकी प्राप्ति के लिये वनोमें क्यों जाते। यदि राज्य

छोड़ने से इन्हें कष्ट होता, तो दूसरे इनके पथ का अनुकरण क्यों करते ? ऐसा करके किसी ने भी क्लेश नहीं उठाया। फिर मैं आपके चरणों की शरण में आकर क्यों कष्ट उठाऊँगी। आप तो सुखस्वरूप हैं। सुखस्वरूप के समीप जाने से तो सुख ही मिलेगा।

अन्त में आपने कहा—"तुम चाहो तो अब भी किसी अन्य राजकुमार को वरणकर लो, किसी वैभवशाली का पल्ला पकड़ लो। सो, हे स्वामिन् ! रसगुल्ला खाकर कौन कीड़ा पड़े सड़े गुड़ को खाने की इच्छा करेगा? कौन विमान पर चढ़कर गधे पर चढ़ना चाहेगा। कौन कपिला के दूध को पीकर आक के दूध को खाने की इच्छा करेगा ?कौन अमृत को पीकर विष पीना चाहेगा? कौन राजसिंहान को त्यागकर काटों में बैठना चाहेगा ? इसी प्रकार सत्पुरुषों द्वारा कीर्तित, मोक्ष के धाम तथा लक्ष्मी जी के आश्रय स्थान आपके चरणारविन्दों की गन्धको सूँघकर फिर इन मरणधर्मा नर पशुओं की पत्नी कौन बनना चाहेगी, कौन ऐसे अज्ञ पुरुषों का आश्रय ग्रहण करना चाहेगी, जिन्हें निरन्तर काल का अधिकाधिक भय बना रहता है।"

आप पूछते हैं—"तुमने मुझमें क्या विशेषता देखी, किस गुण पर रीझकर तुमने मुझे अपना पति बनाया, सो इसका भी उत्तर सुनिये—"आप इस सम्पूर्ण चराचर विश्व के एक मात्र अधीश्वर हैं, आप सबके आत्मस्वरूप हैं। आप समस्त लोक परलोक सम्बन्धी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आप सुख-स्वरूप होने से परम प्रेमास्पद हैं। आनन्दस्वरूप होने से आनन्द-दाता हैं। इन्ही सब कारणोंसे मैंने समस्त विषयोंके कीट राजाओं को छोड़ कर आपको वरण किया है। अतः हे अच्युत ! हे जगदीश ! हे कमललोचन ! हे भूमन ! हे प्रभो ! हे विभो ! हे भक्तवत्सल ! हे अशरणशरण ! हे गदाग्रज ! हे परमेश्वर ! आपके पुनीत पाद पद्मों में मेरी यही प्रार्थना है, यही मेरी अभि-

लाया है, कि भाग्यवश मैं चाहे जिस योनि में जाऊँ। कर्मानुसार मुझे सूकर कूकरकी कोई भी योनि मिले उन सब योनियोंमें सदा मै आपके चरणोंकी शरणमें ही बनी रहूँ। एक क्षणको भी आपका विस्मरण मुझे न हो। क्योंकि आप भक्तवांछा कल्पतरु हैं, शरणागत प्रतिपालक है। आप अपने आश्रितोंके मिथ्या संसार भ्रमको निवृत्त करने वाले हैं तथा उन्हें अपना स्वरूप तक दे डालने वाले है।

आप कहते है–"तुम शिशुपालके यहाँ फिरसे चली जाओ।" सो, प्रभो! आपको पाकर फिर मैं स्वेच्छासे नरकमें जाऊँ? ऐसे काठके उल्लू, गर्दभोके समान गृहस्थी का बोझा ढोने वाले, दासों की भाँति स्त्रियो की सेवा करने वाले, बैलों के समान गृहस्थी रूपी रथके जूए में जुते रहने वाले, बिल्ली के समान विषय रूपी आहारकी ताड़में इधरसे उधर घूमते रहने वाले, गिद्ध के समान स्त्रियोंके हाड़ मांसके बनी तुच्छ शरीर पर दृष्टि लगाये रहनेवाले, और कुत्तोंके समान सबसे तिरस्कृत होने वाले, ये संसारी पति मंदभागिनी स्त्रियोंको ही प्राप्त हो। मै तो ऐसे विषयियोंकी ओर आँख उठाकर भी देखना नही चाहती। जिनके कानोमें भगवान्‌के सुमधुर नाम नही पड़ते, जो सर्वत्र कीर्तनीय आपके नामोंका कीर्तन नही करते, जो शिव ब्रह्मादिक देवो की सभामें गाये जाने वाले आपके गुणोंका गान नही करते, ऐसे हतभागी पुरुष हतभागिनी स्त्रियोंके ही पति हो।

जिन स्त्रियों ने आपके नामगान रूपी अमृतका स्वाद नहीं चखा है, जिसने आपके चरणकमल मकरन्दका आघ्राण नहीं किया है, जिसके कानो में आपकी कमनीय कथा नही पड़ी है, ऐसी ही मूढ़ा स्त्री ऐसे विषयलोलुप पुरुषको अपना पति बनाना चाहेगी, वही उसके बाहरी रूप पर रीझकर उसे अपना अङ्ग अर्पित करनेको उत्सुक होगी। यह शरीर है क्या, इसके ऊपर

ऊपर चमड़ा लिपटा हुआ है, भीतर से निरन्तर मल निकलता रहता है। चर्मके ऊपर केश हैं, रोम है श्मश्रु है, नख हैं। भीतर मांस है, अस्थियाँ हैं, रक्त, कृमि, विष्ठा, वात, पित्त व कफ तथा अन्यान्य प्रकारके मल भरे पड़े हैं। यह शरीर क्या है अपवित्र वस्तुओंका एक पुञ्ज है। भीतर छिपी वस्तुएँ निकाल दी जाय, तो वमन हो जाय उनकी ओर कोई देख भी नहीं सकता। ऐसे अपवित्र देहमें जिनकी आसक्ति है, उसे ही आलिङ्गन करके जो सुखका अनुभव करती हैं, वे स्त्रियाँ तो आपकी गुणमयी माया द्वारा ठगी गयीं। वे तो दुखमें सुख, अनित्यमें नित्य और नाशवान्‌में अविनाशीकी कल्पना करती है। वे स्त्रियाँ हतभागिनी है और वे पुरुष भी मंदभागी हैं, जो स्त्रियों के बाहरी अङ्गों को देखकर उन पर आसक्त हो जाते है।

आप तो आप्तकाम है। आप मेरे अधीन हों या मेरे रूप पर आसक्त हों, सो भी बात नहीं है। आप तो आत्माराम है, अपने आपमें ही रमण करने वाले हैं। किन्तु मेरे तो सर्वस्व आप ही हैं। आप मुझे ऐसा वर दें कि मेरा आपके चरणों में सहज अनुराग हो।"

भगवान् अब तक चुपचाप थे, रुक्मिणीजी व्यर्थकी बातें बक रही थीं, अपना पांडित्य प्रदर्शित कर रही थी, भगवान् चुपचाप सुनते रहे। जब उन्होने कहा—"आप ही मेरे सर्वस्व हैं, आपके प्रति मेरा सहज अनुराग है" तो यही तो भगवान् सुनना ही चाहते थे, यही तो उन्हें अभीष्ट था। अतः बोले—"प्रिये ! तुम ऐसी बातें क्यों कह रही हो। मैं तो चकोरकी भाँति तुम्हारे मुखचन्द्रको निरन्तर जोहता रहता हूँ। मैं तो तुम्हारा मुख देखते देखते कभी तृप्त ही नहीं होता।"

इस पर रुक्मिणीजी ने कहा—"आप तो गुणातीत हैं। इन

वृद्धि के मिनित्त आप उत्कट रजोगुण को स्वीकार कर लेते हैं। फिर उसी भाव में भावित से होकर सतृष्ण नयनों से मेरी ओर देखते रहते हैं। बार बार कहते हैं तुम्हें देखते देखते मेरी तृप्ति ही नहीं होती' यह सब आपकी क्रीड़ा है विनोद है, मानव लीला कर रहे हैं, इसे भी मैं आपकी परम कृपा समझती हूँ, मेरे ऊपर अनुग्रह करके ही आप ऐसा कौतुक करते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब भगवान् ने देखा, रुक्मिणीजी का शोक, भय तथा आशंका सभी निवृत्त हो गये हैं, तो वे उनकी बातों का समर्थन करने लगे और उनके प्रेम की सराहना करने लगे। अब यह प्रसङ्ग आगे कहूँगा।"

### छप्पय

समुझि रुक्मिनी हँसी शोक दुख हियको त्याग्यो।
प्रियको कठिन विनोद दूघ तातो सो लाग्यो॥
बोलीं–'तुम अति गुनी निरगुनी हौं हूँ स्वामी।
हौं अबला अति अधम आप अज अन्तर्यामी॥
नित नित नूतन नारि हौं, तुम प्रभु पुरुष पुरान हो।
हौं तिरिया तिरगुनमयी, आप अजित भगवान् हो॥

# भगवान् का रुक्मिणी को आश्वासन

( १११६ )

न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु,
पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ।
प्राप्तान्नृपानवगणय्य रहो हरो मे,
प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ६० अ० ५५ श्लोक )

छप्पय

नाशवान नर छाँड़ि वरे तुम अज अविनाशी ।
ज.म जनम हौ रहूँ चरन कमलनि की दासी ॥
त्वचा, रोम, नख, केश मूत्रमलयुत निन्दित तन ।
तजि विषयिनि को संग लगायो प्रभु चरननि मन ॥
अब फिरि कबहूँ नहीं, कहें वचन वज्र सम अति कठिन ।
प्रान प्रियाको प्रेम लखि, हँसि बोले करुनायतन ॥

हँसी की बातो से जब अपना कोई आत्मीय बुरा मान जाता है तो उसका मन करने के लिये उसे प्रसन्न रखने के लिये भाँति

*श्रीभगवान् कह रहे हैं—"हे मानिनि ! तुम्हारे समान प्रणयिनी गृहिणी अपने समस्त गृहों मे कोई दिखाई नही देती । देखो तुमने मेरी प्रशंसा सुनकर अपने विवाह के समय एकत्रित हुए समस्त राजाओं को कुछ भी न गिनकर मेरे पास तुमने ब्राह्मणों को गुप्त सन्देश वाहक बना कर भेजा था।"

भाँति की बातें बनानी पड़ती हैं। अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा सिद्ध करना पड़ता है। जैसे वह प्रसन्न हो सके वैसे ही व्यवहार करना होता है। उसका रुख देखकर उसकी झूठी सच्ची प्रसन्नता रखकर उसे सन्तोष देना पड़ता है। जो इस कला में निपुण नही होते वे सर्व प्रिय हो नहीं सकते। उन रूखे स्वभावके लोगों से किसी का प्रेम स्थाई हो नहीं सकता। प्रेम मे खरी बात कहना दोष है। सत्य भी कहे तो मधुरता के साथ कहे। प्रेम की वृद्धि मृदु और मधुर वचनों से तथा अनुरागयुक्त व्यवहार से ही होती है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब रुक्मिणी जी ने भगवान् के वचनों को उलटकर उनके आध्यात्मिक उत्तर दिये। दोनों में बातें होने से फिर पूर्ववत अनुराग बढ़ गया, तो भगवान् बोले प्रिये! मैंने जो तुम से यह बात कह दी, कि 'तुम किसी अनुरूप वर को वरण करलो, इससे तुम्हारे हृदय में बड़ी ठेस लग गयी। मैंने बिना समझे बूझे यह बात कह दी। हँसी हँसी में मेरे मुख से सहसा यह बात निकल गयी। वास्तव में स्त्रियों के लिये ये शब्द बहुत ही अपमान जनक हैं।"

रुक्मिणीजी ने प्रेम के साथ कहा—"नहीं प्राणनाथ! अपमानजनक क्या है बहुत स्थान में ऐसा होता है, कि कन्या प्रेम किसी और से करती है और उसे वलपूर्वक दूसरा ले जाता है। जैसे काशिराज की कन्या 'अम्बा मन से प्रेम तो राजा शाल्व से करती थी, किन्तु उसे अपने छोटे भाई के लिये भीष्म बलपूर्वक हरण कर लाये। किन्तु मेरे विवाह में तो ऐसी बात हुई नही। मैं तो आपको ही सदा से चाहती थी। उस समय आप पधार कर मेरा उद्धार न करते, तो मेरे भाई पिता मेरा बलपूर्वक दूसरे के साथ विवाह कर देते, उस समय आत्म हत्या के अतिरिक्त मेरे पास दूसरा क्या उपाय था। विवाह हो जाने पर तो स्त्री उसी की

हो जाती है, जीवन भर उसे निभाना ही पड़ता है। हाँ, कुछ कुलटा स्त्रियाँ ऐसी भी होती है, कि उनका विवाह किसी के साथ हुआ है और विवाह हो जाने पर भी वे पर पुरुषों से सम्बन्ध रखती हैं। नित्य नये पुरुषों से अनुराग करती हैं। ऐसी व्यभिचारिणी असती स्त्रियों का बुद्धिमान पुरुषों को कभी भी विश्वास न करना चाहिए। ऐसी पर पुरुषगामिनी कामिनी अपने वस्त्रों में छिपी सर्पिणी के समान हैं, न जाने कब वह अनर्थ कर डाले। ऐसी कुलटा कामिनियों का भरण पोषण करने से मनुष्य लोक परलोक दोनों से पतित हो जाता है।

यह सुनकर भगवान् खिल खिलाकर हँस पड़े और हँसते हुए बोले—"प्रिये! तुम्हारी ये मीठी मीठी अनुराग भरी बातें सुनने के लिये ही तो मैंने यह छेड़छाड़ की थी। तुम जानती हो मृदङ्ग में जब तक थप्पी न मारो, तब तक उसमें से मधुर स्वर निकलता नहीं। वीणा के कानों को ऐंठकर जब तक उसके तारों पर आघात न करो, तब तक शुद्ध स्वर निकलता नहीं, इसी प्रकार जब तक मैं तुमसे चुभती हुई बातें न कहता, तब तक तुम बोलती नहीं लजाकर नीचे देखती रहतीं। मेरे कहने पर तुमने मेरे शब्दों को लेकर उनकी कैसी युक्तियुक्त पूर्ण व्याख्या की। यह सब तुम्हारा कथन सत्य ही है। मैं तुम्हारे प्रेम के प्रति शङ्कित नहीं हूँ। न मुझे तुम्हारे स्नेहमें किसी प्रकारका सन्देह ही है। तुम मेरी अनन्य भक्ता हो। सकाम भाव की निवृत्ति के निमित्त तुम मुझसे जो जो कामनायें करती हो, वे सब तुम्हें नित्य प्राप्त हैं। हे कल्याणि! कुतूहल वश मैंने ये सब बातें कह दीं। मैं तुम्हें ऐसी चुभती बातें कहकर विचलित करना चाहता था, किन्तु तुम तिल मात्र भी विचलित नहीं हुईं।

रुक्मिणीजी ने कहा—"तुम्हें यह सूझी क्या? हँसी करने के लिये तुम्हें कोई और बात नहीं रही थी क्या?"

भगवान् बोले—"मैं तुम्हारे प्रेम की परीक्षा करना चाहता था,तुम्हारे मुखसे पति प्रेम और पातिव्रतका उज्वल माहात्म्य सुनना चाहता था,सो सुन लिया। तुमने जो मुझे मोक्षका अधीश्वर बताया यह सत्य ही है। सब लोग मेरा ही भजन करते है, मैं ही सबके कर्मोंका फल दाता हूँ। जो पुरुष धन स्त्री पुत्र तथा यश आदि की कामना से सकाम भाव से मेरा पूजन करते है। मेरे उद्देश्य से नाना प्रकारके जप, तप, व्रत तथा उपवासादि करते हैं वे मानों मेरी मोहिनी माया के फन्दे मे फस कर मोहिती हो गये है। तुम सोचो, मेरे भजन का फल तो यह होना चाहिये कि सदा के लिए संसार का आवागमन मिट जाय, किन्तु इसे न चाहकर मनुष्य मोक्ष तथा सम्पूर्ण सम्पदाओं के आश्रय मुझ जगदीश्वर से केवल सांसारिक विषय सम्बन्धी लौकिक सम्पत्ति ही चाहते है पराभक्ति अथवा संसार सागर से विमुक्ति नहीं चाहते, वे मंदभागी हैं, कृपण है, दीन है, भूले हुए हैं। ये आहार निद्रा मैथुनादि सुख तो सूकर कूकर योनियों मे तथा नरकादि लोकों मे भी प्राप्त है।"

रुक्मिणी जी ने कहा—"प्रभो ! जीव जानता है, इन विषय सुखों में शान्ति नहीं फिर भी इन्हें बार बार क्यो चाहता है। क्यों लोग इन हाड़ मांसके शरीरों मे ही रमण करने को उत्तम समझते हैं ?"

भगवान् ने कहा—" प्रिये ! अनेक जन्मों की वासनाओं के कारण जीव दुख में ही सुख समझता है। भाग्यहीन पुरुषों का मन सदा विषय जन्म पदार्थों में ही आसक्त रहता है। विष के कीडेको विष ही अच्छा लगता है, मल तथा पीवके कीड़े उसीमें रमण करने से सुखका अनुभव करते है। इसी प्रकार जिन का मन ससारी विषयोंमे ही आसक्त है उन्हें नरककी प्राप्ति ही सुख कर जान पड़ती है।"

रुक्मिणीजीने कहा—"मुझे तो हे अशरण शरण ! ऐसा

वरदान दीजिये, जिससे आपके चरणोंकी सेवा के अतिरिक्त कुछ भी न सुहावे।"

भगवान् ने कहा—"प्रिये ! सेवा धर्म बड़ा कठिन है, तिसपर निष्काम सेवा तो और भी अधिक कठिन है। यह बड़े ही हर्ष की बात है कि तुमने उसी संसारी बन्धन से सदा के लिये विमुक्त करने वाली निष्काम सेवाको अब तक निरन्तर अत्यंत लगन के साथ की है। जो कामी पुरुष है उनसे ऐसी सेवा होना अत्यंत दुरुह है। फिर जो इन्द्रियों की तृप्ति करनेमें ही प्रवृत्त होने वाली दूषित हृदय की स्त्रियाँ हैं उनके विषय में तो कहना ही क्या ? वे काम सुखको ही सर्व श्रेष्ठ सुख समझने वाली कुलटा कामिनी नाना प्रकारके ढोंग बनाकर विविध भाँतिके छल छन्द किया करती हैं। और इधर उधर इन्द्रिय तृप्तिके ही निमित्त घूमती रहती हैं। तुमने तो सेवा द्वारा मुझे क्रय कर लिया है सेवा मूल्य देकर मुझे मोल ले लिया है "

रुक्मिणी जी बोली—"महाराज ! जैसी आपकी लाखों दासियाँ हैं वैसी ही एक दासी मैं भी हूँ मैं सेवा कर ही क्या सकती हूँ आपके चरणों की रज की भी बराबरी नहीं कर सकती।

भगवान् बोले—"नहीं प्रिये ! मैं सत्य सत्य कहता हूँ। मेरे सोलह सहस्त्र एकसौ आठ घरोंमें एकसे एक सुन्दर रानियाँ है किन्तु अपने व्यवहार से निष्छल प्रेमसे अनुपम अनुराग से तथा निष्काम सेवासे जिस प्रकार तुम्हारे मैं वश में होगया हूँ वैसा किसी के वश में नहीं हुआ। तुम्हारे सदृश प्रणयिनी गृहिणी मुझे दूसरी दिखाई ही नही देती। तुम्हारा भी मेरे प्रति सहज अनुराग है। यदि ऐसा न होता, तो तुम विवाह के समय उस वृद्ध ब्राह्मण को भेज कर मुझे क्यों बुलातीं क्यों उन बड़े बड़े राजाओं को छोड़ कर मुझे अपनातीं। जब तुमने अपना दूत मेरे पास

भेजा तभी मैं समझ गया तुम्हारा मेरे प्रति निष्छल हार्दिक गूढ़ अनुराग है। इसलिये मैं समाचार सुनते ही तुम्हारे पुरमें दौड़ आया और तुम्हें सबके सामने से लेकर भाग आया।"

रुक्मिणीजीने कहा—"इसमें महाराज ! मेरी क्या बड़ाई है आपके सौदर्य माधुर्य तथा गुणों में आकर्षण ही ऐसा है, कि कौन कन्या आपको अपना पति बनाना न चाहेगी ? यह सबतो आपके आकर्षण का फल है।"

भगवान् बोले—"अच्छा, मेरे आकर्षण का ही फल सही, किन्तु अपनी इच्छाको मेरी इच्छामें मिला देना यह सामान्य बात नहो। अपने इष्टकी किसी बात मे बुरा न मानना, अनन्यता का यही सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। देखो, विवाह के समय तुम्हारा भाई द्वेष वश मुझसे लड़ने आया था। मैंने उसे जीत लिया और तुम्हारे सम्मुख ही उसे विकृत बना दिया, तुमने मेरे शील संकोच से कुछ भी नही कहा। फिर अनिरुद्ध के विवाह में द्यूत क्रीड़ा के समय बलदाऊ जी ने उसे मार भी डाला, तो भी तुमने कुछ नही कहा। इतनी सहनशीलता किसी अन्य स्त्री में सम्भव हो सकती है क्या ? तुमने सोचा—"यदि मैं कुछ कहती हूँ, तो घर में ही विरोध हो जायगा, इसी भय से तुमने इन असह्य दुःखों को चुप चाप सहन कर लिया, इनका प्रतिवाद तक नहीं किया। तुम्हारा इन उदारतापूर्ण बातो से ही मैं तुम्हारे आधीन हो गया। तुमने अपने मृदुल मधुर स्वभाव से ही मुझे मोल ले लिया।"

रुक्मिणीजी यह सुनकर लज्जित हुयीं। भगवान् रुके नही। वे कहते ही गये। तुम्हारा मेरे प्रति अनुराग अनुकरणीय था। एक राजकन्याके हृदयमें इतना साहस होना परम प्रशसनीय है। तुम्हारी बरात आने में दो चार दिन की ही देरी थी, विवाहकी समस्त तैयारियां हो गयी थीं, किन्तु तुम अपने निश्चय से तिल

भर भी विचलित न हुई। सुमेरु के समान अपने संकल्प पर दृढ़ अटल बनी रही। तुमने माता पिता के बिना पूछे ही मेरे पास पत्र लिखकर दूत भेज दिया। जब मेरे पहुँचने में कुछ विलम्ब हुआ, तो तुम इस सम्पूर्ण संसार को मेरे बिना सूना सूना ही समझने लगी। तुमने निश्चयकर लिया था कि यदि देवी पूजन के समय तक मैं न पहुँचूँगा। तो मैं अपने प्राणों को त्याग दूँगी। बताओ तुम्हारे इस अलौकिक प्रेम का मैं क्या प्रत्युपकार कर सकता हूँ। तुमसे कैसे उऋण हो सकता हूँ। होना भी नहीं चाहता तुम्हारा सदा ऋणियाँ बने रहने में ही मुझे सुख है। ऋणियाँ बने रहने से तुम्हारा यह अद्भुत प्रेम सदा स्मरण बना रहेगा, और उसकी सदा प्रशंसा करता रहूँगा। तुम्हारे प्रगाढ़ स्नेह का निरन्तर अभिनन्दन करता रहूँगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो भगवान् की ऐसी स्नेह में सनी, अनुराग में भीगी और प्रेम में पगी बातोंको सुनकर रुक्मिणीजी लज्जित हो गयी उन्होने मुख से कुछ भी नही कहा। अपना सिर भगवान् के पाद पद्मों में रख दिया, भगवान् ने उन्हें प्रेम से प्रकम्पित करों से उठाकर स्नेह भरित हृदय से लगा लिया। मुनियो! इसी प्रकार भगवान् अन्य रानियों से भी बड़ा सरस हँसी विनोद करते रहे।"

शौनकजी बोले—"सूतजी और रानियों के साथ जो हँसी विनोद किया वह भी हमें सुनाइये।"

सूतजी हँस कर बोले—"अजी ! महाराज ! हँसी विनोद का कोई अन्त थोड़ा ही है । सोलह सहस्र रानियाँ है, कहाँ तक सुनाऊँ । अच्छी बात है, सत्यभामाजी के साथ जो प्रेम मय सम्वाद हुआ उसे और सुनाकर इस विषय को समाप्त करूँगा ।"

### छप्पय

मानिनि ! लीयो मोल प्रेम सेवा करि मोकूँ ।
नहीं दै सकूँ कछु प्रिये ! बदलेमें तोकूँ ॥
पौत्र और निज ब्याह समय जो धीरज धार्यो ।
तातें हौं बनि गयो भामिनी ऋनी तिहारो ॥
पति पत्नी महँ प्रेमको, बात भयी दोनों मिले ।
पाइ परस्पर परस तनु, उभय हृदय सरसिज खिले ॥

—❀:::❀—

# श्रीकृष्ण सत्यभामा सम्वाद

( ११२० )

तथान्यामामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ।
आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मांल्लोक गुरुर्हरिः ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ६० अ० ६५ श्लोक )

छप्पय

ऐसे ही इक दिवस सत्यभामा सँग नटवर।
खेल खेल महँ कह्यो पुण्य कातिक हरि-वासर ॥
नारदकूँ दै तुलादान सतभामा आई।
पूछें निज सौभाग्य भये कस श्याम गुसाईं ॥
बोले हरि--'कातिक सदा, अरु व्रत हरिवासर करयो।
ता तै मम अर्धाङ्गिनी, प्रिया बनीं मम मन हरयो ॥

शास्त्रकारोंका कथन है, बड़े लोगोंकी हँसी भी निरर्थक नहीं होती' उसमें भी बड़ा गूढ़ ज्ञान छिपा रहता है। हँसी हँसी में वे ऐसी बातें कह देते है, जिनसे उद्धार हो जाता है। जिन लोगोंको बोलने का व्यसन होता है या जो वक्तृता देकर अपनी जीविका

---

* श्री शुकदेवजी कहते है—"राजन् ! लोक को शिक्षा देनेवाले जगद्गुरु श्रीहरि इसी प्रकार अन्य रानियोंके महलों में भी रहकर साधारण गृहस्थियो के समान गृहस्थ धर्मो का पालन करने लगे।"

चलाते हैं,वे न जाने कहाँ कहाँ से खोज खोजकर बातों को कंठस्थ करते हैं और उन्हें तोता की तरह कहते रहते है, किन्तु जो उपदेश देने का व्यवसाय नही करते, उनकी प्रत्येक चेष्टा में उपदेश सन्निहित रहता है। उनका उठना बैठना, हँसना खेलना सब उपदेश मय है। इसी लिये सदा अपने से बड़ों का सेवन करना चहिये। बड़ों का जीवन मूर्तिमान् साकार उपदेश है।

सूतजी कहते हैं–"मुनियो ! भगवान् गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियों के घरों में पृथक् पृथक् रूप से रहा करते थे और उनके साथ हँसी विनोद किया करते थे। पत्नी के लिये यही सौंवकृष्ट सुख है, कि उसका पति उससे हँसकर बोले। समय समय पर हँसी विनोद करे। जो पति सर्वदा हाथमें छड़ी लिये पत्नीका गुरु बना रहता है, उसे उपदेश ही देता रहता है उससे घर में एक भय का आवरण छाया रहता है। जहाँ पति पत्नि हृदय खोलकर बाते नही कर सकते। परस्पर में विशुद्ध हृदय से निर्मुक्त हास्य नही कर सकते। परस्पर में हँसी हँसी मे एक दूसरे को डाँट फटकार नही सकते। उनका दाम्पत्य जीवन नीरस होजाता है। हमारे श्यामसुन्दर बड़े कौतुकी है, इनके मुख पर सदा मुसकराहट छाई रहती है। सोते सोते भी उनकी ओर निहारो तो ऐसा लगता है मानों हँस रहे हैं। बातें करेंगे तो हँसकर, प्रसाद पावेंगे तो हँसते हुए। वे नित्य प्रसन्न बने रहते है। रोते भी है तो उसमें भी हास्य छिपा रहता है। इसीलिए वे सोलह सहस्र रानियों के हृदय के हार बने रहते थे। रानियाँ उनसे बातें करने को लालायित बनी रहती थी। वे भी ऐसी ऐसी विचित्र कथायें कहते जिनसे हृदय प्रफुल्लित हो उठता। सत्यभामाजी कुछ मानिनी थी इस लिए भगवान् उनसे बहुत अधिक घुल घुलकर बातें करते। उनके साथ बात करने मे उन्हें मनाने मे भगवान् को बड़ा आनन्द आता। तभी तो एक कल्प-

वृक्ष के फूल पीछे रूठने पर भगवान् उनके लिये स्वर्ग से कल्पवृक्ष उखाड़ लाये और इनके ही आँगन में स्थापित कर दिया। उनकी सुगन्धि से सम्पूर्ण द्वारकापुरी सुगन्धित बनी रहती। सब रानियों को विश्वास हो गया, भगवान् सत्यभामाजी का सबसे अधिक आदर करते है। सत्यभामाजी को भी अपने सौभाग्य पर गर्व था। देखो, भगवान् मेरी प्रसन्नता के लिये देवताओं से लड़कर उन्हें परास्त करके स्वर्ग से कल्पवृक्ष ले आये और उसे मेरे ही आँगन में लाकर स्थापित कर दिया।

जैसे मीठे के पास चींटा पहुँच जाता है, पुष्प के आस पास भौंरा मँडराता रहता है, वैसे ही द्वारका के आस पास नारदजी मँडराते रहते थे। इधर उधर गये फिर द्वारका आ गये। उनका आना जाना निरन्तर लगा ही रहता था। एक दिन नारदजी आये, सीधे सत्यभामाजी के घर में चले गये। भगवान् उस समय राज सभामें गये हुए थे, सत्यभामाजी ने नारदजी का बड़ा आदर सत्कार किया और उन्हें सुवर्णके सिंहासन पर बिठाया। विधिवत् पूजा करके सत्यभामाजी ने कहा—"ब्रह्मन् ! आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दिये। आपका दर्शन प्राणिमात्र को प्रसन्नता प्रदान करने वाला है, किन्तु भगवन् ! मेरे लिये तो आप स्वयं साक्षात् मङ्गल रूप हैं। आपकी ही कृपासे मेरे घर में कल्पवृक्ष लग गया है, जिसके दर्शन मर्त्यलोक के प्राणियों के लिये दुर्लभ है। मुझसे बढ़कर सौभाग्य शालिनी स्त्री कौन होगी जिसके पति स्वयं साक्षात् जगदीश्वर हैं, मर्त्यलोक में रहने पर भी जिसके घर में कल्पवृक्ष हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि आप जैसे संत महात्मा जिसके ऊपर इतनी अनुग्रह रखते हैं। ब्रह्मन् ! मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहती हूँ, आज्ञा हो, तो पूछूँ ?"

नारदजी ने कहा—"हाँ, महारानीजी ! पूछिये। आप जो पूछेंगी उसीका में उत्तर दूँगा।"

सत्यभामाजीने कहा—"ब्रह्मन् ! मैं पूछना यह चाहती हूँ, कि पूर्व जन्म में मैंने ऐसा कौन सा सुकृत किया है, जिसके फल स्वरूप मुझे जगदीश्वर पति प्राप्त हुए हैं और अब कौनसा ऐसा कर्म करूँ जिसके करने से जन्म जन्मान्तरों में मुझे ये ही पति प्राप्त होते रहें ?"

यह सुनकर नारदजी बोले—"पूर्वजन्ममे तुमने तुला पुरुषका दान किया था, उसीके फल स्वरूप तुम्हें ये पुराणपुरुष प्रभु पति-रूपमें प्राप्त हुए। यदि आप अब इन प्रभुको तोलकर इनके बराबर धन रत्नदान करो, तो तुम्हें सदा ये ही पति प्राप्त होते रहेंगे, तुम इनसे कभी भी विलग न हो सकोगी।"

यह सुनकर अत्यत ही प्रसन्नता प्रकट करती हुई सत्यभामा जी बोली—"नारदजी ! यह तो आपने बडी ही उत्तम बात बताई। मेरे घर में धन रत्नों की तो कुछ कमी है ही नहीं। मैं आज ही तुलादान करूँगी, किन्तु एक कठिनाई है। अपात्र में दिया दान निष्फल ही नहीं जाता। देनेवालेको दोष भी लगता है दूसरे जन्ममें वह धनहीन होता है। धन न होनेसे उसकी पापमें प्रवृत्ति होती है। पाप करनेसे फिर फिर दरिद्री होता है, फिर फिर पाप करता है। अतः दानके लिये सत्पात्रकी अत्यंत आवश्यकता है। सौभाग्यसे आप पधार ही गये है। आपसे बढकर सत्पात्र और कहाँ मिलेगा। कृपा करके आप यदि मेरे तुलादान को स्वीकार कर लें, तो मेरी मनोकामना पूर्ण हो जाय।"

नारदजीने कहा—"महारानीजी ! हम तो दक्षिणा लेते लाते नही है, किन्तु तुम मानती नही हो और तुम्हारा बहुत ही आग्रह है, तो ले लेंगे। साधुओंका शरीर तो परोपकार निमित्त होता ही है ! अच्छी बात है, करो तैयारियाँ।"

यह सुनकर सत्यभामाजी के हर्षका ठिकाना नही रहा। उन्होने उत्सव का आयोजन किया। घरमें बन्दनवारें बँधवाई

चौक पूरे बाजे बजवाये। इतनेमें ही भगवान् आगये। भगवान्ने पूछा—"कहो, आज क्या हो रहा है? किस बातका उत्सव है?

सत्यभामाजी ने कहा—"महाराज! आज मैं कुछ दान धर्म करना चाहती हूँ।"

भगवान्ने कहा—"आज कोई पर्व न त्यौहार दान धर्मकी कैसे सूझी?" इतनेमें ही लम्बे तिलक लगाये,वीणाकी खूँटियों को खींचते हुए नारदजी दिखाई दिये। खिलखिलाकर हँसते हुए भगवान् बोले—"अहा हा! नारदजी आये हैं। तभी तो मैं सोच रहा था, आज कैसा उत्सव? वैद्य जहाँ पहुँच जायगा,वहाँ रोगी न भी होंगे तो लोग रोगी होजायँगे। स्फुट वस्तुओंका वेचनेवाला पहुँच जायगा, तो स्त्रियोंको आवश्यकता न भी होगी, तो वे वस्तुएँ ले लेंगी। दही बड़े रसगुल्ले तथा अन्यान्य स्वादु वस्तुएँ आनेपर भूख न होनेपर भी लोगोंकी भूख लग जायगी, इसी प्रकार ब्राह्मणोंके पहुँचने पर उत्सव पर्व न होनेपर भी छुन छुन होने लगेगी, कुछ दान धर्मकी प्रवृत्ति हो जायगी।"

हँसकर नारदजी बोले—"महाराज! आपके घरसे भी हम लोग रिक्तहस्त लौटे तब तो संसारमें हमें कोई पूछे ही नहीं। लोग वैसे ही हम लोगोंके पीछे नमक सत्तू बाँधे पड़े रहते हैं। आपके पीछे ही तो हम कूदते रहते हैं निर्भय होकर विचरते रहते हैं। आपका नाम ब्रह्मण्यदेव है न? आप गो ब्राह्मणों के हितके ही निमित्त अवतीर्ण होते हैं।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान् बोले—"हम नारदजी! आपके काममें भाँजी थोड़े ही मारते हैं। पटाइये अपनी यजमानिनि को।" यह कहकर भगवान् अपने बैठनेके भवनमें बैठ गये। सब कुछ तैयारियाँ करके सत्यभामाजी आईं बोली—"अब महाराज! आपको मैं स्नान कराऊँगी।"

भगवान्ने कहा—"दान दोगी, नारदजी को हमें स्नान क्यों

कराओगी। तुम देने वाली नारद जी लेने वाले। हमें बीच में जाड़े में क्यों ठिठुराती हो।"

सत्यभामाजी ने कहा—"स्त्री पुरुष के बिना दान पुण्य कैसे कर सकती है।"

हँसकर भगवान् बोले—"नारदजी स्त्री थोड़े ही हैं। वे भी तो पुरुष हैं।"

सत्यभामाजी ने तुनककर कहा—"तुम्हें हर समय हँसी ही सूझती रहती है। चलो चलो बहुत अतिकाल हो रहा है।"

भगवान् हँसते हुए गये। सत्यभामाजी ने स्नानादि कराके उन्हें एक सुन्दर आसन पर बिठाया। विधिवत् उनकी पूजा की। फिर तुला में बैठने की प्रार्थना की। भगवान् बोले—"तुला में हम क्यों बैठें, जैसे तोलने वाला बाटों को स्वयं उठाकर तराजू में रखता है, वैसे ही तुम हमें उठाकर रखो।"

सत्यभामाजी ने कहा—"अब तुम्हें कौन उठा सकता है?तुम इतने भारी हो कि उठाना तो पृथक् रहा किसी की कल्पना में भी नहीं आ सकते।"

भगवान् बोले—"तभी तुम्हारे पिताजी ने हम पर मणि की चोरी का अपराध लगाया था। उनकी कल्पना मे तो हम धन लोभी आ ही गये थे।"

खीजकर सत्यभामाजी ने कहा—"अब तुम गड़े घूरों को फिर उखाड़ने लगे। मेरे बापने जो कुछ किया वह भूल से किया। भूल मनुष्यों से ही होती है।"

भगवान् बोले—"हम तो इसे भूल मानते ही नहीं अच्छा ही हुआ यदि वे ऐसा कलङ्क न लगाते,तो फिर तुम हमें काहेको मिलतीं या तो तुम कृतवर्माकी पत्नी बनती या प्रसेनकी अथवा अक्रूरजीकी फिर तुम्हारे दर्शन दुर्लभ हो जाते,हमें देखकर घूँघट मार लेती।

खीजकर सत्यभामाजी बोलीं—"आप तो सदा बेकारकी बात

बनाते हैं। चलो, देखो मुझे देर हो रही है, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ नारदजी को विलम्ब हो रहा है।"

भगवान् हँसते हुए बोले—नारदजी को विलम्ब हो रहा है, तो नारदजी ही उठावें। उनका भी तो स्वार्थ है। तुम दान करने वाली, वे ग्रहण करने वाले। हम तो तोलने वाले बाट हैं। तुम्हें पुण्य मिलेगा, नारदजी को धन मिलेगा। हमें क्या मिलेगा?"

नारदजी ने कहा—महाराज ! सत्यभामाजी ही चाहें, तो आपको उठा सकती हैं मेरे सामर्थ्य की बात तो है नहीं। मैं कुछ उठाने धरनेको तो आया नहीं। कुछ दान दक्षिणा मिलेगी तो ले जाऊँगा, नहीं जय जय सीताराम। मैं अपनी वीणा को बगल में दबाकर चल दूँगा।"

सत्यभामाजी ने कहा—"अब महाराज ! देखो बहुत हँसी हो गयी। चलो चलो बड़ी बेला हो गयी।"

यह सुनकर भगवान् हँसते हुए तराजू के एक पलड़े में जाकर बैठ गये। तराजू का दूसरा पलड़ा उठ गया और भगवान् जिसमें बैठे थे वह भूमि में लग गया। सत्यभामाजी दूसरे पलड़ेमें लाकर सुवर्ण, रत्न, मणि, माणिक्य सब ला लाकर रखने लगीं, किन्तु भगवान् वाला पलड़ा टस से मस नहीं हुआ। अब तो सत्यभामा जी बड़ी चिन्ता में पड़ीं उन्होंने अपने अङ्गों के आभूषण एक एक करके उतार उतार कर रखे, किन्तु सब व्यर्थ। घर में कोई वस्तु नहीं रही जिसे वे पलड़े पर न रख चुकी हों। अब तो वे बड़ी दुखी हुईं। भगवान् हँस रहे थे और कह रहे थे—"रानीजी का दिवाला निकल गया।" इससे वे और भी लज्जित हो रही थीं। फिर उन्होंने सोचा—"यह कल्पवृक्ष भी तो मेरा ही है, क्यों नहीं इसी को मैं चढ़ा दूँ।" यह सोचकर वे कल्पवृक्ष के समीप गयीं और उससे प्रार्थना करने लगीं। तब चुपकेसे नारदजी आये और बोले—"महारानीजी ! आप चाहें ऐसे लाख कल्पवृक्ष चढ़ादें तो

भी पलड़ा उठेगा नहीं। जिनके उदर में अगणित ब्रह्माण्ड हैं, उनकी समता कौन सी वस्तु कर सकती है, इन्हें तो कोई भक्तिमान् ही वश में कर सकता है। कहो तो मैं एक उपाय बता दूं, अभी पलड़ा उठता है।"

सत्यभामाजी ने कहा—"हाय! नारदजी! आपने अभी तक वह उपाय क्यों नहीं बताया। बताइये बताइये मेरा सङ्कट दूर कीजिये।"

नारदजी बोले—"आप एक काम करें एक दल तुलसी इस पलडे में रख दें, देखें कैसे पलड़ा नहीं उठता। भगवान् वाला पलड़ा उठ जायगा और तुलसी वाला पलड़ा भूमिमें लग जायगा। तुलसीजी ने भगवान् को अपने वश में कर लिया है। आप छप्पन प्रकारके व्यंजन बनाइये उनके ऊपर मन्जरी सहित तुलसी न छोड़ें

रहे, उनके ही निमित्त व्रत उपवास किया करे। उनकी सेवा में सदा संलग्न रहे। ऐसा करनेवाली विधवा फिर कभी भी विधवा नहीं हो सकती, वह सदा सुहागिनि बनी रहती है। वह मुझे अजर अमर अविनाशी को प्राप्त हो जाती है। गुणवंती ने अपने दुर्भाग्य को सौभाग्यके रूप में परिणित कर लिया। वह निरन्तर मेरी ही चिन्तामें लगी रहती। वह भूलकर भी परपुरुष से बातें न करती। घरमें ही रहकर वह भजन पूजनमें ही अपने समयको बिताती। वह प्रायः सभी व्रतों को करती थी; किन्तु जीवन भर उसने दो व्रतों को नहीं छोड़ा। एक तो एकादशी व्रत और दूसरा कार्तिक व्रत। दोनों पक्षकी एकादशियोंका वह व्रत करती। दशमी के दिन वह एक समय सूक्ष्म आहार करती। एकादशीको निर्जल व्रत करती और द्वादशीके दिन ब्राह्मणको सीधा देकर एक समय पारणा करती। एकदशी के दिन रात्रि भर जागरण करती और द्वादशी को दिन में भी न सोती। इस प्रकार कार्तिक मास आने पर वह सूर्योदय के पूर्व ही गङ्गाजी में जाकर स्नान करती, तुलसी पूजन करती दीपदान करती। एक समय बिना नमक का हविष्यान्न भोजन करती। इन दो व्रतों को करते करते उसकी वृद्धावस्था आ गयी। किन्तु उसने एकादशी और कार्तिक के व्रतों को नहीं छोड़ा।

नियमानुसार कार्तिक मास आया। शुक्ला दशमीके दिन उसे कुछ ज्वर सा हो गया। फिर भी वह एकादशीके दिन प्रातः गंगा स्नान करने गयी। कार्तिक में ठंड भी पड़ने लगती है और हरिद्वार की गंगाजी का जल भी अधिक शीतल होता है, ज्वर के कारण उसे शीत लग रहा था, किन्तु वह कार्तिक स्नान को कैसे छोड़ती लाठी टेकते टेकते वह गंगाजी पर पहुँची। उसका शरीर शीत से काँप रहा था, नाभि तक जल में वह गयी। उसी समय उसने देखा आकाश से एक बड़ा प्रकाशवान् विमान आ रहा है।

उसमें भगवान् के चतुर्भुज पार्षद बैठे हुए है। उसमें गरुड़ जी के चिह्नोसे चिह्नित ध्वजा लगी हुई है। विमानको देखकर गुणवती समझ गयी यह भगवान् का विमान है, उसने सिर झुकाकर विष्णुपार्षदों को प्रणाम किया, तुरन्त ही पार्षदों ने उससे विमान मे बैठनेकी प्रार्थना की। वह उस पाँच भौतिक शरीरको गंगाजी में ही छोड़कर दिव्य रूप धारण करके अग्नि की शिखा के समान जाज्वल्यमान रूप से अप्सराओं द्वारा सेवित होकर विष्णुलोक मे प्राप्त हुई। उसने जीवन भर मेरा चिन्तन किया था। मेरे निमित्त एकादशी और कार्तिक का व्रत किया था, इस लिए उसे मेरी सन्निधि प्राप्त हुई।

जब पृथिवी का भार बढ़ गया और ब्रह्मादि देवों ने मुझ से अवतार धारण करने की प्रार्थना की, तो मैंने अपने गणोंके सहित अवतार धारण किया। देवशर्मा और चन्द्र ये सब मेरे लोकमें मेरे पार्षद बनकर रहते थे। मेरे अवतार लेने पर इन सबने भी शरीर धारण किया। वे ही देवशर्मा तुम्हारे पिता सत्राजित् हुए और वह चन्द्र ही आकर अक्रूर हुआ। और वह गुणवती ही तुम हो। तुमने मेरी अनन्य भाव से आराधना की इसलिए तुम मेरी पत्नी हुई। अब तुमने अपनी सेवा से मुझे अपने वश में कर लिया, इस लिये अब सदा के लिये तुम मेरी हो। अब तुम कभी भी मुझ से पृथक् नहीं रह सकती। प्रिये! संसार में जो मेरे निमित्त कर्म करता है, उसे मैं अक्षयकर देता हूँ। तुमने मेरे द्वार पर तुलसी लगाई थी, उसके फल स्वरूप तुम्हे अक्षय कल्पवृक्ष मिला। तुमने कार्तिक महीने में दीपदान किया था, उसीके स्वरूप तुम्हें अक्षयलक्ष्मी की प्राप्ति हुई, तुम्हारा घर सदा धन धान्य से भरा पूरा रहता है, तुमने जीवन भर मुझ से प्रेम किया, जो भी व्रत उपवास किया उसे तुमने मुझे अर्पण कर दिया, उसी के फल स्वरूप तम मेरी पत्नी हुई। तुमने जीवन भर कभी व्रतको खंडित

नहीं होने दिया। इसीलिये तुम्हें अखंड ऐश्वर्य और सौभाग्य की प्राप्ति हुई। इसीलिये कहा है कि, जितने यज्ञ,तप, दान, व्रत तथा पुण्य हैं,वे सब कार्तिक और एकादशी व्रत के आगे कुछभी नहीं हैं।"

यह सुनकर सत्यभामाजी बोली—"महाराज ! यह तो आपने बड़ी अद्भुत बात सुनाई। कभी कभी तो आप ऐसी हँसी करते हैं कि मैं ऊब जाती हूँ और कभी कभी ऐसी सुन्दर बात बता देते हैं, कि मेरे रोम रोम खिल जाते हैं। अच्छा, एक बात बताइये। एकादशी व्रत और कार्तिक व्रत का इतना भारी महात्म्य क्यों है ? देवगण और आप इन व्रत करने वालों से इतने प्रसन्न क्यों रहते हैं ?"

भगवान् बोले—"देखो, सुनो इस विषय में एक इतिहास है, उसे मैं तुम्हे सुनाता हूँ। प्राचीन काल में एक शंखासुर नाम का दैत्य होगया है। वह बड़ा बली था, उसने सब देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया और स्वयं अकेला ही सब देवताओं का काम करने लगा। देवता सब निर्वासित हुए इधर उधर पृथिवीपर शरणार्थी बने दिन काटने लगे। अब उस दैत्य ने सोचा—"अभी तो इन देवताओंको मैंने जीत लिया है, किन्तु ये जहाँ बली हुए तहाँ फिर आकर स्वर्गपर अधिकार कर लेंगे। मुझे निकाल देंगे। इनके बली होने का कारण यज्ञ याग ही हैं। वे सब वेदों द्वारा सम्पन्न होते हैं अतः मैं वेदोंको नष्ट करदूँ। जब जड़ ही कट जायगी, तो फिर शाखायें कैसे निकल सकती हैं।"यही सब सोचकर वह सत्यलोकमें गया। मैं तो उस समय क्षीर सागरमें तान दुपट्टा सो रहा था। वेदों ने देखा, कि यह असुर तो हमारी दुर्गति करेगा, इस लिए वे पृथक् पृथक् होकर समुद्र के जल में छिप गये, बिखर गये। दैत्यने सोचा चलो समुद्र के भीतर चलकर वेदोंको खोजें। वह समुद्रके भीतर पाताल तक खोजता रहा। इतनेमें ही अवसर पाकर सब देवता मिलकर मेरे समीप आये। मैं तो सो ही रहा

था। उन्होंने आकर शंख घंटे बजाये और 'जय हो जय हो' कह कर चिल्लाने लगे। मेरी आँखें खुल गयीं मैंने कहा—"क्या बात है।" सबने डरते डरते कहा—"महाराज ! शंखासुर बड़ा उपद्रव कर रहा है, कृपा करो अब निद्रा को त्याग दो।"

मैंने पूछा—"इस समय कौन सा महीना है ?"

देवताओ ने कहा—"महाराज ! कार्तिक का महीना है।"

फिर मैंने पूछा—"तिथि कौन सी है ?"

सबने बताया—"महाराज ! शुक्लपक्ष की एकादशी है।"

भगवान् बोले—"अच्छी बात है,आजसे इस एकादशीका नाम हरिप्रबोधिनी एकादशी होगा। इसमें जो सायंकालके समय शंख घंटा बजावेंगे, मुझे उठावेंगे, उन्हें भी सभी समृद्धि दूँगा। आजसे कार्तिक मास और एकादशी तिथि ये दोनो सबसे श्रेष्ठ माने जायँगे जो इन दोनोंका व्रत करेंगे वे मेरे अत्यंत ही प्रिय होंगे।"

यह कहकर मैंने समीप में खड़े देवताओं से कहा—"देवताओ ! देखो,इस बातको गांठ बांध लो। आजसे हम एक महीने कार्तिक भर जल में रहा करेंगे, तुम सब भी हमारे साथ रहना। ये सब अङ्गोंके सहित वेद भी जलमें रहें। जो नरनारी सूर्योदयसे पूर्व जलमें स्नान करें, उनके समस्त मनोरथों को पूर्ण करना।"

फिर मैंने पृथक् पृथक् देवताओं को बुलाकर कहा—"देवराज ! देखो,जो लोग कार्तिकस्नाही हों, उन्हें शरीर त्यागके अनन्तर मेरे लोक को पहुँचा देना। अच्छा। और हे वरुण ! तुम विना मांगे उन्हें पुत्रपौत्रादि दिया करना। भूल मतजाना।' धनाध्यक्ष ! तुम भी सुनलो। ऐसे लोगोंको कभी धनकी कमी न रहने पावे। समझे या नहीं ?'यमराज ! तुम सावधान रहना। कार्तिक व्रतियोंसे तुम कभी भूलकर भी कटुवचन न कहना। उनका सदा उठकर आदर करना।" इस प्रकार सबको आज्ञा देकर मैं मछलीकारूप बनाकर जलके भीतर घुस गया और शंखासुरको मार-

कर सब वेदोंको लौटा लाया।"

इस पर सत्यभामाजी ने कहा—"महाराज! आप मछली भी बने थे? बड़े बहुरूपिया हो।"

भगवान् बोले—"मछली क्या, हम तो सूअर बने, सिंह बने, कछुआ बने और न जाने क्या क्या बने। हमारे भक्त जो जो चाहते है सोई सो हम बन जाते है। हमारे बहुतसे असुर ऐसे ही है कि वे शरीरको ही सब कुछ समझे हैं—"वे कहते है, वेद कुछ नही, यज्ञ कुछ नहीं। दान कुछ नहीं धर्म कुछ नहीं जो कुछ है शरीर है इसे ही पालो पोसो सुख से रहो।" उनके लिये मैं वैसा ही बनकर वैसा ही उपदेश देता हूँ, वेदोंका, यज्ञका धर्मका और अपना भी खंडन कर देता हूँ। कह देता हूँ–शरीर ही सब कुछ है ऋण लेकर भी घृत पीयो।" साराश यह है, मुझे कोई भी रूप रखने में संकोच नही। मेरे भक्त जिस भावसे मुझे भजते है। वैसा ही बनकर मैं उनको फल देता हूँ।"

सत्यभामाजी ने कहा—"तब तो, महाराज! आप बिना पेंदीके लोटे हो। जिधर चाहे ढुल गये। डंडौत है आपके ऐसे रूपके लिये। मुझे तो सदा इसी मदनमोहन मनहर रूपसे दर्शन देते रहना कहीं व्याघ्र, साँप, बिच्छू मत बन जाना।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े सत्यभामाजी भी हँस पड़ी। उस दिनसे न उन्होंने एकादशी व्रतको छोड़ा और न कार्तिक मासको ही बिना व्रतके जाने दिया।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इसी प्रकार भगवान् सब रानियोंके साथ विनोद करते हुए हँसी हँसीमें ही भाँति भाँतिकी शिक्षा दिया करते थे, अनेक अद्‌भुत अद्‌भुत इतिहास सुनाया करते थे इससे वे सभी अत्यंत ही प्रसन्न रहती। वे अपने को ऐसे छिपा लेते थे, कि जानते हुए भी स्त्रियाँ उनके स्वरूप को भूल जातीं और फिर उन्हें प्राकृत पुरुष समझने लगतीं। वे सोचती

भगवान् हमारे वशमें है। उन स्त्रियोंकी बात तो छोड़ दो, स्वयं साक्षात् शिवजी ने भी उनके स्वरूप को भुलाकर उनसे युद्ध किया।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी भगवान्से शकरजीने क्यों युद्ध कियाऔर कबकिया ?कृपयाइस प्रसङ्गको हमें अवश्य सुनाइये।"

सूतजी ने कहा—"भगवन् ! अनिरुद्ध के विवाह के समय में किया था।"

शौनकजी ने कहा–"सूतजी ! अनिरुद्धके विवाहका तो वर्णन आप कर ही चुके है, वह तो भोजकट में रुक्मीकी पौत्रीके साथ हुआ था, जिसमें बलदेवजी ने रुक्मीको मार दिया था। उसमें शकरजीके युद्धकी तो बात नही आयी।"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! वह तो अनिरुद्धजी का पहिला विवाह था। दूसरा विवाह जो बाणासुरकी पुत्री ऊषाके साथ हुआ उसमें यह सब लड़ाई झगड़ा हुआ।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! असुरकी लड़कीके साथ अनिरुद्धने विवाह क्यों किया और शङ्करजी ने भगवान् से वहाँ युद्ध क्यों किया कृपया इस कथा को हमें अवश्य सुनावें।

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज ! अब मैं उसी प्रसङ्गको सुनाता हूँ आप सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

प्राकृत पुरुष समान सबनि कूँ हरि सम्मानें।
तिनकूँ राजकुमारि स्ववश पति नर सम जानें॥
औरनिकी का कहें शम्भु हू लड़िबे आये।
बाणासुरको पक्ष लयो पीछे पछिताये॥
शौंनक पूछें–सूतजो ! क्यों हर श्रीहरि तें लड़े।
सूत कहें–"मुनि ! भक्तहित, वृषभध्वज प्रभु तें भिड़े॥

# अनिरुद्ध और ऊषा

( ११२१ )

बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ।
तत्र युद्धम भूद् घोरं हरिशङ्करयो र्महत् ।
एतत् सर्वं महायोगिन् समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ६२ अ० १ श्लोक )

छप्पय

वैरोचनि शत पुत्र बड़े सबमें बाणासुर ।
शूर वीर रणधीर दये तिनि हर इच्छित वर ॥
शोणितपुर महँ बसे करें हर पुर रखवारी ।
कन्या ताकी परम सुन्दरी ऊषा प्यारी ॥
तानें इक दिन स्वप्न महँ, लखे वीर अनिरुद्ध वर ।
पति समान क्रीड़ा करत, बेधत हिय महँ काम शर ॥

कुछ लोगोंका कथन है, कि जिसे हमने देखा नहीं है, उसे स्वप्नमें भी नहीं देख सकते । किन्तु यह बात सत्य नहीं । बहुतसे ऐसे पुरुषों को ऐसे नगरों को हम स्वप्नमें देखते हैं, जिनसे इस

* महाराज परीक्षितने श्रीशुकदेवजी से पूछा—"ब्रह्मन् ! हमने सुना है यदूत्तम अनिरुद्धने बाणकी पुत्री ऊषाके साथ विवाह किया था । उस विवाहके प्रसङ्गमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और शिवजीका परस्परमें घोर युद्ध हुआ । कृपा करके वह सब वृत्तान्त हमें सुनाइये ।"

जन्म में कभी भेंट नहीं हुई है। जिन्हें हमने इस जीवन में देखा नहीं। इससे यही सिद्ध होता है, कि इसी जीवन के देखने को देखना नहीं कहते। जन्मान्तर में जिसे हमने देखा है, पूर्व जन्म में जिसका हमने संग किया है, वह संस्कार वश हमें इस जन्म में भी याद आ जाता है और उसे स्वप्नमें देखते भी हैं। स्वप्नमें एक ही इसी जन्म की घटनायें दीखती हों, सो बात नहीं जन्म जन्मान्तरों की घटनायें स्वप्नमें आती है और कभी कभी तो स्वप्नमें ऐसी स्पष्ट बातें आ जाती हैं, जो सर्वथा सत्य निकलती हैं। किसी ने स्वप्नमें देखा, अमुक स्थान पर मेरा इतना धन गड़ा हुआ है। जागकर उस स्थान को खोदते है, तो उतना ही धन वहाँ मिल जाता है। यह निश्चय है, इस जन्ममें तो उसने धन गाड़ा नहीं उसे जो धन मिला है वह उसका पूर्व जन्म का गाड़ा हुआ था।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब मैं अनिरुद्ध और बाणासुर की पुत्री ऊषा का समाचार सुनाता हूँ। दैत्यवंश में भगवान् कश्यप से हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु ये दो वीर पुत्र हुए। दिति के पुत्र होने से ये दैत्य कहाए। हिरण्यकशिपु के भक्ताग्रगण्य परम धार्मिक पुत्र प्रह्लादजी हुए। प्रह्लादजी के पुत्र विरोचन हुए और विरोचन के पुत्र जगत् प्रसिद्ध दानी बलि हुए। जिन्होंने वामन बने विष्णु को सम्पूर्ण भूमण्डल दान कर दिया। भूमण्डलको दान करके वे भगवानकी आज्ञासे अपने परिवार सहित पाताल लोकमें चले गये। महाराज बलि के एक सौ पुत्र थे, जिनमें बाण नामक पुत्र ज्येष्ठ और श्रेष्ठ था। बाणासुर भगवान् शङ्कर का परम भक्त था। वह उदार चरित बुद्धिमान्, सत्य प्रतिज्ञ, दृढ़व्रत तथा परम मनस्वी था। निरन्तर भगवान् शङ्करकी ही भक्तिमें निरत रहता। पिताके सुतल लोक चले जाने पर भी वह शङ्कर की भक्ति करने के निमित्त पृथिवी पर ही रह गया वह सम भू भाग को छोड़कर हिमालय पर्वत पर चला गया और वहाँ पहाड़ों के बीच में

शोणितपुर नामक एक नगर बसाकर रहने लगा। शिवजी उसके भक्ति से अत्यन्त ही सन्तुष्ट थे। आशुतोष भोलेनाथ ही जो ठहरे। बाणासुर के सहस्र बाहुएँ थीं। एक दिन उसने अपनी सहस्र बाहुओं से सहस्र बाजे बजाकर और अद्‌भुत ताण्डव नृत्य करके शङ्करजी को अत्यन्त ही सन्तुष्ट कर लिया। उसके नृत्य, गान और वाद्य से प्रसन्न होकर भगवान् वृषभध्वज बोले—"राजन्! मैं तुम्हारी भक्ति से अत्यन्त ही सन्तुष्ट हूँ, तुम मुझसे जो चाहो सो वर मांगलो। भक्तों के लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं। तुम जो भी माँगोगे वही मैं दूगा।"

बाणासुर ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभो! मैं तो आपको ही अपना एक मात्र आराध्यदेव समझता हूँ। आपका ही मुझे आश्रय है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जैसे आप काशीजी में सदा रहते हैं, वैसे ही यहाँ मेरे पुर के समीप रहकर मेरे पुर की शत्रुओं से सदा रक्षा करते रहें।"

शिवजी तो औघड़ दानी ही ठहरे। वर देते समय वे आगे पीछे की कुछ भी नहीं सोचते। बोले—"अच्छी बात है राजन्! मैं सदा तुम्हारी पुरी के समीप रहूँगा। जैसे पूर्व काशी क्षेत्र है, वैसे ही मैं तुम्हारे पुर के द्वार पर "गुप्त काशी" बनाकर रहूँगा। मेरे रहते, तुम्हारे पुर पर कोई प्रहार नही कर सकता।"

यह वरदान पाकर बाणासुरने पशुपतिके पाद पद्मोंमें प्रणाम किया और वह निर्भय होकर अपने पहाड़ी पुर में रहने लगा। पहिले वह नित्य केदारनाथजी में पूजन करने जाया करता था, अब तो गुप्त काशी बनाकर शिवजी उसके द्वार पर ही रहने लगे अतः वहीं वह उनकी पूजाकर लेता। उसका नगर बड़ा सुदृढ़ बना हुआ था। एक तो वह चारों ओर से ऊँचे ऊँचे पर्वतों से घिरा हुआ था। दूसरे उसके बड़े भारी किले के भीतर से केदार गङ्गा मन्दाकिनी वह रही थीं, तीसरे शिवजी सदा उसके नगर की

रक्षा करते रहते थे। इन्हीं सब कारणोसे किसी भी शत्रुका उसके पुर पर चढ़ाई करने का साहस नहीं होता था। उसे कभी युद्धका अवसर ही नही आता। बलवानों को जब तक युद्ध का अवसर प्राप्त न हो, तब तक उनके हाथ खुजाते रहते है। उसे अभिमान भी हो जाता है, कि मैं बड़ा बली हूँ, मेरे भय से कोई मेरा सामना नहीं करने आता। इसी प्रकार बाणासुरको भी अभिमान हो गया।

एक दिन वह अपने बलके अभिमान में भरकर गुप्त काशी में स्थित भगवान् शङ्करके दर्शनोंको गया। विधिवत् उनकी पूजाकी फिर अपने सूर्य सदृश देदीप्यमान मुकुट से उनके पाद पद्मों में प्रणाम करते हुए बोला—"प्रभो! सबको तो आपने दो दो हाथ दिये हैं, मुझे एक साथ एक सहस्र हाथ क्यों दे दिये?"

भगवान् वृषभध्वज ने कहा—"राजन्! तुम मेरे भक्त हो, तुम्हारी कोई भी इच्छा शेष न रहे, तुम सहस्र हाथोंसे सभी सुख समृद्धि का भोग कर सको इसी लिये प्रसन्न होकर मैंने तुम्हें सहस्र हाथ दे दिये है।"

बाणासुर ने कहा—"हाँ प्रभो! यह तो मैं जानता हूँ, आप भक्त वांछा कल्प तरु हैं। आप सभी भुवनोंके एक मात्र अधीश्वर है। सम्पूर्ण लोकोंके गुरु है,आशुतोष है। जिनकी कामनायें कहीं भी पूरी नही होती, उनकी इच्छायें आपके दर्शन करते ही—आपकी शरण में आते ही–तुरन्त पूरी हो जाती है। इस लिये आप मेरी भी इच्छा पूर्ण करे।"

शिवजी ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"हाँ, कहो तुम्हारी इच्छा क्या है? मैं उसे अवश्य ही पूरी करूँगा।"

बाणासुर ने झूठी विनय दिखाते हुए कहा—"भगवन्! राजाकी बाहुओंका एक मात्र उद्देश्य युद्ध है। जो राजा युद्ध नहीं करता उसकी बाहुएँ व्यर्थ है। औरोंके तो दो दो ही बाहुएँ होती

हैं। मेरे तो एक सहस्र है। इनका कुछ उपयोग तो होता नहीं, केवल इनके बोझको ढोया फिरता हूँ। मैं सम्पूर्ण पृथिवी पर युद्ध की इच्छा से घूम आया, मुझसे कोई युद्ध करने वाला ही नहीं मिलता। केवल आपको छोड़कर। आप ही एक ऐसे हैं, जो मुझ से कुछ टक्कर ले सकते हैं।"

शिवजी इसकी गर्व से सनी बातों का अभिप्राय समझ गये। वे तुरन्त ताड़ गये बच्चूजी को अभिमान हो गया है। मुझसे लड़ना चाहता है। मैं चाहूँ,तो अभी इसकी सब चौकड़ी भुलादूँ, हड्डी पसली तोड़दूँ, किन्तु सुकृति पुरुष अंगीकार किये हु. का अन्त तक पालन किया करते हैं।" यही सब सोचकर वे बोले— "राजन् ! अब हमारी तुम्हारी लड़ाई शोभा नहीं देती।"

अभिमान में भरकर बाणासुर बोला—"नहीं, महाराज ! आपसे ही लड़ने का मेरा आग्रह नहीं है, किन्तु अब लड़ाई किये बिना मुझसे रहा नहीं जाता। मेरे हाथ खुजाते रहते हैं। जब मेरे हाथों में अधिक खुजलाहट हुई, तो मैं हाथ में गदा लेकर अपने समान योद्धा का अन्वेषण करने के लिये घर से निकला। जब सम्पूर्ण पृथिवी पर कोई युद्ध करने को न मिला तो मैं आठों दिशाओंके दिग्गजों के समीप पर्वतोंको चूर्ण करते हुए गया और उनसे कहा—"तुम भाई ! सब पृथिवी को धारण किये हुए हो, मुझसे युद्ध करलो। मेरी इस बातको सुनते ही वे भाग खड़े हुए। मेरे सम्मुख ठहरे तक नहीं। अब क्या करूँ,कौन मेरी खुजलाहट को मिटावे।"

भगवान् भोलेनाथ को यह सुनकर क्रोध आ गया और उसे डाँटकर बोले—"अरे मूढ़ ! इतना अभिमान क्यों करता है। "मल्लनि कूँ मल्ल घनेरे। घर नाहें तो बाहर बहुतेरे॥" एक दिन तुझे भी तेरे दाँत खट्टे करने वाला मिल जायगा। दाँत तो मैं ही तेरे खट्टे कर देता,किन्तु मेरा तेरा स्वामी सेवक का सम्बन्ध है।

स्वामी का सेवक से युद्ध करना अनुचित है, किन्तु तू कुछ दिन और धैर्य धारण कर। एक दिन मेरे ही समान शूर वीर योद्धा तुझे मिलेगा और युद्ध में तुझे सन्तुष्ट करेगा। तेरे बढते हुए गर्व को वह खर्व कर देगा।"

यह सुन कर वह मूढ़ परम प्रमुदित हुआ। उसने इस बात पर ध्यान ही नही दिया, कि शिवजी क्रुद्ध होकर कह रहे हैं। उसने उत्सुकता से पूछा—"महाराज! वह मुझ से युद्ध करने वाला बली मुझे कहाँ मिलेगा?"

शिवजीने कहा–'वह यहीं घर बैठे तुम्हारे पुरमें आ जायगा।

बाणासुर ने पूछा—"कब आ जायगा महाराज! कब तक उसकी प्रतीक्षा करें।"

शिवजी ने कहा—"जब तेरी ध्वजा टूट कर अपने आप गिर जाय, तभी समझ लेना, तेरा शत्रु तेरे पुर पर चढ आया।"

यह सुन कर वह मन्दमति अति ही प्रसन्न हुआ। शिवजी के पाद पद्मों में प्रणाम करके वह अपने पुर में चला गया और अपने सम बल शत्रु के आने की अत्यंत उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा करने लगा।

बाणासुर की एक अत्यंत ही रूपवती ऊषा नाम की परम सुन्दरी कन्या थी। शनैः शनैः उसने बाल्यावस्था को पार करके युवावस्था में पदार्पण किया। बड़े राजाओं के यहाँ जब कन्या बड़ी हो जाती है, तो उसका अन्तःपुर पृथक् कर दिया जाता है, उसमें उसकी दास दासियों और सहेलियों के अतिरिक्त कोई भी सेवक प्रवेश नहीं कर सकता। द्वारपाल अत्यंत विश्वसनीय वृद्ध पुरुष ही रखे जाते थे। बड़ी होने पर ऊषा का भी अन्तःपुर पृथक् हो गया। किले में ही केदार गंगा के मन्दाकिनी के उस पार उसका निवास स्थान बना। उसमें मंत्रियों की कुमारियों से घिरी हुई ऊषा रहने लगी। वृद्ध द्वावारिक बड़ी तत्परता से

अन्त पुर की रक्षा करने लगे।

एक दिन ऊपा अपनी सुन्दर सुखद शैया पर सुख से शयन कर रही थी, कि सहसा वह चौंक पड़ी और चिल्लाने लगी—"हा कान्त ! तुम कहाँ हो ! मुझे छोड़ कर कहाँ चले।"

उसके समीप में ही चित्रलेखा नाम की उसकी एक सखी शयन कर रही थी। वह बाणासुर के मंत्री कुम्भाण्ड की पुत्री थी। उसने किसी योगी से योग की सब सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं थीं, साथ ही वह चित्र बनाने में बड़ी प्रवीणा थी। चाहे उसने किसी को देखा भी न हो, उसका भी वह ध्यान करके तुरन्त ज्यों का त्यों चित्र बना देती थी। उसने जब राजकुमारी को इस प्रकार चिल्लाते हुए देखा, तो वह तुरंत अपनी शैया से उठकर ऊपा के समीप गयी और भी बहुत सी सखियाँ शब्द सुनकर दौड़ी आयीं सभी ने उसे चारों ओर से घेर लिया। तब चित्रलेखा ने कहा—"राजकुमारी ! कौन तुम्हें छोड़कर चला गया ? किसे तुम बुला रही हो। किसे कान्त कहकर सम्बोधन कर रही हो। तुम्हारा तो अभी विवाह भी नही हुआ। फिर तुम ऐसी प्रणय कल्पना कैसे कर रही हो। किस से बोल रही हो।"

ऊपा आँखें मलती हुई, अपनी शैया से उठी। अपने को सखियों से घिरी देख कर वह अत्यंत लज्जित हुई। सखियों ने प्रश्न पर प्रश्न करने आरम्भ कर दिये। तब प्रश्नों से ऊब कर उसने कहा—"मेरा चित्त इस समय स्वस्थ नही है, तुम सब यहाँ से चली जाओ, केवल चित्रलेखा ही मेरे पास रहे।"

"जो आज्ञा, कह कर सब सखियाँ अपने अपने स्थानों में चली गयीं। केवल चित्रलेखा कुमारी के समीप रह गयी। तब राजकुमारी ने कहा—"बहिन ! अभी मैंने एक अत्यद्भुत स्वप्न देखा। उससे मेरे अभी तक रोमाञ्च हो रहे हैं। हृदय धड़क रहा है। शरीर में कम्प हो रहा है और चित्त चंचल हो रहा है। मुझे

उसे कहने में लज्जा लगती है।"

अत्यंत ही स्नेह के साथ चित्रलेखा ने कहा—कुमारी जी! भला, अपनों से कहीं लज्जा की जाती है, तुम अपने स्वप्न का वृत्तान्त मुझे बताओ। यदि मैं कुछ कर सकती होंगी, तो उसका उपाय अवश्य करूँगी।"

लजाते हुए राजकुमारी ने कहा—"बहिन! मैंने स्वप्नमें एक युवक को देखा है। उसका वर्ण नूतन जल भरे मेघों के समान श्याम था, कमल के सदृश बड़े बड़े विकसित उसके नेत्र थे, सुन्दर दमकता हुआ पीताम्बर उसने ओढ़ रखा था। बेलन के समान गोल गोल पुष्ट उसकी विशाल बाहुएँ थीं। वह इतना सुन्दर और आकर्षक था, कि उसे देखते ही मेरा मन खो गया। उसने मुझे अत्यंत ही सुख दिया, किन्तु बीचमें ही वह मुझे अतृप्तावस्था में त्यागकर न जाने कहाँ चला गया। बहिन! मैं सत्य कहती हूँ, उसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। यह साधारण स्वप्न नहीं था, यथार्थ सी घटना थी। मैं उसीको कान्त कान्त कहकर पुकार रही हूँ, उसीको खोज रही हूँ।"

चित्रलेखाने अत्यंत ही उल्लास के साथ कहा—"यह कौन सी बात है, तीनों लोकोंमें यदि ऐसा कोई प्रसिद्ध पुरुष होगा, तो मैं तुम्हें उसे अवश्य प्राप्त करा सकूँगी।"

दीनता के स्वर में चित्रलेखा से लिपटती हुई ऊषा बोली—"बहिन! यदि तुमने मेरा यह मनोरथ पूर्ण कर दिया, तो जीवन भर तुम्हारे इस उपकार को न भूलूँगी। सदा तुम्हारे गुण गाती रहूँगी।"

ममता के स्वर में चित्रलेखा ने कहा—"कुमारीजी! भला अपनी सेविकाओं से ऐसे कहा जाता है। अच्छा, यह तो बताओ, वह कोई देवता था या मनुष्य।

ऊषाने कहा—"मैं तो निर्णय ही न कर सकी, कि वह देवता

था यक्ष, या गन्धर्व, मनुष्य अथवा पुरुष था।"

चित्रलेखाने कहा—"कोई बात नहीं; मैं अपनी पट्टिकापर तीनों लोकोंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषोंके चित्र बनाती हूँ, तुम उनमेंसे अपने प्रियतमको पहिचान लेना।"

ऊषाने कहा—"अच्छी बात है, बनाओ।" यह सुनकर चित्रलेखा अपनी पट्टिका ले आयी, उसकी पट्टिका इस ढंगकी थी, कि चित्र बनाओ तुरन्त संकेत करते ही वह मिट जाता। फिर उस पर दूसरा बनालो तीसरा बनालो। चाहे जितने बनाते चलो।

चित्रलेखा चित्रबनानेमें बड़ी ही प्रवीणा थी, उस पट्टिका पर सर्व प्रथम इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, अश्विनी कुमार तथा अन्यान्य मुख्य मुख्य देवताओंके चित्र बनाये। ऊषाने कह दिया—"नहीं इनमेंसे कोई नहीं है।" तब उसने बड़े बड़े जन्म जात सिद्धोंके चित्र बनाये उनमें भी कोई न होने पर उसने चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष, राक्षस तथा अन्यान्य उपदेवोंके बनाये। ऊषा सबको देखकर सिर हिला देती चित्रलेखा तुरन्त उसे मिटा देती और फिर बना देती। उसे चित्र बनानेमें तनिक भी श्रम न होता। मनसे जिसका ध्यान करती, वही उसकी दृष्टि के सम्मुख आजाता तूलिका उठाई और उसने चित्र अङ्कित कर दिया। ऊषाने जहाँ सिर हिलाया, उसने तुरन्त उसे मिटा दिया इस कामको,वह इतनी शीघ्रता और स्वच्छतासे कर रही थी, कि विश्वकर्मा भी देखता, तो आश्चर्य चकित हो जाता। जब वह मुख्य मुख्य देव और उपदेवोंके चित्र बना चुकी तो, ऊषाने कहा—"बहिन ! मुझे प्रतीत होता है वह नर श्रेष्ठ कोई पृथिवी का ही राजकुमार है। मैंने उसके पलक गिरते देखे थे।"

हँस कर चित्रलेखाने कहा—"यह बात तुमने मुझसे पहिले क्यों नहीं कह दी। अच्छी बात है, अब मैं देखो' पृथिवीके सभी

मुख्य मुख्य राजा और राजकुमारों के चित्र बनाती हूँ।"

यह कहकर उसने सर्व प्रथम सूर्य वंश के उस समय जितने प्रसिद्ध राजा राजकुमार थे, उन सबके चित्र बनाये, फिर अन्यान्य राजाओं के बनाये। चन्द्रवंश के मुख्य मुख्य राजाओं के चित्र लिखे। फिर उसने यादवों में उग्रसेनजी का चित्र बनाया, तदनंतर वासुदेवजी का। अब तो ऊपा की आंखे चमकने लगीं। तब उसने बलरामजी का चित्र बनाया,तदनंतर श्रीकृष्ण भगवान् का चित्र बनाया। भगवान् के चित्र को देखकर वह परम लज्जित हुई, उसने सिर नीचा कर लिया। चित्रलेखा ने पूछा-"क्यों, ये ही हैं क्या ?"

लजाते हुए ऊपाने सिर हिला दिया। चित्रलेखा उसके भाव को समझ गयी, इसी वशकों कोई है फिर उसने प्रद्युम्नजी का चित्र बनाया उसे देखकर बोली—"मुझे सदेह हो रहा है, रूप, आकृति मे तो वे ऐसे ही थे, किन्तु ये हैं नहीं।" तब चित्रलेखा ने अनिरुद्धजी का चित्र बनाया। उसे देखते ही ऊपा चौंक पड़ी सहसा अपने आप ही उसके मुख से निकल पड़ा कि ये ही हैं। ये ही हैं। इन्ही को मैं अपना कान्त कह रही थी, इन्होंने ही मेरे चित्त को चुराया है।"

यहसुनकर चित्रलेखाने चित्र बनाना बदकरदिया औरबोली-"ये तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पौत्र और कामावतार प्रद्युम्नजी के प्रथम पुत्र हैं। इनका पाना तो बड़ा कठिन है। जैसे तुम्हारा पुर पर्वतों से घिरा है, वैसे ही इनकी पुरी समुद्र से घिरी है जैसे तुम्हारे पुर की पशुपति विश्वनाथ रक्षा करते है, वैसे ही इनकी पुरी की प्रेमावतार श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् रक्षा करते है। जैसे तुम्हारी पुरी में बिना शिवजी की इच्छा से पवन भी प्रवेश नहीं कर सकता वैसे ही इनकी पुरी में मन भी नही जा सकता।"

ऊपाने निराशा के स्वर में कहा-"तब फिर तुम मेरे जीवन

का भी अन्त ही समझो। यह पुरुष मुझे प्राप्त न हुआ, तो मैं जीवित नहीं रह सकती।" यह कहते कहते वह मूर्छित हो गयी।

चित्रलेखा ने धैर्य बँधाते हुए उससे कहा—"राजपुत्रि! तुम अधीर मत हो, मैं तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करूँगी। तुम शीघ्र ही अपने कान्त को यहाँ देखोगी। मैं अपनी योग शक्ति से इन प्रद्युम्न आनन्द वर्धन अनिरुद्धजी को यहाँ ले आऊँगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इतना कहकर योगिनी चित्रलेखा आकाश में उड़ी और कुछ ही काल में द्वारकापुरी में पहुँच गयी। अब जिस प्रकार वह अनिरुद्धजी को उड़ा लावेगी, उस कथा प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा।"

### छप्पय

ऊषा बोली—"बहिन! स्वप्न महँ नर इक आयो।
मन मेरो लै गयो तनिक अधरामृत प्यायो॥
जो न मिले वह वीर धीर हिय महँ नहिं धारूँ।
तजूँ प्रान विष खाई अगिनि महँ तन कूँ जारूँ॥
चित्र चित्रलेखा लिखे, नर किंनर सुर असुर वर।
लखि यदुवर अनिरुद्ध कूँ बोली—'जिह मम चित्तहर'॥

# चित्रलेखा द्वारा अनिरुद्धजी को उड़ालाना

## ( ११२२ )

चित्रालेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्ययोगिनी ।
ययौ विहायसाःराजन् द्वारकां कृष्ण पालिताम् ॥
तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्नि योगमास्थिता ।
गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ६२ अ० २२, २३ श्लो० )

छप्पय

समुझि कृष्णको पौत्र चित्रलेखा घबराई ।
योग शक्ति तैं उड़ी द्वारका छिन महँ आई ॥
देखे श्री अनिरुद्ध सुखद शैया पै सोवत ।
शशि सम करत प्रकाश कामिनिनि के मन मोहत॥
विकल प्रिया के प्रेम महँ, लखि बाला विस्मित भई ।
शैया सहित उठाइ के, शोणितपुर महँ लै गई ॥

प्रेम सम्बन्ध पूर्वजन्म के प्रभाव से दो हृदयों में एक साथ उठता है और प्रारब्ध उन दोनोंको एकत्रित कर देता है । जब तक

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! योगिनी चित्रलेखा यह जानकर कि ऊषा के मनको हरण करने वाले श्रीकृष्ण के पौत्र प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्धजी हैं, तो वह श्रीकृष्णपालिता द्वारकापुरी मे आकाश मार्ग से पहुँच गयी । वहाँ सुन्दर शैया पर सोते हुए अनिरुद्धजी को अपनी योग सिद्धि के प्रभाव से शोणितपुर मे ले आयी और अपनी सखी को उसके प्यारे के दर्शन करा दिये ।"

जिसका जिसके साथ सम्बन्ध लिखा है, तब तक वह उसके साथ रहता है। समय समाप्त होने पर चला जाता है। न तो कोई समय के पहिले किसीसे मिल सकता है, न समय से अधिक कोई किसी के साथ रह ही सकता है। सबका समय निश्चित है। जब जिसके मिलने का समय आवेगा तब से उसे चाहें सात तालों के भीतर बंद कर दो, तो भी वह अपने प्रेमी से मिल जायगा। समय न होने पर एक घर में साथ साथ रहने पर भी नहीं मिल सकते। संयोग वियोग ये सब पूर्वजन्म के संस्कारों के ऊपर निर्भर है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! चित्रलेखा ने जब समझ लिया कि मेरी सखी ऊषा जिनके ऊपर आसक्त है, वे श्रीकृष्णचन्द्र के पौत्र है, तो वह योग के द्वारा आकाशमार्ग से उड़कर द्वारकापुरी मे पहुँच गयी। वहाँ उसने चित्रसारी से ऊपर सुन्दर सुखद शैया पर शयन करते हुए अनिरुद्धजी को देखा। उनका सर्वाङ्ग सुगन्धित पुष्पों की मालाओं से तथा दिव्य चन्दन से चर्चित था। वह एक अत्यंत पतले रेशमी पीताम्बरको ओढे हुए थे। दिव्य पुरुष, चन्दन तथा अन्यान्य सुगन्धित द्रव्यों से उनको शैया सुवासित हो रही थी। वे किसी की चिन्ता में अर्घ सुप्तावस्था में कुछ प्रलाप सा कर रहे थे और विकलता मे तड़प से रहे थे। चित्रलेखा ने उनकी आकृति प्रकृति से अनुभव किया, ये भी किसी के लिये व्याकुल हो रहे है। संभव है ये भा ऊषा के लिये ही विकल बने हों।" यह सोचकर उसने शैया सहित अनिरुद्धजी को उठा लिया और उन्हें आकाश मार्ग से ही लेकर शोणितपुर में पहुँची। यद्यपि गणेशजी द्वार पर बिराजमान थे, शिवजी उस पुर की रक्षा करते थे। उनके बिना जाने पवन भी पुर में प्रवेश नही कर सकते थे, किन्तु उन्होने चित्रलेखा के मार्ग में विघ्न

उपस्थित नहीं किया। चित्रलेखा सकुशल अनिरुद्धजी को लेकर ऊषा के अन्तःपुर में आ गयी।

ऊषा अनिरुद्धजी की ही चिन्ता में व्याकुल हुई पड़ी थी, उसे शरीर की भी सुधि नहीं थी। वह लम्बी सासें ले रही थी। चित्रलेखा ने उसे चेत कराया। अनिरुद्धजी से उसे मिलाया। ऊषा अनिरुद्धजी को देखकर परम प्रसन्न हुई और अनिरुद्धजी अपनी प्रिया को पहिचान कर परम प्रमुदित हुए। दोनों ने परस्पर में एक दूसरे को अपनाया, उन्होंने शास्त्र विधि से गान्धर्व विवाह कर लिया और वे दोनो सुख पूर्वक रहकर आनन्द विहार करने लगे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! हमें इसमें कुछ शङ्कायें रह गयीं हैं। पहिली शङ्का तो यह कि सर्वज्ञ भगवान् के द्वारका में रहते हुए, चित्रलेखा की क्या सामर्थ्य थी, जो वह रात्रि में उनके पौत्र को उड़ालाती? दूसरी शङ्का यह कि आपने कहा—'अनिरुद्धजी ने अपनी प्रियाको पहिचान लिया।' सो अनिरुद्धजी ने तो अभी तक ऊषा को देखा भी नहीं, फिर उन्होंने उसे पहिचान कैसे लिया? तीसरी शङ्का यह कि जब बाणासुर के पुर के पशुपति रक्षक थे, पार्वतीजो गणपति वहाँ उपस्थित थे, तब छिप कर चित्रलेखा उन्हें ले कैसे आयी, *भगवान् पशुपति ने उसे ऐसा* अधर्म करने से रोका क्यों नही? बाणासुर को इसकी इसकी सूचना क्यों नही दी?"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज! आपके तीनों प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर यह है, कि भगवान् की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नही हिलता और भगवान् जिस कार्य कोकराना चाहते है उसे कोई रोक नहीं सकता। रही द्वारका में और शोणितपुर

में श्रीकृष्ण और भगवान् विश्वनाथ के रोकने की बात, इनके रहते चोरी क्यों हो गयी और चोरी का माल शोणितपुर में कैसे आ गया, सो भगवन् ! जब चोर और पहरे वाले दोनों ही मिल जायँगे, तब तो चोरी हो ही जायगी। वास्तव में यह सब शंकरजी और सर्वज्ञ श्रीकृष्ण की इच्छा से ही हुआ। इस सम्बन्ध में एक पौराणिक इतिहास है, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। इसमे आपकी सभी शङ्काओं का समाधान हो जायगा।

एक दिन हिमालय के पुण्यशिखर पर पार्वतीजी के साथ शिवजी सरस क्रीड़ायें कर रहे थे, उसी समय दैव योग से सखियों के साथ उपवन में घूमती हुई बाणतनया ऊषा वहाँ पहुंच गयी। वहाँ किसी भी पुरुष का प्रवेश नहीं हो सकता था, क्योंकि वह स्त्रियों की ही क्रीड़ास्थली थी, किन्तु शंकर तो समस्त केदारखण्ड के ईश्वर हैं, वह उनकी क्रीड़ाभूमि है, उन्हें कौन रोक सकता है। ऊषा ने जब शिवा और शिव को रमण करते देखा तो उसके मन में भी पति प्राप्ति की इच्छा हुई। उसने अति सुन्दर पति प्राप्ति के निमित्त जगदम्बिका भवानी शिवा की आराधना की। भगवती पार्वती बाणपुत्री की भक्ति से प्रसन्न हुई और उसे वर दिया—"तुझे अत्यन्त सुन्दर पति शीघ्र ही प्राप्त होगा।"

पार्वतीजी जानती थी, कि साक्षात् कामदेव का पुत्र अनिरुद्ध आजकल सबमें सुन्दर है। उसीके साथ इसका विवाह होना निश्चित भी है। किन्तु बाण का यह किला ऐसा दुर्भेद्य है कि इसमें किसी का प्रवेश सम्भव नहीं। फिर इस पुर की रक्षा शिवजी करते हैं, इस लिये कोई युक्ति करनी चाहिए। यही सोचकर उन्होने अनिरुद्ध को स्वप्न दिया।

एक दिन अनिरुद्धजी अपनी सुसज्जित शैया पर शयन कर रहे थे, उन्होंने स्वप्न क्या देखा कि एक अत्यन्त ही सुन्दरी सुकुमारी राजकुमारी कन्या उसकी शैया के समीप खड़ी है। उसका सम्पूर्ण अङ्ग सुवासित चंदन से चर्चित है, अङ्ग प्रत्यंग से सौदर्य फूट फूटकर निकल रहा है। वह अमूल्य रत्नाभरणों से विभूषित है, मणिमय कुण्डलों की कान्ति से उनके गंडस्थल उल्लसित हैं, अतीव सूक्ष्म वस्त्रों को धारण किये पैरों के मंजीरों से रुनुभुनु रुनुभुनु शब्द कर रही है। कबरी में कुसुमों की माला गुंथी है, मस्तक पर कस्तूरी कुंकुम युक्त तिलक शोभा दे रहा है, बड़े-बड़े विशाल प्रफुल्लित कजरारे नयनों से वह निहार रही है उसके नख और पदतल आलक्त के रंग से रंजित हैं। वह अनुराग भरित दृष्टि से व्रीडा सहित अनिरुद्धजी को ही देख रही है।

अनिरुद्धजी ने पूछा—'देवि ! तुम कौन हो ! तुम स्वर्ग की अप्सरा हो या मर्त्य लोक की मानवी हो अथवा विद्याधर, किंपुरुष या गन्धर्व की कन्या हो ?"

उस युवती ने कहा—"प्रभो ! न मैं देवी हूँ न किंपुरुषी न गन्धर्वी। मैं तो शोणितपुर के असुरराज बाण की पुत्री हूँ, ऊषा मेरा नाम है, यदि आप मुझ से स्नेह करते है तो मुझ से विधिवत् विवाह कर लीजिये। क्योंकि अधर्म पूर्वक किये सम्बन्ध से स्त्री पुरुष दोनों को ही घोर नरकों की यातनायें सहनीपड़ती हैं। इसलिये आप मुझ से प्रेम करते हैं, तो या तो मेरे पिता से मेरी याचना करें अथवा भगवान् शङ्कर से ऐसा कहकर वहकन्या वही अन्तर्धान हो गयी। उसी समय अनिरुद्ध की आखें खुल गयीं। वे

उस कन्या को स्मरण करके मूर्छित हो गये, घबराने लगे अन्न जल सब कुछ छोड़ दिया।

यह देखकर रुक्मिणीजी, देवकीजी, अनिरुद्ध की माता रुक्मवती ये सबके सब बड़ी घबरायी। भगवान् ने सबको सन्त्वना दी। कुछ नही लड़का है कुछ हो गया होगा दो चार दिन में अच्छा हो जायगा। यों कहकर सबको समझा दिया। एकान्त में रुक्मिणीजी से कहा—"देखो पार्वतीजी ने मेरे पौत्र को पगला बना दिया है अब मैं भी उनके भक्त वाणासुर की पुत्री को पगली बना दूँगा। यह कहकर भगवान् ने उसे ऊषा को स्वप्न में अनिरुद्धजी के दर्शन करा दिये। वह इनको देखकर पगली हो गयी। अब बीच में चित्रलेखा को डाल दिया। दोनों ओर मिली भगत थी। इसलिए न तो अनिरुद्ध के लाते समय भगवान् ने चूँ करी और न शिवजी ने तथा उनके गणों ने पुर प्रवेश के समय कोई आपत्ति की। दोनों बहू दुलहा मिल गये और आनन्द के साथ चौपर खेलने लगे। अनिरुद्ध तो अपनी प्रिया को पाकर प्रसन्न थे। भगवान् के यहाँ लाखों पुत्र पौत्र थे। उन सबको न कोई सूची ही थी न नित्य उपस्थिति ही ली जाती थी। जिसकी जहाँ इच्छा होती चला जाता जहाँ भी स्वयम्वर की सूचना पाते वहीं बहुत से दौड़े जाते। भगवान् से किसी ने पूछा, तो कह दिया—"अरे कहीं स्वयम्वर में चला गया होगा, क्यों चिन्ता करते हो।" सब चुप हो गये भगवान् तो सब जानते थे, इसलिये निश्चिन्त थे। वाणासुर इसलिये

निश्चिन्त था, कि हमारे पुर के शिवजी रक्षक हैं। इस प्रकार अनिरुद्धजी को वहाँ रहते हुए वर्षा के चार महीने बड़े सुखसे बीत गये वे ऐसे प्रेम में निमग्न होगये, कि घर द्वार, कुटुम्ब परिवार सबको भूल गये। उन्हें यह भी पता नहीं चलता कब दिन हुआ कब रात्रि हुई। उस परम सुन्दर सुकुमार मनोज्ञ वर को पाकर ऊषा भी अत्यंत हर्षित थी। अनिरुद्ध के शील, स्वभाव सौन्दर्य और क्रीड़ा प्रियता के कारण उसका अनुराग उनमें शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान निरन्तर बढ़ता जाता था। जिस अन्तःपुर में पुरुष की परछाई भी नहीं पहुँच सकती थी उसमें अनिरुद्ध जो दिन रात्रि रहने लगे। ऊषा उन्हें बहुमूल्य वस्त्र, माला,चंदन धूप दीप और सुन्दर आसनादि अर्पित करके तथा विविध भाँति के मीठे खट्टे चरपरे और नमकीन, भक्ष्य,भोज्य. लेह्य और चोष्य आदि पदार्थों से सदा सन्तुष्ट रखती। उनसे हँसकर सुमधुर मनोहर वाणी बोलती तथा निरन्तर सेवा शुश्रूषा में निरत रहती। यह सेवा ऐसी वस्तु है। कि जड़ पाषाण को भी चैतन्य बना लेती है। इसीलिये यदु श्रेष्ठ अनिरुद्धजी उसकी सेवा और सम्मान से उसके वश में हो गये।

कोई भी बात बहुत दिन तक यत्न पूर्वक छिपाने पर भी किसी दिन अवश्य प्रकट हो जाती है। ऊषा के अन्तःपुर में जो बहुत बूढ़े बूढ़े विश्वासी पहरेदार रहते थे,वे जाते आते कभी राजकुमारी को देखते, तो उन्हें सन्देह होने लगता। क्योंकि कुमारी व्रतसे स्खलित होने के स्पष्ट चिह्न छिपाने से भी नहीं छिप सकते। फिर निरन्तर समीप रहने वालों से छिपाना तो और भी कठिन हो जाता है। कभी कभी द्वारपालों को पुरुष की सी हँसी स्पष्ट सुनाई देती स्त्री और पुरुष की वाणी में तो प्रत्यक्ष ही अन्तर दिखाई दे जाता है। अब द्वारपालों को विश्वास होगया, अवश्य कन्या के अन्तःपुर में किसी प्रकार किसी पुरुष का प्रवेश होगया

वे लोग इस बात को स्मरण करके बड़े डरे, कि कहीं ऐसा न हो महाराज को विदित हो जाय और सन्देह पर हमको ही शूली पर चढ़ा दिया जाय, इसलिये हमें ही प्रथम जाकर इसकी सूचना दे देनी चाहिये।" फिर उन्होंने सोचा-"ऐसा न हो, बात असत्य हो, तो उलट कर हमारे ही ऊपर पड़े। इसलिये पहिले इस बात को निश्चय कर ले।" यही सोच कर वे अब अन्वेषण करने लगे। एक दिन उन्होंने स्पष्ट अनिरुद्ध जी को देख लिया। उसी समय दौड़े गये और हाथ जोड़ कर डरते हुए बोले—"प्रभो! हमें क्षमा दान दिया जाय एक बड़ा ही अशुभ समाचार है।

वाणासुर ने कहा—"क्या बात है। तुम लोग शीघ्र ही मुझे सब सुनाओ।"

अत्यत भयभीत होकर लड़खड़ाती वाणी में एक वृद्ध द्वारपालने कहा—"प्रभो! आपकी अविवाहिता कुमारी का आचरण हमें अपने कुल को कलंकित करने वाला दिखाई देता है।"

यह सुनकर वाणासुर तो सन्न रह गया। उसने शीघ्रता के साथ कहा—"क्यों! क्यो! क्या हुआ! क्या हुआ! मुझे स्पष्ट सब बातें बताओ।"

द्वारपाल बोला—"क्या बतावें महाराज। प्रतीत होता है कन्या के अन्तःपुर में किसी पुरुष का प्रवेश हो गया है।

रोष में भरकर डाँटते हुए वाणासुर ने कहा—"तुम सब कहाँ चले गये थे, तुम्हारे रहते ऐसा अनर्थ कैसे हो गया?"

डरते हुए द्वारपाल ने कहा—"प्रभो! हमतो बड़ी सावधानी से निरन्तर कन्या के अन्तःपुर की रक्षा करते रहते हैं, हमारे रहते कन्या की ओर झाँकना तो पृथक् रहा कोई उस घर के द्वार की ओर भी नहीं झाँक सकता फिर भी कौन ऐसा चोर आ गया, किसने ऐसा कृत्य कर दिया हम कह नहीं सकते। हमारी बुद्धि काम नहीं देती।"

वाणासुर ने कहा—"अरे, भाई ! जिस किसी ने भी प्रवेश किया होगा, द्वार से ही तो किया होगा ? तुमने उसे देखा नहीं ?"

द्वारपाल ने कहा—"प्रभो ! यदि द्वार से किसी भी पुरुष ने प्रवेश किया हो तो हमें जीवित ही गड़वा दें या और जो उचित समझें वह दण्ड दे । हम दृढ़ता के साथ कहते हैं, द्वार से तो मनुष्य की कौन कहे कोई पक्षी भी प्रवेश नहीं कर सकता ।"

यह सुनकर वाणासुर को बड़ा विस्मय हुआ । उसे आश्चर्य और क्रोध एक साथ हो रहा था । उसने द्वारपालों से कहा—"अच्छा, चलो हम अभी चलकर देखते हैं, वह कौन ऐसा साहसी पुरुष है, किसके धड़ पर दो सिर हैं ।"

सूतजी कहते है—"मुनियो ! ऐसा कहकर वाणासुर ने हाथ में अपना शूल उठाया और वह द्वारपालों के साथ ही कन्या के अन्तःपुर की ओर चल दिया । अब ससुर जमाई में जो गुत्थम गुत्थी मुक्का मुक्की पटका पटकी होगी उसका वर्णन मैं आगे करूँगा ।

छप्पय

शोणितपुर महँ आइ सखी कूँ कुमर दिखायो ।
कुमरि मुदित अति भई कुमर वर मनइच्छित पायो ॥
खान, पान, सक, धूप, दीप तैं रति सम्माने ।
ऊषा सँग अनिरुद्ध नहीं दिन बीतत जाने ॥
गर्भवती ऊषा भई, द्वारपाल सब जानि कें ।
वाणासुर तें कह्यो सब, चल्यो असुर सर तानि कें ॥

# वाणासुर द्वारा अनिरुद्धजीका बन्धन

( ११२३ )

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली,
घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह।
ऊषा भृशं शोकविषाद विह्वला,
बद्धं निशम्याश्रु कलाक्ष्यरौदिषीत् ॥*
( श्रीभा० १० स्कं० ६२ अ० ३५ श्लो० )

छप्पय

आइ असुर ने लख्यो कुँवरि ढिंग नर इक कारो।
अति सुन्दर मन हरन सुघर वर अतिशय प्यारो॥
कछुक कहे कटु बचन न यदुवर सुनि घबराये।
तबई सैनिक समर साज सजि लड़िवे आये॥
लोह परिघ अनिरुद्ध लै, लड़न लगे सैनिक डरे।
प्रबल प्रहार न सहि सके, कछु भागे कछु गिरि मरे॥

बाल्यकालमें माताके प्रति स्नेह अधिक होता है, बड़े होने पर, वह बहिनों में हो जाता है और वृद्धावस्थामें पुत्रियोंमें। इसीलिये

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! बलिनन्दन बाणासुर ने उन अनिरुद्धजी को नागपाशमें बाँध लिया जो उसकी सेनाका संहार कर रहे थे। ऊषा ने जब देखा कि मेरे प्रियतम बन्धन मे पड़ गये हैं, तो वह अत्यंत ही शोक और विषाद से विह्वल होकर रोने लगी।"

बच्चे अपनी माता का बहुत सम्मान करते हैं, उनकी माता के सम्बन्धमें कोई कुवाच्य वचन कह दे तो वे मरने मारनेको तत्पर हो जाते है। युवावस्थामें बहिनके प्रति आदर होता है। कोई बहिन के सम्बन्धमें कुछ कहे तो उसे सबसे बड़ा अपमान समझते हैं। बूढ़े होने पर पुत्रीकी प्रतिष्ठाका बड़ा ध्यान रहता है। लड़की जहाँ तनिक स्यानी हुई कि वह आँखों में खटकती रहती है। किसी प्रकार यह सम्मान पूर्वक अपने घर चली जाय, यही चिन्ता सदा बनी रहती है। माता पिताके लिये पुत्री के सम्बन्ध मे कोई ऐसी वैसी अप्रतिष्ठा सूचक बात सुनने पर मर्मान्तिक पीड़ा होती है। इस क्रोधावेश में वे जो भी कर डालें वही थोड़ा है।

सूतजी कहते है—"मुनियो! कुमारी अवस्थामें अपनी पुत्रीको गर्भिणी सुनकर बाणासुरके रोम रोमसे क्रोधकी ज्वाला निकलने लगी। वह तुरन्त अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर कन्याके अन्तःपुरमें पहुँचा। वहाँ उसने सम्पूर्ण अंगोमें चन्दन लगाये हुये सुंदर पुष्पोंकी माला पहिने हुए पान खाते हुए अपनी प्रियाके सग चौसर खेलते हुए अनिरुद्धजी को सुन्दर मृदुल आसन पर बैठे देखा। बाणासुर सहसा पहुँच गया था, अपने पिता को देख कर ऊषा लज्जित हुई और वह तुरन्त वहाँ से उठकर दूसरे भवन में चली गयी। क्रोध से लाल लाल आँखें करते हुए बाणासुर ने कहा—"क्यों बे नीच! कुलाङ्गार कपटी, धूर्त! तू कौन है और कैसे यहाँ आ गया है?"

यह सुनकर अनिरुद्धजी को भी क्रोध आ गया और वे बोले—"मैं तेरा जमाई हूँ। मैं चन्द्रवंशी हूँ, यादव श्रेष्ठ वसुदेवजी मेरे वृद्ध प्रपितामह हैं, श्रीकृष्ण भगवान् मेरे पितामह हैं, कामावतार भगवान् प्रद्युम्न मेरे पिता है और मेरा नाम अनिरुद्ध है।"

यह सुनकर असुर अवहेलना और घृणा प्रकट करते हुए हँसा और बोला—"यादव ही ऐसा नीच धर्म विरुद्ध कार्य कर

सकते हैं। तुम्हारे कुल वालोंकी करतूतें तो जगत् प्रसिद्ध हैं। पहिले तू अपने बापकी करतूत सुनले, जिसका तू ऐसा नीच कुलागार कामी अधार्मिक पुत्र हुआ। शम्बरासुरको पत्नी मायावतीने तेरे बापको पाला पोसा। उसीसे उस दुष्टने अनुचित सम्बन्ध किया। छलसे उस असुरको मार कर उसकी पत्नीको हर लाया। ऐसे कामी और विश्वासघातीसे तेरे जैसा पुत्र होना स्वाभाविक ही है। तेरे बाबाकी बातें तो विश्व विदित हैं। वह तो चोरजारशिखामणि करके सर्वत्र प्रसिद्ध है। उसके न बापका पता न माँका। मथुरामें वह अपनेको क्षत्रिय कहता था। वृन्दावनमें वही वैश्य वृत्तिसे जीवन बिताने वाले अहीर नंदका वह पुत्रकरके प्रसिद्ध था। अभी तक सब उसे नंद नंदन यशोदा सुत कहते हैं। कोई उसे देवकी नंदन कहता है कोई यशुमति नंदन। कोई बासुदेव कहता है तो कोई नंदलाल। वृन्दावनमें रहकर वह नंदकी गौओंको चराया करता था। वहाँ गोपियोंके साथ उसने जो कुछ किया वह तुझसे क्या संसारसे छिपा नहीं है। वहाँसे जब मथुरामें आया, तो अपने सगे मामा-को मार डाला। एक कुबड़ी दासी थी, उससे उसने अनुचित सम्बन्ध स्थापित किया। एक दुर्बल नरकासुर था, उसे छल बलसे मारकर उसके यहाँसे राजकन्याओंको हर लाया। भीष्मक और रुक्मी जो वीर्य हीन थे उन्हें बाँधकर रुक्मिणीको हर लाया नरकासुर तो उसीका लड़का था, उसे स्त्रियोंके लोभसे ही उसने मार डाला। सत्राजित् सूर्य का भक्त था, उसे मरवा कर—उसकी मणि छीनली। बूढ़े रीछको बाँधकर उसकी कन्या ले आया। इन्द्र तो उसका भाई था, किन्तु स्त्रीके वशीभूत होकर वह उससे भी लड़ बैठा और उसके यहाँ से कल्पवृक्ष को हर लाया। उसका बाप वसुदेव अत्यंत ही भीरु। अपने पुत्रोको मरवा दिया। चोरी से कृष्णको गोकुल पहुँचा आया। उसकी बहिन कुन्तीने कुमारी

अवस्थामें ही पुत्र पैदा कर दिया। पतिके रहते हुए दूसरोंसे पुत्र उत्पन्न कराये। वे पाँचों भी ऐसे हुए कि पाँचोंने एक स्त्रीके साथ विवाह किया। वसुदेवका एक पुत्र कृष्ण है जो सर्वत्र गोपीजन वल्लभ प्रसिद्ध है। दूसरा बलदेव है जो निरन्तर वारुणी पीता है अपने छोटेभाई कृष्णकी पत्नी यमुनाको क्रीड़ाके लिये उसने बुलाया तुम्हारा तो सम्पूर्ण वंश ही ऐसा है। किन्तु इस समय तू बुरे स्थानमें आकर फँस गया। यहाँ मैं तुझे ही नहीं मारूँगा तुझे बाँधलूँगा और फिर तेरा पक्ष लेकर जो भी यादव आवेगा उसे ही यम सदन पठाऊँगा ! नीच तूने मेरी प्रतिष्ठामें बट्टा लगाया है, मेरे सिरपर पैर रखकर चोरीसे छिपकर तैंने मेरा अपमान किया है। मैं तुझे और तेरे सम्पूर्ण परिवारको इसका फल चखाऊँगा।"

यह सुनकर गम्भीरताके साथ अनिरुद्धजी कहने लगे—"असुरराज ! तुमने ये सब बातें अज्ञान वश मूर्खता पूर्ण कही हैं। मेरे पिताको आप जानते नहीं। वे ब्रह्माजीके पुत्र कामदेव हैं। शिवजीके शापसे वे अनङ्ग बन गये थे और उनकी पत्नीकी प्रार्थनापर शिवजीके पुनः वरसे वे शरीरी हुए हैं जिन्हें तुम शम्बरकी पत्नी मायावती बता रहे हो, वास्तवमें वे काम पत्नी रति ही है। वे अपने यथार्थ रूपसे गुप्त रहती थीं और अपनी एक छाया रूपसे शम्बरके महलोंमें उसे मोहित करने के लिए रहती थीं। जैसे यथार्थ सीता तो अग्निमें रही आई और उनकी प्रति कृतिको रावण हर लेगया था। इसी प्रकार रति देवी अपने शत्रुको मरवा कर अपने यथार्थ पतिके यहाँ आ गयीं।

तुम मेरे पितामह श्रीकृष्णचन्द्रको जो लांछन लगा रहे हो, वे सब मिथ्या हैं, वे तो सर्वेश्वर हैं उत्तम पुरुष हैं। भक्तोंके दिये हुये वरोंको यथार्थ करने के अवतरित होते हैं और जो भक्त उनसे जिस बातकी इच्छा करते हैं, उन्हें वे वही करते

प्रदान करते हैं। उनके लिये कोई वस्तु अदेय नहीं। उनके लिए न कुछ विधि है न निषेध। वे किसी भी कर्मके करनेसे बँधते नहीं। वे बन्धन मुक्ति दोनोंसे परे हैं। उनका न कोई शत्रु है न मित्र। तुम उनके बड़े भाईको जो मधु पान रत बताते हो, वास्तवमें वे सड़ी मधु नहीं पीते पुष्पोंके रसका पान करते हैं। कुन्तीजी और द्रौपदीजीके सम्बन्धमें तुमने जो भी कुछ कहा वह सब मिथ्या है। उनका तो कन्यापन नष्ट ही नहीं हुआ। इनका सम्बन्ध धर्मके साक्षी देवताओंसे हुआ। तभी तो ये प्रातः स्मरणीय कही गयी हैं। भगवान् स्वयं साक्षात् गोलोक से पधारे हैं। करोड़ों गोप, गोपी तथा गौएँ उनके साथ आयी हैं। वे सबके अधीश्वर हैं। स्वामी हैं। उनकी अचिन्त्य लीलाओं-के सम्बन्धमें तुम जैसे असुर प्रकृतिके क्या समझ सकते हैं। तुम्हारे बाप समझते थे, बापके बाप और उनके बापभी इन हमारे पितामह परमेश्वरकी महत्ताको जानते थे। यह ऊषा धर्मतः मेरी पत्नी है मैंने शास्त्रकी आज्ञासे इसकी सहमतिसे इसके साथ गन्धर्व विवाह कर लिया है। इसमें अधर्म अन्याय-की कौनसी बात है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अनिरुद्ध और बाणासुरमें ये बातें हो ही रही थीं, कि इतनेमें ही बाणका मंत्री कूष्माण्ड बड़ी भारी सेना लेकर क्रोधमें भर कर वहाँ आ पहुँचा और दाँत कट कटाकर बड़े क्रोधसे बोला—"राजन! इस दुर्विनीत बालकने हमारे वंशका बड़ा अपमान किया है। इसलिये आप इससे ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं। इसे तो तुरन्त ही पकड़कर मार डालना चाहिये।' इतना कहने पर बाणने उसे युद्ध करनेकी अनुमति दे दी। अबतो सैनिक "मारो, काटो, जीवित ही पकड़ो, जाने न पावे।" इस प्रकार कहकर वे शूल परिघ, भुशुंडी तथा बाण आदि विविध अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे।

उन सबको प्रहार करते देखकर प्रद्युम्न तनय अनिरुद्ध जी तनिक भी विचलित न हुए। वे एक परिघ उठाकर शत्रुओं के ऊपर टूट पड़े। अब तो सैनिकों के छक्के छूट गये। बहुत से मर गये, बहुतों के हाथ पैर टूट गये वे अनिरुद्धजी के प्रहार को सहन करने में समर्थ नहीं हुए समर छोड़कर वे भाग खड़े हुए। सैनिक उन्हें पकड़ने का उपक्रम कर रहे थे। किन्तु वे किसी की पकड़ाईमें नहीं आते थे। जैसे बडा भारी वराह कुत्तोंके झुण्डोंको मारकर भगा देता है, वैसे उन्होंने बाणासुर के सब सैनिकों को मार भगाया।

बाणासुर अनिरुद्ध की युद्ध चातुरी देखकर अत्यंत ही विस्मित हुआ। उसे मन ही मन प्रसन्नता भी हुई, कि यह मेरी कन्या के पति होने योग्य है, किन्तु बिना युद्ध किये बिना बल प्रदर्शन के यदि मैं इसे अपनी कन्या देता हूँ,तो सर्वत्र मेरा अपयश होगा।" यही सोच कर सैनिकों के भागने पर बाणासुर स्वयं ही आया, उसने तुरन्त नागपाश से अनिरुद्ध जी को बाँध लिया अनिरुद्धजी भी सम्मानार्थ बँध गये। इस प्रकार प्रद्युम्न पुत्र को बाँध कर असुर अपने यहाँ ले गया। महलों में ले जाकर एक अत्यंत सुरक्षित स्थान में सुख पूर्वक उन्हें बन्दी बनाकर रखा।

अनिरुद्ध को जब ऊषा के पिता नागपाश में बाँधकर लिये जा रहे थे, तो खिड़की से ऊषा देख रही थी, और देख देखकर अत्यंत व्याकुल हो रही थी। जब वे उसकी आँखों से ओझल हो गये, तब वह अत्यंत ही विषाद के कारण रोते रोते विह्वल होगई और अचेत होकर भूमि पर गिर गयी।

इधर अनिरुद्धजी जब वर्षा के चार महिना व्यतीत होने पर भी लौट कर द्वारिका नहीं आये,' तब उनके बन्धु बान्धव शोक करने लगे। सभी अत्यन्त चिन्तित होकर अनिरुद्धजी के आने

की बाट जोहने लगे। इतने में ही वीणा बजाते हरि गुण गाते नारदजी द्वारका में पहुँच गये। प्रतीत होता है वर्षा के चार महीने वे स्वर्ग से ऊपर के ही लोकों में भ्रमण करते रहे, चातुर्मास्य समझ कर द्वारका नहीं आये। नारदजी को देखते ही सब खिल उठे। उन्हें घेरकर सब कहने लगे—"महाराज! अनिरुद्ध का पता नहीं लग रहा है। आप उसका कुछ समाचार जानते हों तो बतावें।"

नारदजी ने कहा—"अरे! वह तो केदारनाथजी के समीप बाणासुर की शोणितपुरी में बन्दी बना हुआ है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह सुनकर यादवों को बड़ा क्रोध आया। वे तुरन्त शोणितपुर जाने की व्यग्रता करने लगे अब वे जैसे सब, शोणितपुर जायँगे वह कथा प्रसङ्ग मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

महा बली तब बाण कोप करि आयो रन महँ।
करें युद्ध अनिरुद्ध न शंका कीन्ही मन महँ॥
सहसबाहुने नाग पाश महँ बाँधे लाला।
पतिको बन्धन निरखि भई अति विह्वल बाला॥
इति नारद द्वारावती, आयो कह्यो वृतान्त जब।
सुनत कुपित यादव भये, चले सेन सजि तुरत सब॥

# बाणासुर के लिये हर का हरि से युद्ध

(११२४)

बाणार्थे भगवान्रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ।
आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥*

( श्रीभा० १० स्क० ६३ अ० ६ श्लोक )

छप्पय

राम, कृष्ण, प्रद्युम्न, साम्ब आदिक सब आये ।
शोणितपुर कूँ घेरि शंख अरुपणव बजाये ॥
सुनि पुर रक्षक शम्भु षडानन सब गन गनपति ।
करन युद्ध मिलि चले भिड़े रन भयो विकट अति ॥
कार्तिकेय प्रद्युम्न तैं, सात्यकि बाणासुर लड़त ।
भिड़े शम्भु श्रीकृष्ण तैं, अद्भुत नरलीला करत ॥

भगवान् अपने भक्तों को सुख देने के निमित्त ऐसी ऐसी सरस वीरतापूर्ण लीलायें करते हैं जिन्हें पढ़कर, सुनकर उनके अपने जन तो प्रेम में विह्वल होकर रुदन करने लगते हैं और यज्ञ माया मोहित होकर उनके चरित्रों पर सन्देह करने लगते हैं। उनकी निन्दा करने लगते हैं। जैसे दर्पण में बालक अपने ही मुख को देखकर उसके साथ मधुर हास्य, भयानक, रौद्र और वीरतापूर्ण संकेत कर करके क्रीडा किया करता है। वैसे ही

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! बाणासुर के निमित्त भगवान् भूतपति भोलेनाथ ने नन्दि बैल पर चढ़कर अपने पुत्रों और गणों के सहित बलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्र जी से युद्ध किया।"

भगवान् भी अपने ही विभिन्नरूपों से विभिन्न प्रकार की क्रीड़ायें किया करते हैं। उनमें न राग है न द्वेष राग द्वेषआदितो अज्ञान के चिन्ह हैं। श्री हरि तो नित्य ज्ञान स्वरूप हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब यादवों को यह बात विदित हुई कि बाणासुर के बन्दीगृह में हमारा अनिरुद्ध बन्द है तब तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे सब अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर चतुरङ्गिनी सेना सजा कर पहाड़ों कोतोड़ते फोड़ते शोणित पुर पहुँचे। भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी बलरामजी प्रद्युम्न सात्यकि गद, साम्ब, सारण नन्द, उपनन्द तथा भद्र आदि सभी यादव श्रेष्ठ अनिरुद्धजो को छुड़ाने और बाणासुर से लड़ने चले। उनके साथ बारह अक्षोहिणी सेना थी। एक पूरी सेना तो श्रीकृष्ण भगवान् के पुत्रपौत्रों की ही थी। इन सबने शोणित पुर में पहुँच कर बाणासुर की समस्त पुरी को चारों ओर से घेर लिया।

यादवोंने भुसुंडियों और शतघ्नियों से उसके पुर के सुदृढ़ परकोटे को गिरा दिया। वे परकोटे को तोड़कर नगर के भीतर घुस गये। वहाँ जाकर उन्होने राजाके उद्यान उपवनों को नष्ट भ्रष्ट करना आरम्भ कर दिया। वे राजाकी अटाअटारी और प्रधान द्वार ( गोपुर ) के कंगूरोंको तोड़ने लगे। सिंह द्वारों का विध्वंस करने लगे। बाणासुरने जब यह समाचार सुना, तो वह वीरमानी असुर भी उतनी ही सेना लेकर यादवों का सामना करने—उनसे लड़ने—नगर के बाहर आया उसने भगवान् भवानी पति के पादपद्मों में प्रणाम किया और उनसे प्रार्थना की—"प्रभो ! आज ही मुझे काम पड़ा है। मुझे आप का ही भरोसा है। शत्रु से मेरे पुर की रक्षा कीजिये।" हँसकर शिवजी बोले—"अरे भैया जो सम्पूर्ण जगत् का रक्षक है, उससे कौन रक्षा कर सकता है। फिरभी हमने तुझे वर दिया है। तेरी पुर की रक्षा का भार हमने

लिया है, उसका पालन यथा शक्ति यथा सामर्थ्य करेंगे। तुम अपने सैनिकों को लेकर रण भूमि में चलो। मैं भी अपने अनुचर भूत प्रेत पिशाच, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, साकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, मातृगण, कूष्माण्ड और ब्रह्मराक्षसादि को लेकर चलता हूँ। मेरे पुत्र गणपति और षडानन भी चूहे और मयूर पर चढ़कर युद्ध के लिये चलते हैं, मैं भी नन्दि वृषभ की पीठ पर चढ़कर आता हूँ। मैं श्रीकृष्ण के साथ घोर युद्ध करूँगा।" यह सुनकर वाणासुर परम हर्षित हुआ, वह रण का शंख बजाकर चल दिया। उसने जब यादवों की बड़ी भारी सेना देखी तो उसे प्रसन्नता हुई, चलो आज बहुत दिनों के पश्चात् युद्ध का अवसर तो मिला। उसने यादवों की सेना के सम्मुख नियमानुसार अपनी सेना खड़ी की। यादवों की समस्त सेना का संचालन सात्यकि कर रहे थे। इधर अपनी सेना का संचालन स्वयं वाणासुर कर रहा था। गरुड़ की पीठ पर बैठे श्रीकृष्णचन्द्र अपने शार्ङ्ग धनुष ताने युद्धके लिये तत्पर थे। इतने में ही शङ्कर जी भी अपने पुत्रों और गणों को लेकर रणभूमि में आ गये। वाणासुर भगवान् वृषभध्वज से विनीत भाव से बोला-"विभो! आप श्रीकृष्णचन्द्र से ही लड़ें। मैं सात्यकि को मारकर यादवों की सेना को सेना नायक विहीन किये देता हूँ।"

शिवजी बोले—"भैया हमें तो तू जिससे भिड़ा देगा उसी से भिड़ जायँगे। हम स्वतंत्र थोड़े ही हैं। भक्तों के वश में हैं। भक्त हमें जैसा नाच नचाना चाहते हैं। वैसा नाच हम नाचते हैं।" यह कह कर शङ्कर जी शार्ङ्गधन्वा भगवान् श्याम सुंदर से भिड़ गये। भगवान् शङ्कर के बड़े पुत्र षड़ानन स्वामिकार्तिकेय श्रीकृष्ण के बड़े पुत्र कामावतार प्रद्युम्नजी से युद्ध करनेको तत्पर हुए। वाणासुर के दो प्रबल पराक्रमी सेना पति कुम्भाण्ड और कूपकरण बलरामजी से युद्ध करने लगे। वाणासुर का एक

पुत्र भगवान्‌के पुत्र साम्ब से भिड़ गया। सात्यकि और वाणासुर लड़ने लगे। इस प्रकार सभी ने अपना अपना जोड़ चुन लिया। सब अपने अपने बराबरी के बली वीर से विचित्र रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध करने लगे। दोनों ओर से अभूत पूर्व युद्ध हो रहा था। उस हरिहरात्मक युद्ध को देखने ब्रह्मादिक देवगण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा ऋषि मुनि तथा यक्ष राक्षस विमानों पर चढ़कर आये थे। विमानों की भीड़ से सम्पूर्ण आकाश मंडल भर गया।

श्रीशिवजी अपने पर्वताकार बैल पर चढ़े हुए श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् की ओर बढ़ रहे थे। पीछे से भूत, प्रेत पिशाच गुह्यक, राक्षस, डाकिनी शाकिनी, योगिनी तथा अन्यान्य प्रमथादिगण हाहा हूहू करके किलकारियाँ भर रहे थे। शिवजी ने अपने आजगव धनुष पर वाण चढ़ाकर भगवान् पर वाण छोड़े भगवान् ने भी अपने शार्ङ्ग धनुष पर बाण चढ़ाकर पिनाकपाणि के प्रहारों को व्यर्थ बना दिया फिर एक साथ बहुत से वाण मारकर उनके भूत, प्रेत पिशाचादि गणों को मार भगाया। तब क्रोधमें भरकर त्रिपुरारि भगवान् वृषभध्वज ने गरुड़ध्वज के ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। भगवान् ने भी ब्रह्मास्त्र छोड़कर उसे व्यर्थ बना दिया। तब शिवजीने वायव्यास्त्र को छोड़ा। तब उसे श्यामसुंदर ने पर्वतास्त्र छोड़ कर शान्त कर दिया। इस पर कुपित होकर सदाशिव शङ्कर ने आग्नेयास्त्र को छोड़ा सर्वत्र प्रचण्ड अग्नि की लपटें उठने लगीं मानो अभी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलकर भस्म हो जायगा। तब घनश्याम ने पर्जन्यास्त्र छोड़कर ऐसी वर्षा की, कि सब अग्नि बुझ गयी। ब्रह्मास्त्र, वायव्यास्त्र तथा आग्नेयास्त्र के व्यर्थ बन जाने पर शिवजी ने अपना पाशुपतास्त्र छोड़ा। तुरन्त ही भगवान् ने अपने नारायणास्त्र से उसे भी शान्त कर दिया। अपने अस्त्र को व्यर्थ हुआ देखकर शिवजी

कुछ सिटपिटा से गये, तुरन्त ही भगवान् ने उनपर जृम्भणास्त्र का प्रयोग कर दिया। अब शिवजी को जँम्हाई पर जँम्हाई आने लगी। वे अस्त्र शस्त्र चलानातो भूल गये। मुँह फाड़े फिर जँम्हाई फिर जँम्हाई। भगवान् नें सोचा—"शिवजी को पेट भर के जँम्हाई लेने दो।" यह सोचकर भगवान् आगे बढ़े और वे बाण खड्ग गदा तथा अन्यान्य आयुधों से असुरों की सेना का संहार करने लगे। भगवान् के अस्त्र शस्त्रों की मार को न सह सकने के कारण बाणासुर की सेना तितिर बितिर होगयी। इधर प्रद्युम्न जी के बाणों से स्वामि कार्तिकेय जी का अंग क्षत विक्षत हो गया था अतः वे भी अपने मोर पर चढ़कर उड़ गये। असुर सेना के प्रसिद्ध वीर कुम्भाण्ड और कूपकर्ण इन दोनों को ही बलरामजी ने हल से खींचकर मूसल से मार कर अचेत बना दिया। अपने सेना नायकों को मूर्छित देखकर अन्यान्य सैनिक खेत छोड़कर भाग खड़े हुए। अपनी सेना को भागते देख कर बाणासुर को बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसा उसने सोचा—"यादवों के प्राण ये श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं। ये जिधर से निकल जाते हैं उधर ही काई सी फट जाती है। ये मेरी सेना को जैसे किसान लाई को काटता जाता है उसी प्रकार ये काटते जाते है सर्व प्रथम मैं इन्हें ही युद्ध में परास्त करूँ।" यह सोचकर उसे भगवान् के ऊपर अत्यंत ही क्रोध आया। अब उसने सात्यकि के साथ युद्ध करना तो बंद कर दिया, अपनें रथ को दौड़ाकर वह श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् के सम्मुख आया। सात्यकिजी ने समझ लिया अब बच्चूजी उचित स्थान पर पहुँच गये इसलिये उन्होने बाणासुर का पीछा नहीं किया वे अन्य योद्धाओं से लडने लगे। ... बाणासुर के सहस्त्र भुजायें थी। पाँच सौ भुजाओंमें तो उसके पाँच सौ धनुष थे। उन धनुषोंपर उसने दो दो बाण चढ़ाये। इस प्रकार एक सहस्त्र बाण एकसाथ ही उसनें श्यामसुन्दर पर छोड़े

भगवान् तो पहिले से ही उद्यत थे। अपने शार्ङ्ग नामक धनुष पर चन्द्राकार बाण चढ़ाकर ऐसे मारे कि उसके छोड़े बाण भी कट गये और उसके हाथ के सब धनुष भी कट कट कर भूमि पर गिर गये। फिर भगवान् ने कई बाण एक साथ छोड़कर असुर के सारथी और घोड़ों को मार डाला तथा उसके रथ को तोड़कर नष्ट भ्रष्ट बना दिया। फिर आपने अत्यंत उत्साह के साथ अपना पाञ्चजन्य नामक शंख बजाया।

महल की अटारी पर से बाणासुर की माता सब देख रही थी, उसने जब देखा श्रीकृष्णचन्द्र अब मेरे पुत्र के प्राण ही हर लेंगे, तो वह तुरन्त नीचे आयी। उसने अपने सम्पूर्ण बड़े बड़े बाल खोल लिये और अति शीघ्र रणभूमि में आगयीं। उसने अपने अङ्ग के सर्व वस्त्र उतार दिये। नग्नावस्था में वह भगवान् के आगे खड़ी होगयी। नग्नावस्था में स्त्री को देखने से घोर पाप लगता है, यही विचारकर भगवान्ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया। उन्होंने बाणासुर की ओर देखा तक नही। उसे यह अच्छा अवसर मिल गया। वह रथ और धनुष हीन हो गया था, अतः तुरन्त अपने नगर शोणितपुर में चला गया और वहाँ जाकर उसने कुछ विश्राम किया।

इधर शिवजी की जँम्हाइयाँ कुछ कम हुई उन्होंने देखा मेरे भूत, प्रेत, पिशाच तथा अन्यान्य गण श्रीकृष्ण के प्रबल प्रहार से तितिर बितिर हो रहे हैं, तो उन्होंने अपने त्रिशिर नामक उष्ण ज्वर को छोड़ा। उस ज्वर के तीन ही शिर थे और तीन ही पैर थे वह महाप्रबल ज्वर दशों दिशाओं को दग्ध करते हुए दामोदर की ओर दौड़ा। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने जब शिवजी के छोड़े उष्ण ज्वर को अपनी ओर आते देखा तो उन्होंने उसके निवारणार्थ अपने शीत ज्वर को छोड़ा। अब दोनों ज्वर आपस में टकरा गये। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। अन्त में

वैष्णव ज्वर ने माहेश्वर ज्वर को घर दबाया। अब तो शिवजी का ज्वर चिल्लाने लगा। जब उसने देखा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की शरण में जानेके अतिरिक्त मेरे लिये दूसरा कोई सुरक्षित निर्भय स्थान नहीं है, तो वह अत्यन्त ही विनय के साथ दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर स्तुति करने लगा तथा आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी से शरण के लिये प्रार्थना करने लगा।

भयभीत हुआ त्रिशिर उष्ण ज्वर कहने लगा—"प्रभो ! आप अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं, आप चराचर विश्व के हृदय में रहने वाले अन्तरात्मा है, आपसे बढ़कर या आपके समान दूसरा कोई है ही नहीं आप अद्वितीय हैं, आप ज्ञान स्वरूप हैं। संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के स्वामी है। इनके कारण हैं। आप को वैसे कोई जान नहीं सकता। केवल वेदवाक्यों द्वारा आप लक्षित होते हैं आप सर्व विकार हीन विशुद्ध सत्वमय परब्रह्म हैं। आपके पाद पद्मों में मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

हे प्रभो ! संसार में जो भी कुछ होता है आपके ही द्वारा होता है। आप ही संसार के आदि कारण है आप ही इस जगत् वृक्ष के आदि बीज हैं। काल, दैव, कर्म, जीव, स्वभाव, भूतसूक्ष्म, शरीर, सूत्र, अहङ्कार, हस्त, पाद, वाक्, गुद, उपस्थ, चक्षु, कर्ण, नासिक, जिह्वा, त्वचा, पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन सबका जो सङ्घातरूप लिङ्गदेह है तथा यह लिङ्ग देह जिस कर्म बीज से उगता और बढता है। यह सब आपकी माया का ही परिणाम है। यद्यपि ये सब होते है आपके ही अधिष्ठान से किन्तु आप इन सबसे सर्वथा पृथक रहते हैं और निरन्तर निर्लेप बने रहते है। ऐसे आप शरणागत वत्सल अशरण शरण श्यामसुन्दर की मैं शरण हूँ।

हे सर्वात्मन् ! आप अज है, अव्यक्त है, अनादि है, अरूप है। तथापि लीला के लिये आपही अनेक रूपों में हो जाते हैं एक होते

हुए बहुत बन जाते हैं। आप इस प्रपञ्च को चलाये रखने के लिये सुरगण तथा साधुजनों के परित्राण के निमित्त तथा कुमार्ग गामी हिंसा प्रिय असुरों का संहार करने के निमित्त एवं लोक मर्यादा का पालन करने के हेतु समय समय पर अवनिपट अवतरित होते हैं और संसार को शांति का मार्ग दिखाते हैं। आपका यह अद्भुत अवतार भी भू का भार हरण करने के निमित्त हुआ है। अतः हे भक्तवत्सल ! मुझसे जो अनजान में आपके ज्वर का अपराध हुआ उसे क्षमा करें।"

यह सुन कर भगवान् श्यामसुन्दर हँसे और बोले—"हे माहेश्वर ज्वर ! तुम चाहते क्या हो ? क्यों तुम मेरी ऐसी लम्बी चौड़ी स्तुति कर रहे हो, अपने प्रयोजन को कहो।"

इस पर माहेश्वर ज्वर बोला—"हे प्रभो ! मैं आपके इस शान्त, उग्र, अतिउल्बण दुःसह ज्वर से अत्यन्त सन्तप्त हो रहा हूँ। यह शीत ताप मुझे तापित कर रहा है। आपके सम्मुख रहते हुए यह उचित नहीं है। क्यों कि देह धारियों को ताप तभी तक रहता है, जब तक वे आशापाश में फँसे रहते हैं। जहाँ वे आपकी शरण में गये, तहाँ उनके त्रिविध ताप सदा के लिये समाप्त हो जाते हैं। जो आपके चरणों के शरण गये हैं वे सब ताप संताप से सदा के लिये छूट गये हैं, फिर मेरा ताप आपकी शरण आने पर कैसे शेष रह सकता है ?"

त्रिशिरा माहेश्वर ज्वर की ऐसी स्तुति सुनकर मन्द मन्द मुस्कराते हुए माधव बोले—"हे त्रिशिरा ज्वर ! तू प्राणियों को तीसरे दिन जाड़े के साथ आता है तेरे आने से प्राणियों के अङ्ग उत्पीड़ित हो जाते हैं। मैं तेरी स्तुति से प्रसन्न हूँ। तुझे मेरे ज्वर से अब भय न होगा। यही नहीं, जो पुरुष श्रद्धा भक्ति सहित हमारे तुम्हारे इस सम्वाद को सुनेंगे उन्हें तुम से भी भय न होगा।"

सूतजी कहते है—"मुनियों! भगवान् के ऐसे वर को सुनकर त्रिशिरा माहेश्वर ज्वर भगवान् के पादपद्मों में प्रणाम करके यथा स्थान चला गया। इतने में ही शोणितपुर से नया रथ और नया उत्साह लेकर बाणासुर पुनः भगवान् वासुदेव से लड़ने आया। अब इन दोनों में जसे भयङ्कर युद्ध होगा, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

ब्रह्म, वायु अरु अनल अस्त्र त्रिपुरारी छोड़े।<br>
जोड़ तोड़के छोड़ि श्यामने सबही तोड़े॥<br>
जृम्भणास्त्र हरि छोड़ि लिवाईं जमुहाई पुनि।<br>
आयो तबई बाण भगत अपनी सेना सुनि॥<br>
धाइ कृष्ण तैं भिड़ि गयो, हरि हय सारथि मारकें।<br>
करचो विरथ तब मातु लखि,खड़ी नगन ह्वै आइ कें॥

# अनिरुद्ध ऊषा चरित की समाप्ति

( ११२५ )

इति लब्ध्वाभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसासुरः ।
प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत् ॥
अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासः समलंकृतम् ।
सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ।*

( श्रीभा० १० स्कं० ६४ अ० ५०, ५१ श्लो० )

छप्पय

नग्न नारि कूँ निरखि नयन हरि पीछे फेरे ।
बाण गयो पुर माहिँ शम्भु सम्मुख हरि हेरे ॥
छोड्यो शिव ज्वर उष्ण शीत ज्वर आइ दबायो ।
करी कृष्ण की विनय उष्ण ज्वर पिंड छुड़ायो ॥
बाण आइ हरि संग लड़्यो, हार्यो सब सेना मरी ।
कर काटन लागे हरी, आइ शम्भु इस्तुति करी ॥

दो सगे भाई नाटक में खेल करते हैं, दोनों पक्ष विपक्ष में होकर लड़ते हैं, एक दूसरे को मारते हैं, पटकते है, बुरा भला

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार बाणासुर ने जब भगवान् से अभय प्राप्त की तो, उसने उन्हे सिर से प्रणाम किया। तदनन्तर प्रद्युम्न नन्दन अनिरुद्ध जी को ऊषा सहित रथ पर चढ़ाकरले आया भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी भी शिवजी की अनुमति लेकर अक्षौहिणी सेना से घिरकर तथा वस्त्रालङ्कारों से अलंकृत नववधू सहित अनिरुद्धजी को आगे करके द्वारकापुरी के लिये चल दिये।"

कहते हैं। नाटक समाप्त होने पर हँसकर प्रेम से मिलते हैं और आपस में कहते है, कहो कैसा अभिनय किया। इसी प्रकार भगवान् ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सुर असुर आदि रूप रख, कर क्रीड़ा करते हैं, एक दूसरे से लड़ते हैं। अज्ञानी समझते हैं, वास्तव में लड़ रहे हैं, किन्तु जिस माया के आश्रय से यह सब हो रहा है उसमें वास्तविकता कहाँ। यह तो उनका विनोद है। हरिहर परस्पर में भिन्न नहीं अभिन्न हैं। क्रीड़ा के निमित्त वे भिन्न से दीखने लगते हैं और आपस मे लड़ते भिड़ते हैं। एक दूसरे को हराते हैं किन्तु उनमें हारना जीतना क्या। वे तो अजित हैं, अपराजित हैं।

श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! जब भगवान् से अभय पाकर माहेश्वर ज्वर चला गया, तब बाणासुर पुनः रथ पर चढ़कर युद्ध करने के निमित्त भगवान् के सम्मुख आया। अबके वह नवीन रथ नवीन अस्त्र शस्त्र तथा नवीन उत्साह लेकर रणभूमि में आया था। आते ही उसने अपने सहस्र भुजाओं से चक्रपाणि भगवान् पर भाँति भाँति के दिव्यास्त्रों की वर्षा करनी आरंभ कर दी। जैसे वर्षा होने पर सुमेरू तनिक भी विचलित नहीं होता, वैसे ही भगवान् उसके अस्त्र शस्त्रों से तनिक भी विचलित नहीं हुए। भगवान् ने जब देखा, यह असुर तो रुकता ही नहीं इसने तो निरन्तर अस्त्रों की झड़ी सी लगादी, तब भगवान् ने सोचा—"अब इससे अधिक देर तक अस्त्रों से युद्ध कौन करे। जिन बाहुओं से यह अस्त्र शस्त्र छोड़ रहा है उन्हें ही काट दो, न रहेगे बाँस न बजेगी बाँसुरी।" यही सोचकर भगवान् उसकी बड़ी बड़ी बाहुओं को जड़ से काटने लगे। दूर से भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर देख रहे थे। जब उन्होंने देखा भगवान् तो बिना रुके बाण की बाहुओं को वृक्ष की शाखाओं के समान छेदन करते ही जाते हैं, तब वे तुरन्त चक्रपाणी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के

समीप गये और अत्यन्त नम्रता के साथ अञ्जली बाँधकर उनकी स्तुति करने लगे। वे कहने लगे—"प्रभो! आप तो परम ज्योति स्वरूप, सर्वव्यापक, अज, अनादि, अच्युत, निर्विकार, निर्लेप, निरञ्जन और नित्य हैं यह सम्पूर्ण प्रपञ्च आपकी ही सत्ता से सत्य सा प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार बहुत देर तक गूढ़ ज्ञानयुक्त बड़ी लम्बी चौड़ी स्तुति करके अन्त में कहने लगे—"प्रभो! यह बाणासुर मेरा भक्त है, इसे मैंने अभयप्रदान दिया है। आप मेरे वचन का निर्वाह करें जैसे आपने इसके प्रपितामह प्रह्लाद को अजर अमरता प्रदान करके अभय कर दिया है उसी प्रकार आप इसे भी अभय करदें। इसे मारें नहीं। यह भी आपकी कृपा को प्राप्त करके निर्भय हो जाय।"

इतना सुनते ही भगवान् ठठाका मारकर हँस पड़े और बोले—"शङ्करजी! आप धन्य हो। क्यों न हो प्रभो! आप भोले नाथ ही जो ठहरे। आपका हृदय दया और अनुग्रह से भरा हुआ है। हे विभो! जिसे आपने अभय कर दिया है, उसे मैं मार ही कैसे सकता हूँ। मैं तो आपके विचार के ही अनुसार इसके अभिमान को चूर्ण करने आया था। इसे अपने बलका बहुत अभिमान हो गया था, यह अपने समान संसार में किसी को समझता ही नहीं था। वलाइये आपसे भी लड़ने को उद्यत हो गया। कहता था—"मेरी ये भुजायें भाररूप हो रही हैं। मेरे ये हाथ खुजा रहे हैं। आपके अतिरिक्त मुझसे लड़ने वाला कोई नहीं है।" तब आपने कहा था—"मेरे समान ही कोई आकर तेरे गर्व को खर्व करेगा।" मैंने तो आपकी आज्ञा का ही पालन किया है।"

शिवजी ने कहा—"महाराज! यह तो मूर्ख है। जिसे एक बार अपना कहकर अङ्गीकार कर लिया है, उससे कुछ अपराध भी हो जाय, तो बड़े लोग उसे क्षमा कर देते हैं।"

भगवान् ने कहा—"हाँ, तो अच्छी बात है। मेरी भी इच्छा इसे मार डालने की नहीं है। यह मेरे परम भक्त विरोचननन्दन दानवीर महाराज बलि का पुत्र है। बलि को मैंने सपरिवार अभय प्रदान किया है, फिर मैं उसके पुत्र को कैसे मार सकता हूँ। इसके प्रपितामह प्रह्लाद को भी मैंने वर दिया था, कि तुम्हारे वंश के किसी को भी मैं न मारूँगा।"

शङ्कर जी ने कहा—"महाराज! और मारना क्या होता है आप गूलर के वृक्ष की शाखाओं के समान तो इसकी भुजाओं को काट रहे हैं।"

हँसकर भगवान् बोले—"अजी, शङ्करजी आप तो भोलेनाथ हो। आगे पीछे की तो सोचते नहीं। "तीरथ गये मुड़ाये सिद्धि" आप के सामने जो आ जाता है, उसे आँखें मीचकर वर दे देते हो। भला, बताइये इसे आपने सहस्र भुजायें देदी, ये केवल भूका भार मात्र ही हैं। इन सहस्र बाहुओं से यह उपद्रव के अतिरिक्त और करेगा ही क्या? इस लिये मैंने इसकी व्यर्थ की भुजायें छाँट दीं। अब इसके केवल चार भुजायें रह जायँगीं। ये अजरामर होंगी। इन्हें कोई काट न सकेगा। यह चतुर्भुज बाणासुर आपके पार्षदों में मुख्य माना जायगा। अब इसे किसी भी प्रकार का भय न रहेगा।"

यह सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए। उन्होंने बाणासुर को तुरन्त एक दिव्य स्तोत्र दिया उससे उसने भगवान् वासुदेव की स्तुति की और सिर झुकाकर उनके पादपद्मों में प्रणाम किया। भगवान् ने भी उसे स्नेह भरी दृष्टि से देखा और अभयप्रदान की। अब क्या था, सन्धि हो गयी। बाणासुर की शङ्कर जी के प्रभाव से सभी इच्छायें पूरी हुई। उसकी पुत्रीको अच्छा घरवर मिल गया। नगर में जाकर उसने दिव्य रथ सजाया उसमें स्नानादि कराकर, दिव्य वस्त्राभूपणों को पहिनाकर ऊषा और

अनिरुद्ध जी को विठाया। आगे आगे वाजे वजते जाते थे। वड़े आनन्द के साथ वरवधू को लेकर भगवान् की सेवा में समुपस्थित हुआ। दहेज में वहुत से हाथी, घोड़ा, रथ, सुवर्ण मणि, मुक्ता वस्त्र, आभूषण, गन्ध, चन्दन, मृगचर्म, ऊनीकम्वल, दुशाला, दास, दासी तथा अन्यान्य गृहस्थोपयोगी सभी सामग्रियाँ दीं। उन सब वस्तुओं को ग्रहण करके तथा शिवजी से सम्मति लेकर वड़ी भारी यादवों की सेना से घिरे हुए श्यामसुन्दर अपनी पुरी द्वारावतीमें लौट आये अनिरुद्धको नई पत्नी के साथ देखकर सभी को परम हर्ष हुआ। सभी लोगों ने विजयी भगवान् का तथा नव वधू सहित अनिरुद्ध जी का वड़ा भारी स्वागत सत्कार किया। सभी पुरवासी भगवान् सहित वर वधू को आगे करके जय घोष करते हुए पीछे पीछे चल रहे थे। आगे आगे वेदज्ञ ब्राह्मण वेद घोष करते जाते थे। शङ्ख, ढोल, दुन्दुभी आदि वहुत से वाजे वजते जाते थे। स्थान स्थान पर द्वार वनाये गये थे उनमें ध्वजा, पताकायें तथा तोरण लटकाये गये थे। राजपथों पर छोटी छोटी गलियों में तथा चौराहों पर सुगन्धित जल का छिड़काव कराया गया था। इस प्रकार भली भाँति से सजी सजायी द्वारावती नगरी में सभी ने प्रवेश किया।

सूतजी कहते हैं–"मुनियों! यह मैंने अत्यन्त संक्षेपमें अनिरुद्ध जी और ऊपा के विवाह का प्रसंग कहा। इसी कथा प्रसंग में शिवजी और श्रीकृष्ण जी के युद्ध का भी वर्णन किया गया। शिव और कृष्ण ये भिन्न भिन्न नहीं हैं। एक ही दो रूपों में हो गये है। इनका युद्ध अज्ञान से या लोभ से नहीं हुआ। यह तो एक लोकवत् केवल लीला ही थी। इस हरि हरात्मक दिव्य युद्ध के परम पावन प्रसंग को जो पुरुप प्रेमपूर्वक श्रवण करेंगे, उनका पराभव कभी न होगा जो कुमारी इस प्रसंग को सुनेंगी उन्हें सुन्दर स्वस्थ वर प्राप्त होगा, जो विवाहिता स्त्रियाँ सुनेंगी उनके

पुत्र होगा। निर्धन सुनेगा उसे धन की प्राप्ति होगी और जो भक्त सुनेगा उसे भगवान् की अहैतुकी भक्ति की प्राप्ति होगी। जो शूर वीर प्रातः उठकर इस प्रसङ्ग को पढ़ेगा उसका कभी भी पराभव न होगा।

यह सुनकर शौनकजी बोले—"सूतजी ! भगवान् की सभी लीलायें बड़ी मधुर और सरस होती हैं, कृपा करके और कोई ऐसी ही लीला सुनाइये द्वारकापुरी में रहकर भगवान् ने कोई और प्रसिद्ध लीला की हो, तो उसका भी वर्णन हमसे करें।"

सूतजी बोले—"भगवन् ! जैसे भगवान् अनन्त हैं, वैसे ही उनकी लीलायें भी अनन्त हैं। भगवान् ब्रह्मण्यदेव हैं; वे अवतार लेकर स्वयं तो ब्राह्मणों का सम्मान करते ही थे, साथ ही अपने पुत्र पौत्रों को भी सदा इस बात की शिक्षा देते रहते थे। इसी प्रसंग में भगवान् ने जैसे महाराज नृग का उद्धार किया और उसी प्रसंग में जैसे उन्होंने पुत्र पौत्रों को शिक्षा दी उसी नृगोद्धार की कथा को मैं आपके सम्मुख कहूँगा। आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।"

### छप्पय

इस्तुति सुनि हरि हँसे बाण पै दया दिखायी।
अजर अमर करि दयो प्रतिज्ञा प्रथम निभायी॥
भयो बाणकूँ ज्ञात लाइ वर वधू दिखाये।
पाइ दान सम्मान सकल यादव हरषाये॥
हरि हरतें अनुमति लई, पुरी द्वारका चलि दये।
वधू सहित अनिरुद्ध लखि, अति प्रसन्न सब जन भये॥

# नृगोद्धार की कथा

(११२६)

नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ।
दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥*

(श्रीभा० १० स्कं० ६४ अ० १० श्लोक)

छप्पय

स्वयं सूत पुनि कहें–"चरित नृग नृपति सुनाऊँ ।
कैसे हरि उद्धार करचो सो वृत्त बताऊँ ॥
यदुकुल के कछु कुमर गये खेलन वन माहीं ।
लगी प्यास इक लख्यो कूप जल तामें नाहीं ॥
परवत सम गिरगिट परचो, ताहि निकारत दयावश ।
नहिँ निकस्यो तब आइ तहँ,करचो प्रकट हरि तासु यश॥

भगवान् का स्वभाव है, वे अपने भक्तों को सदा बड़ाई देते हैं। अपने आश्रितों की प्रशंसा करते-करते वे अघाते नहीं। भगवान् का ही नहीं उनके भक्तों का भी यही स्वभाव होता है।

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! महाराज नृग भगवान् को अपना परिचय देते हुए कह रहे हैं—"हे प्रभो ! मैं नृग नामक नरेन्द्र हूँ, मेरे पिता का नाम इक्ष्वाकु है। दानियों के कथा प्रसंग मे कदाचित् मेरा नाम कभी आपके कानों में पड़ा ही होगा।"

भक्त सब को सम्मान प्रदान करते है। जो दूसरों का सम्मान नहीं करता वह भक्त नहीं। स्वयं अमानी रह कर दूसरों को मान देना यही भक्तों का लक्षण है। भगवान् तो जगत् पूज्य हैं, किन्तु वे भी ब्राह्मणों को अपना देवता मानते हैं।

सूतजी कहते है—"मुनियो! एक दिन की बात है,कि साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु और गद आदि बहुत से यदुवश के राजकुमार वन उपवनों में विहार करने बहुत दूर निकल गये। यद्यपि ये सब लोग बड़े थे, इनके बेटा नाती हो गये थे, किन्तु इनके पिता, पितामह आदि जीवित थे, इसीलिये कुमार कहलाते थे। सभी युवक थे, सभी विनोद प्रिय थे सभी समवयस्क थे। चलते-चलते ये लोग बहुत दूर निकल गये। वहाँ जाकर इन लोगों को प्यास लगी। इसलिये इधर उधर जल की खोज करने लगे। कुछ दूर पर इन्हें एक बड़ा भारी कुआ दिखाई दिया। उसमें इन लोगोंने झाँककर देखा, कि एक पहाड़ के सदृश जीव उस कुएमे पड़ा है। इतना बड़ा जीव इन्होंने पहिले कभी नहीं देखा था। सबने समझा—"यह जीव कहीं से घूमता-घूमता आया है, इस कुए में आकर गिर गया है, इसे निकालना चाहिए।" ऐसा विचार कर वे पानी पीना तो भूल गये, उसके निकालने का उद्योग करने लगे। उन सबको उस जीव पर दया आ रही थी, कि यह इसी प्रकार कुआ में पड़ा रहेगा, तो मर जायगा। दूसरे उन्हें विस्मय भी हो रहा था, यह सुवर्णके समान चमक रहा है, यह साधारण जीव नहीं है इसीलिये वे उसे कुएसे निकाल कर देखना चाहते थे। प्रथम वे सन की बड़ी-बड़ी मोटी-मोटी रस्सियाँ ले आये, उनमें बाँधकर निकालने लगे, जब उनसे न निकला, तब चमड़े की सुदृढ़ रस्सियाँ ले आये। उनसे जितना बन सका उतना उद्योग किया, किन्तु वह जन्तु किसी भी प्रकार कुए से न निकल सका।

अन्त में कुछ कुमार दौड़े-दौड़े भगवान् के समीप गये और

जाकर परम विस्मित होकर कहने लगे—"हे प्रभो ! एक बड़ी अद्भुत बात है। हम लोग विहार करने समीप के ही उपवन में गये थे; वहाँ कुए में हमने एक बड़ा ही विलक्षण, सुवर्णके सदृश चमकीला, पहाड़ के शिखर के समान स्थूल एक विचित्र जन्तु देखा है। हमने उसे कुएसे निकालने के अनेकों उपाय किये, किंतु वह निकलता ही नहीं। नवनीत के सदृश उसका शरीर चिकना है, मुख पर कुछ काँटे से है और बड़े रहस्यमय ढंग से वह मुँह मटकाता है। हमें यह जानने को बड़ा कुतूहल हो रहा है, कि यह कौन जन्तु है।"

अपने बच्चों की ऐसी उत्सुकता देखकर भगवान् उनके साथ रथ पर चढ़कर वहाँ आये। कमल नयन विश्वम्भर उसे देखकर हँसे अपने कुमारों से बोले—"छिः छिः तुम लोगों से यह छोटा सा जीव भी नहीं निकलता।" यह कह कर भगवान् ने अपना बायाँ हाथ कुए में डालकर उसे तुरन्त बाहर निकाल कर रख दिया। भगवान् के कर कमल का पावन स्पर्श पाते ही उसने वह शरीर तुरन्त त्याग दिया। सबके देखते ही देखते वह दिव्य रूप वाला देवता बन गया। उस समय उसके तेज के प्रकाश से दशों दिशायें प्रकाशित हो रही थीं,तपाये सुवर्णके समान उसका सुन्दर शरीर दम-दम करके दमक रहा था। बहुमूल्य वस्त्र तथा दिव्यातिदिव्य आभूषण उसके अङ्गों की शोभा बढ़ा रहे थे। अम्लान पुष्पों की सुगन्धित मालायें वह पहिने हुआ था और हाथ जोड़े हुए विनीत भाव से भगवान् के समीप खड़ा था।

भगवान् तो सब कुछ जानते हैं,उनसे तो कोई बात छिपी ही नहीं रह सकती। तथापि सर्वसाधारणको इसका समस्त समाचार विदित हो जाय, किस कारण इसे यह अधम योनि प्राप्त हुई इसे सब जान जायँ।' इसी हेतु से भगवान् ने उससे पूछा—"हे महाभाग ? आप कौन हो ? आप तो कोई अत्यंत ही श्रेष्ठ देवता

प्रतीत होते हो, क्योंकि तुम्हारा रूप अत्यंत ही मनोहर है। अब तक तो आप इस अधम योनि में थे, अब आप सहसा देवता क्यों हो गये? आप देखने में बड़े भव्य प्रतीत होते हैं। यह अधम योनि आपको किस अपराध के कारण प्राप्त हुई। आपके ओज, तेज रूप और सौन्दर्य को देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है, कि आप इस योनि को प्राप्त करने के सर्वथा अयोग्य थे। आपसे ऐसा कौनसा अपराध बन गया था, जिससे यह गिरगिट की योनि आपको प्राप्त हुई। गिरगिट भी साधारण नहीं। इतना डील डौल का गिरगिट तो हमने देखा ही नहीं। अब तो आप देवता हो गये है। पूर्व जन्म की सब बातें आपको स्मरण हो आयीं होगी यदि हमसे कोई छिपाने योग्य बात न हो, तो हमें अपना पूर्ण परिचय दीजिये अपना सभी वृत्तान्त बताइये।"

भगवान्के ऐसा प्रश्न करने पर उस देवस्वरूप पुरुष ने अपने सूर्य के समान तेजस्वी मुकुट युक्त मस्तक को प्रभु के पादपद्मों में रखकर और श्रद्धाभक्ति से प्रणाम करके कहना आरम्भ किया— "प्रभो! मनुपुत्र महाराज इक्ष्वाकु का आपने नाम सुना ही होगा उन्ही महाराज इक्ष्वाकु का मैं पुत्र हूँ। मैंने बहुत दिनों तक इस सप्तद्वीपा वसुमती का धर्म पूर्वक पालन किया था, उन दिनो मैं संसार में बड़ा प्रसिद्ध दानी समझा जाता था। आपने दानी राजाओं के कथा प्रसंग में कभी नृग का नाम सुना ही होगा। मैं वही नृग हूँ।"

भगवान् ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"महाभाग! आप राजर्षि नृग है। धन्यवाद धन्यवाद! आपका नाम तो हम नित्य ही सुनते है। नृग के समान दान कौन कर सकता है। राजन्! हम आपके दानके सम्बन्धमें कुछ सुनना चाहते है। आपका इतना नाम क्यों हुआ। ऐसा आप क्या दान करते थे, जिससे अब तक आपकी कीर्ति संसार में ज्यों की त्यों विद्यमान है और जब तक

सूर्य चन्द्रमा तथा तारागण रहेंगे, तव तक आपकी कीर्ति अक्षण्ण बनी रहेगी। आप अपने सम्बन्ध की बातें हमें विस्तार पूर्वक बतावें।"

भगवान्‌की आज्ञा पाकर और उनके चरणोंमें पुनः सिर झुका कर महाराज नृग कहने लगे—"हे जगन्नाथ! आप सर्वान्तर्यामी हैं। सब भूतों के अन्तः करणों में आप साक्षी रूप से निरन्तर विराजमान रहते हैं। जीव जो भी शुभाशुभ कर्म करते है वे आप से कुछ भी अविदित नही रह सकते। आप घट घटकी बातें जानते हैं। इसलिये आपको कुछ बताना व्यर्थ ही है, क्योंकि आप की दृष्टि को काल भी नहीं रोक सकता। स्वयं आप काल स्वरूप है। तथापि आप आज्ञा प्रदान कर रहे हैं, तो मैं अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्तको बताता हूँ, क्योंकि आपकी आज्ञा का पालन करना प्राणियों का परम कर्तव्य है। अच्छा तो प्रथम आपने मेरे दानके ही सम्बन्धमें पूछा उसे ही सुनाता हूँ।

स्वामिन्! अपने मुख से अपने दानका बखान करनेसे उसका महत्व घट जाता है, पुण्य नष्ट हो जाता है, किन्तु जब आपकी आज्ञा है तब तो कहना ही पड़ेगा। संसार में सबसे श्रेष्ठ दान गौ दान है। गौके रोम रोममें देवताओंका वास है तेतीस कोटि देवता गौके अंगमें रहते हैं। जिसने गौ दान कर लिया उसने मानों सब दान कर लिये। मैने कितनी गौओंका दान किया उसे मैं कह नही सकता। पृथिवीमें कितने रजकण है, वर्षाके समय कितनी जलकी धारायें गिरती हैं, आकाश में कितने तारागण हैं, जैसे इनकी संख्या करना संभव नही उसी प्रकार मेरी दान की हुई गौओं को गणना करना संभव नहीं। असंख्यों गौओं का मैंने दान किया। गौएँ भी ऐसी वैसी बूढ़ी टेढ़ी नहीं, किन्तु मैंने दूध देने वाली तरुणी गौओं का दान दिया। वे सभी गौएँ देखने में अत्यन्त सुन्दर होती थीं। मरखनी उनमें कोई नहीं थीं। सब शील और

सद्गुणों से युक्त थीं। उनका दूध बहुत गाढ़ा होता था। उस में एक चौथाई घृत निकल आता था। वे गौएँ मैंने वैसे ही दे दी हों, सो भी बात नहीं उन सबके सींगों को मैं सदा सुवर्ण से मढ़वाता था। चारों खुरों में चाँदी मढ़वा देता था। वे सब कहीं से अन्यायसे या अन्यायके धनसे ली हों, सो भी बात नहीं; वे सब की सब न्यायोपार्जित धन से क्रय की जाती थीं। सबको दुशाला उढ़ाकर दान करता था। ऐसे वैसे अपात्र ब्राह्मण को दे देता होऊँ, सो भी बात नहीं। वेद को जानने वाले गुण शील सम्पन्न सदाचार और तपस्या में निरत, शान्त दान्त वेद पाठी बहुकुटुम्बी तथा शिष्योंको पढ़ाने वाले आचार्यों को मैं उन्हें दान में देता था। केवल गौओं का ही दान देता होऊँ सो बात नहीं। मुझे दान देने का व्यसन था। दान देते समय मेरे हृदय में बड़ा उल्लास होता था। दान देते देते मेरी तृप्ति नहीं होती थी। सदा सोचता रहता था, ऐसा कौन सा दान दूँ, जिससे लेने वालेकी अन्तरात्मा सुखी हो। इस प्रकार मैंने गौओं के अतिरिक्त बहुत सी उर्वरा भूमि दान में दी। बहुत सा सुवर्ण, सुन्दर सजे सजाये सब सामग्रियों से सम्पन्न सब समयों में सुखद ऐसे बहुत से भवन भी मैंने सुशील सदाचारी गृहस्थों द्विजों को सविधि दान दिये। सुन्दर सुन्दर घोड़े, बड़े हाथी, सुयोगवरों को धन्य, धान्य, दास दासी तथा गृहस्थोपयोगी अन्य सामग्रियों के सहित कन्यायें, तिलों के पर्वत, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, रथ तथा अन्यान्य सामग्रियों को मैं सदा दान करता ही रहता था। दानके अतिरिक्त मैंने बड़े बड़े यज्ञ याग किये, बहुत से कुए बनवाये, वृक्ष लगवाये, वापी, तड़ागादि खुदवाये। धर्मशालायें तथा पाठशालायें बनवायीं। सारांश यह कि मैंने दान धर्म करनेमें कभी कृपणता नहीं की। उदारताके साथ अत्यन्त प्रसन्न होकर मैं इन कामों को किया करता था। किन्तु इतना सब करते हुए भी मेरे प्रारब्धवश मुझसे एक बड़ा

भारी अपराध बन गया। एक ब्राह्मणका वित्त मेरे दानके कारण दुख गया। उसीके परिणाम स्वरूप मुझे यह अधम योनि प्राप्त हुई।"

भगवान् ने पूछा—' क्या हुआ ? अपराध कैसे बन गया ?"

आह भर कर महाराज नृग बोले—"हुआ क्या भगवन् ! एक बार किसी श्रेष्ठ याज्ञिक ब्राह्मण की यज्ञीय धेनु आकर मेरी गौओं के झुण्ड में आ मिली। अब मेरे यहाँ तो नित्य ही लाखों गौओं का दान होता था। सेवकों ने अन्य दान की जाने वाली गौओं में उस कामधेनु यज्ञीय गौ को भी सजा दिया। मुझे तो इस बात का कुछ पता ही नहीं था, सहज स्वभाव से मैं जैसे सदा दान करता था, वैसे अन्य गौओं के साथ में उसे भी दान कर दिया। वह ब्राह्मण उस इतनी सुन्दर गौ को पाकर मुग्ध हो गया। वह प्रसन्न होकर उसे लेकर चल दिया। अब जिस ब्राह्मण की वह गौ थी, वह उसे सर्वत्र खोज रहा था, क्योंकि उसके बिना उसका यज्ञ पूरा नहीं हो सकता था। यज्ञमें जिस धेनुके दूध और घी से विशेष आहुतियाँ दी जाती हैं, उस यज्ञीय धेनु को रक्षा करना अत्यावश्यक है। उसके खो जाने पर या मर जाने पर बड़ा पाप लगता है, यज्ञ पूरा नहीं होता। संयोगकी बात, कि जब वह ब्राह्मण उस गौको दानमें लेकर जा रहा था, तो मार्गमें वह गौका स्वामी ब्राह्मण मिल गया। अपना यज्ञीय गौको देखकर ब्राह्मणके रोम रोम खिल उठे। उसने बड़े स्नेहसे उस ले जाने वाले ब्राह्मण से कहा—"बड़ी प्रसन्नता की बात है, आपने मेरी गौ पकड़ ली। इसके लिये मैं बड़ा व्याकुल हो रहा था।"

यह सुनकर दान लाने वाला ब्राह्मण बड़ा चकित हुआ उसने अवहेलना के स्वर में कहा—"विप्रवर ! आप भाँग तो नहीं पी आये हैं ? मेरी गौ को आप अपनी बता रहे हैं।"

गौका स्वामी ब्राह्मण बोला—"ब्राह्मण होकर तुम झूठ बोलते

बड़ी लज्जा की बात है। आपकी यह गौ कैसे है ? आपने से कहाँ से क्रय किया।"

वह ब्राह्मण क्रोध के स्वर मे बोला—"झूठ मैं नहीं बोलता, आप झूठ बोल रहे हैं। मैंने इस गौ को क्रय नहीं किया है। मुझे महाराजा नृग ने दान में दी है।"

अग्निहोत्री ब्राह्मण क्रोध करके बोला—"दूसरे की गौ को दान देने वाला नृग कौन होता है। चलो तुम उसके पास।"

उस ब्राह्मण ने भी दृढता के साथ कहा—"चलो मैं चलने को उद्यत हूँ।" यह कह कर वे दोनों लड़ते झगड़ते मेरे पास आये।

महाराज नृग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से कह रहे हैं—"प्रभो ! आते ही उस दान लेनेवाले ब्राह्मण ने रोष में भरकर मुझ से कहा—"राजन् ! आप सत्य सत्य बतावे इस गौ को आपने मुझे दान में दिया है या नहीं।"

मैं मना कैसे कर सकता था, मैंने कहा—"हाँ, ब्रह्मन् ! मैंने अभी विधि पूर्वक संकल्प सहित यह गौ आपको दान दी है।"

तब वह गौ का स्वामी क्रोधमें भरकर बोला—"राजन्! चोरी करके गौ देने से क्या पुण्य होता है। यह तो उलटा पाप है।"

मैंने हाथ जोड़कर कहा—"ब्रह्मन् ! आप शान्त हों, मैंने अपनी स्मृति में तो चोरी की नही।"

दृढ़ता के स्वर में गौ का स्वामी ब्राह्मण बोला—"की कैसे नही। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो मेरी गौ ही है। यह गौ मेरी है, इसे आपने चुराकर दान कर दिया है।"

मैंने विनीत भाव से कहा—"ब्रह्मन् ! मैंने जान बूझकर तो चोरी की नहीं। आप इस गौ को अपनी बताते है, तो मैं आपकी बात पर अविश्वास तो करता नहीं। पता लगाता हूँ, यह गौ मेरी गौओ में कैसे आगयी।" यह कह कर मैंने पता लगाया। छान बीन करने पर यथार्थ बात का पता लग गया। सेवकों ने कहा

दिया "महाराज भूल से यह गौ हमारे झुण्ड में आगयी हमने समझा हमारी ही है, इसलिए सजा दिया। भूल में ही यह दान भी हो गयी।"

यह सुनकर मुझे बड़ा भ्रम हुआ। मैं बड़े धर्म सङ्कट में पड़ा मैंने उस गौ के यथार्थ स्वामी ब्राह्मण से कहा—"ब्रह्मन्! मुझसे भूल हो गयी क्षमा करें। इस गौ के बदले में मैं आपको एक लक्ष गौएँ दिये देता हूँ।"

ब्राह्मण ने रोष मे भर कर कहा—"राजन्! आप मुझे लोभी समझते हैं? क्या मैं गौ को बेच सकता हूँ? यह मेरी यज्ञीय धेनु है। आप चाहें मुझे इसके बदले में अपना राज्य भी दे दें तो भी न लूँगा।"

यह सुनकर मैं निरुत्तर हो गया। फिर मैंने उस दान लेने वाले ब्राह्मण से कहा—"ब्रह्मन्! मुझ से अज्ञान में यह अपराध बन गया है। आप दोनों में से कोई भी मेरे ऊपर कृपा करें मैं आपकी शरण हूँ मुझे घोर नरक में पड़ने से बचावें। ये ब्राह्मण नहीं मानते, तो आप ही एक लाख गौयें लेकर इस गौ को इन ब्राह्मण को दे दें।"

यह सुनकर वह ब्राह्मण बोले—"राजन्! देने को तो कोई बात नहीं थी, किन्तु जब मेरा प्रतिपक्षी ब्राह्मण लाख गौओं के बदले में भी इस गौ को छोड़ने को उद्यत नहीं, इसे बेचना बता रहा है, तो मैं इसके सम्मुख एक लाख गौ लेकर इसे कैसे दे सकता हूँ। आप राजा हैं। वैसे चाहें तो आप गौ ले सकते हैं यदि अदला बदली मोल भाव की आप बातें करेंगे, तो मैं लाख क्या, लाख से और भी दश सहस्र अधिक दें तो भी मैं न लूँगा। ब्राह्मण समाजमें मैं अपना अपमान थोड़े ही कराऊँगा। लीजिये रखिये अपनी गौ को, मैं जाता हूँ।" यह कहकर वह असन्तुष्ट होकर गौ छोड़ कर चले गये। दूसरे ब्राह्मण भी बिना कुछ

लिये चले गये। इस घटना से मुझे बड़ा दुःख हुआ। उसी समय मेरी मृत्यु हो गयी। यमदूत मुझे लेने आये। मुझे आदर पूर्वक धर्मराज की सभा में ले गये। धर्मराज ने मेरा स्वागत सत्कार किया और बड़े स्नेह से बोले—' राजन् ! आपने इतना अधिक पुण्य किया, कि उसकी कोई सीमा नहीं। आपको अनन्त काल तक अक्षय दिव्य तेजोमय लोकों की प्राप्ति होगी। पुण्यों के साथ आपके कुछ पाप भी हैं। वे पाप आपके पुण्यों के आगे वैसे भी नहीं जैसी सुमेरु के सामने राई। किन्तु फिर भी पाप और पुण्य दोनों का ही फल भोगना है, तो पहिले आप पापों का फल भोगना चाहते है या पुण्यों का ? जैसी आपकी आज्ञा हो वैसा ही मैं प्रबन्ध करूँ ?"

मैंने अपने मन में सोचा—"प्रथम सुख भोग कर और पीछे दुख भोगना तो अत्यन्त ही कष्ट प्रद होगा। प्रथम सुन्दर स्वादिष्ट पदार्थ खाकर पीछे बुरे सड़े गले खाने से चित्त बिगड़ जाता है, बड़ा कष्ट होता है। अतः दोनों का खाना अनिवार्य ही हो तो पहिले बुरे कड़वे पदार्थों को खाकर तब मीठे स्वादिष्ट पदार्थों को अन्त में खाय। इसी प्रकार पहिले दुःख भोगकर तब सुख भोगना चाहिये।" यही सब सोच समझकर मैंने यमराजसे कहा—"देव ! पहिले मैं पाप कर्मों का ही फल भोगना चाहता हूँ। आप ऐसा प्रबन्ध करें कि मेरे पहिले कर्मों का ही फल भोग द्वारा समाप्त हो जाय।"

यमराज ने कहा—"बड़ी अच्छी बात है, अच्छा तो गिरिये।"

यमराज का 'गिरिये' यह कहना था, कि मैं तुरन्त ही पृथिवी पर कृकलास (गिरगिट) बनकर उत्पन्न हो गया। पाप दो प्रकार के होते हैं एक जान में एक अनजान में मुझसे अनजान में पाप हुआ था इस लिये मुझे गिरगिट योनि में भी कोई कष्ट नहीं हुआ। यहीं नहीं मुझे पुण्य क्षेत्र का निवास मिला। छै महीने तो मैं गढ़मुक्तेश्वर की गङ्गाजी के एक कुण्ड में रहता था और छै महीने यहाँ परम पुण्य मयी द्वारकापुरी में रहता था। गिरगिट योनि मे मुझे कोई भी कष्ट प्रतीत नहीं होता था। आपके चरणों का चिन्तन करता रहता था। मैं ब्राह्मणों का भक्त था आपका सेवक था और दान धर्म में निरत रहता था, इन्हीं सब पुण्यो के प्रभाव से मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई। पुण्य क्षेत्रों का वास मिला और समस्त दान, धर्म पुण्य और शुभ कर्मों का एक मात्र फल यह मिल गया, कि आपके देव दुर्लभ दर्शन मुझे प्राप्त हुए। यदि पुण्य लोको में जाकर सुख भोग करता रहता, तो वहाँ वे ही अप्सरायें मिलती स्वर्गीय भोग प्राप्त होते। संसार सागर से सदा के लिये पार पहुंचाने वाले आपके पाद पद्मों का दर्शन तो मुझे प्राप्त न होता। उन दिव्य भोगों से तो यह कृकलास योनि करोड़ों गुनी उत्तम निकली जिससे संसार पाश को छेदने वाले आपके चरण मुझे मिल गये।

भगवान् ने खेद प्रकट करते हुए कहा—"राजन्! इतने धर्मात्मा होने पर भी आपको ये इतने कष्ट सहन करने पड़े। निन्दित गिरगिट की योनि में रहना पड़ा।"

महाराज नृग ने कहा—"योनियां तो सभी एक सी हैं सभी में आहार, निद्रा तथा मैथुनका सुख मिलता है। वास्तव में विपत्ति तो यही है, कि आपके चरणों की स्मृति न रहे और सुख यही है कि आपका चिन्तन बना रहे। आपकी कृपासे आजतक मेरी पूर्व-

स्मृति नष्ट नहीं हुई है। आप परमात्मा हैं। विषयी जन आपको कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते। जिनका चित्त विशुद्ध बन गया है वे योगी-जन ही अपनी उपनिषद रूप दिव्य दृष्टि से आपको प्राप्त कर सकते है। वे ही निरन्तर हृदय कमलके मध्यमें आपके तेजो

॥ श्रीहरि: ॥

## श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

१. भागवती कथा—(१०८ खण्डों में), ६९ खण्ड छप चुके हैं। प्रति खण्ड का मू० २.०० पै० डाकव्यय पृथक।
२. श्री भागवत चरित-लगभग ९०० पृष्ठ की, सजिल्द मू० ७.००
३. सटीक भागवत चरित—बारह बारह सौ पृष्ठ के सजिल्द दोनों खण्डो का मूल्य १७.००
४. बदरीनाथ दर्शन-बदरी यात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ मू० ५.००
५. महात्मा कर्ण-शिक्षाप्रद रोचक जीवन पृ० स० ३५६मू० ३.५०
६. मतवाली मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप, मू० २.५०
७. कृष्ण चरित—मू० ३.५०
८. मुक्तिनाथ द र्शन—मुक्तिनाथ यात्रा का सरस वर्णन मू० ३.००
९. गोपालन शिक्षा—गौओं का पालन कैसे करें-मू० २.५०
१०. श्रीचैतन्य चरितावली-पाँचखण्डों में। प्रथम खंड कामू.१.५०
११. नाम संकीर्तन महिमा—पृष्ठ संख्या ९६ मू० ०.६५
१२. श्रीशुक—श्रीशुकदेवजी के जीवन की झांकी(नाटक)मू०.६५
१३. भागवती कथा की बानगी—पृष्ट संख्या १०० मू० ०.३५
१४. शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र मू० ०.४०
१५. मेरे महामना मालवीयजी—उनके सुखदसंस्मरण पृ० सं० १३० मू० ०.३०
१६. भारतीय संस्कृति और शुद्धि—(शास्त्रीय विवेचन)मू० ०.४०
१७. प्रयाग माहात्म्य—मू० ०.१५
१८. राघवेन्दु चरित—मू० ०.४०
१९. भागवत चरित की बानगी—पृष्ठ संख्या १०० मू० ०.३५
२०. गोविन्द दामोदर शरणागत स्तोत्र—(छप्पयछन्दोंमे)मू००.२५
२१. आलवन्दार स्तोत्र—छप्पयछन्दों सहित मू० ०.३५
२२. प्रभुपूजा पद्धति मू० ०.२५
२३. वृन्दावन माहात्म्य—मू० ०.१२
२४. गोपीगीत—अमूल्य।